भारत में मुस्लिम सुल्तान



पुरुषोत्तम नागेश ओक





लेखक की अन्य रचनाएँ—

१. ताजमहल मन्दिर भवन है
२. भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
३. कौन कहता है अकबर महान् था ?
४. विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
५. भारत में मुस्लिम सुलतान–१
६. भारत में मुस्लिम सुलतान–२

भारत में मुस्लिम सुल्तान

भाग - 2

(ई० सन् 1527 से 1857 तक)

लेखक
पुरुषोत्तम नागेश ओक

अनुवादक
डा० रामरजपाल द्विवेदी

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - 05

मूल्य 65.00
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग , नई दिल्ली-110005
email: indiabooks@rediffmail.com
फोन 23551344 , 23553624
फैक्स 011-23553624
संस्करण 2011
मुद्रक संजीव आफसैट प्रिंटर्स, दिल्ली-51

अनुक्रम

प्रस्तावना

विदेशी यवनों के जत्थे, जो हिन्दुस्तान में बलपूर्वक घुसते रहे एवं जिन्होंने लगभग ७०० ई० से धर्म एवं तलवार का भय तथा यन्त्रणा दिखाई, १२०६ ई० में दिल्ली में अपनी केन्द्रीय सल्तनत स्थापित करने में सफल हुए।

अपनी समस्त क्रूरताओं, भ्रष्टाचार, भय-प्रदर्शन, उत्पीड़न एवं लूटपाट के बावजूद भी वह सल्तनत छह लम्बी तथा दुःखपूर्ण शतियों तक स्थित रही। १८५८ ई० में इसका अस्तित्व समाप्त कर दिया गया।

दिल्ली में विदेशी यवन-राज्य के वे ६२५ वर्ष दो समानार्द्धकों में विभक्त किये जा सकते हैं। पूर्वार्द्ध (१२०६-१५२६) में दासों से समारम्भ होकर लोदियों में समाप्त होने वाले अनेक विदेशी यवन-वंश छल-कपट, हत्या, विश्वासघात द्वारा एक-दूसरे को स्थान-च्युत करने में सफल रहे। पर उत्तरार्द्ध (१५२६-१८५८) का इतिहास कुछ और ही है। इन ३३२ वर्षों का यह काल एक ही राज्यवंश—मुगलवंश—द्वारा शासित रहा। इससे पूर्व एक वंश दूसरे वंश को समाप्त कर राज्यासीन होता था, इस (मुगल) वंश में एक ही परिवार के लोग अपने ही शासक बुजुर्गों के विरुद्ध विद्रोह करते रहे।

पुत्र की पिता के विरुद्ध एवं भतीजे की शासक चाचा के विरुद्ध विद्रोह की यह परम्परा, जो भारत में विदेशी-यवन-शासन से प्रारम्भ हुई, समूचे मुगल शासन में व्याप्त रही।

इसका अनुभव सरलतया नहीं होता। विदेशी आक्रमणकर्ता बाबर द्वारा भारत में मुगल राज्य की स्थापना के पश्चात् उसके पुत्र हुमायूँ ने उसकी सब सम्पत्ति हड़प ली, जिसे उसने (बाबर ने) हिन्दुओं से लूटा था।

इतना ही क्यों, स्वयं हुमायूँ, अपने पिता की बिना आज्ञा के, अपने कर्तव्य-स्थल से लगातार महीनों अनुपस्थित रहता और अनेकानेक लुटेरों को साथ ले धन एवं स्त्रियों की टोह में गाँवों की ओर चला जाता। अपने चार वर्ष के अदीर्घ शासन-काल में बाबर को सबसे बड़ा सन्ताप यही था कि उसका अपना ही पुत्र उसके अपने ही राज्य को अपने ही व्यक्तियों द्वारा लूट रहा था। उसके इस क्षोभ की अभिव्यक्ति उन संस्मरणों में लिपिबद्ध है जिनमें उसने अपने पुत्र के विद्रोही व्यवहार के प्रति उसे बुरा-भला कहा है।

हुमायूँ का पुत्र तो भला अपने पिता के विरुद्ध क्या विद्रोह करता क्योंकि अकबर जब मात्र तेरह वर्ष का था, हुमायूँ की मृत्यु हो गई। यदि हुमायूँ और अधिक जीवित रहता तो अकबर, जैसाकि उसके उत्तर-कालीन कार्यों से अनुमान लगाया जा सकता है, हुमायूँ को या तो कत्ल कर देता अथवा राज्य-च्युत करके बन्दी बना डालता। यद्यपि भाग्य ने हुमायूँ का साथ दिया पर उन तीन भाइयों से उसे काफी परेशानी हुई जिन्होंने हुमायूँ के विरुद्ध एक के बाद एक विद्रोह किया।

अकबर के पुत्र जहाँगीर ने उसे विष देने का असफल प्रयास किया। अपने पिता की परोक्षतः हत्या करने में असफल रहने पर जहाँगीर ने प्रत्यक्ष विद्रोह घोषित कर दिया।

जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ ने अपने पिता के प्रति विद्रोह की यह मुगल-परम्परा जारी रखी। पर बेचारा जहाँगीर को च्युत करने में सफल नहीं हुआ।

शाहजहाँ का पुत्र औरंगजेब वस्तुतः अपने पिता को बन्दी बनाने तथा अपने सभी भाइयों को मारने में सफल रहा। उसके पश्चात् तो मुगल साम्राज्य अत्यन्त ही बलहीन होकर छोटे-छोटे भागों में बँट गया था।

१७०७ में औरंगजेब की मृत्यु से लेकर अन्तिम मुगल बहादुरशाह के १८५८ में राजगद्दी से उतारे जाने तक मुगल दरबार के छल-कपट, लम्पटता, सतीत्वहरण, हत्या, लूटपाट आदि ने इसके पतन होने तथा दिल्ली की राजगद्दी पर अनेक छोटे-छोटे राजाओं के उत्थान-पतन में प्रभूत सहायता दी।

प्रस्तुत द्वितीय भाग प्रमुखतः मुगल-शासन से सम्बन्धित है जिनके साथ भारत में यवन-शासन समाप्त हुआ। पर क्योंकि पहले भाग में अन्तिम लोदी शासक, इब्राहीम, नहीं आ पाया था अतः प्रस्तुत भाग में उसको भी शामिल कर दिया गया है। प्रसंगतः यह मुगल-शासन की यवनिका उठाने में भी सहायक है।

भारत में यवन-शासन सम्बन्धी अनेक इतिहास विश्व में प्रचलित हैं पर उनमें अधिकांशतः दुष्टतापूर्ण तथ्यों को या तो छिपा देते हैं या उनकी लीपापोती करते हैं; और इसका कारण है चाटूक्तियों एवं धर्मान्धता की सहस्र वर्षीय परम्परा। अध्यापकों, प्राध्यापकों तथा लेखकों के मस्तिष्कों का इस खूबी के साथ परिवर्तन किया गया है कि अतीव क्रूर शासकों को वे या तो भूल जाएँ या ध्यान न दें या फिर उन्हें अत्यन्त भव्यता से चित्रित करें। यही मुख्य कारण है कि हम जनता के समक्ष उन तथ्यों को रखना चाहते हैं जिन्हें हमने विदेशी यवन लेखकों तथा यूरोपीय पर्यटकों एवं विद्वानों द्वारा लिखित विवरणों से लेकर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि भारतीय इतिहास के नाम पर विश्व को किस प्रकार प्रवंचित किया जाता है।

इस दूसरे भाग से दिल्ली की मध्यकालीन केन्द्रीय यवन सल्तनत का विवरण पूर्ण हो जाता है। हमने उन शासनों का मात्र बाह्य-स्पर्श किया है। अभी तो प्रभूत क्षेत्र है कि हम बिना किसी लाग-लपेट के चाटूक्तियों से रहित उनके नीच कारनामों का सविस्तार वर्णन करें। उन सहस्रों घटनाओं तथा तथ्यों को बेनकाब कर देना है जिन्हें या तो तोड़-मरोड़कर दिखाया गया है या फिर सहस्र वर्ष की परम्परा में विदेशी शासकों के लिए असुविधाजनक समझकर छोड़ दिया गया है। इतिहास तो अतीत की घटनाओं का यथातथ्य लेखा-जोखा है, अतः वाक्छलों को निर्ममतापूर्वक अलग कर देना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

हजार वर्षों के विदेशी शासन से भारत स्वतन्त्र हुआ है अतः कोई कारण नहीं कि अब भी इतिहास को पहले की ही भाँति झूठों से भरा हुआ लिखा जाए, पढ़ाया जाए तथा प्रस्तुत किया जाए। इन दो भागों के प्रस्तुत करने का हमारा उद्देश्य प्रच्छन्न एवं विकृत किए गये सत्यों को जनता के समक्ष उजागर कर देना है।

दिल्ली सल्तनत के अतिरिक्त अन्यान्य की छोटी-मोटी सल्तनतें हुई हैं; यथा बहमनी, आदिलशाह, कुतुबशाह, निजामशाह, बादिरशाह, जौनपुर सुलतान, गुजरात सुलतान, मालवा सुलतान, हैदरअली तथा टीपू सुलतान तथा अवध के नवाब। बहुतों के तो नाम भी ज्ञात नहीं, उनके कृत्यों का तो प्रश्न ही नहीं।

उनके राज्यों पर भी ऐसे ही ग्रन्थों के प्रकाशन करने की हमारी इच्छा है। ये सभी ग्रन्थ मिलकर भारत में यवन-शासकों का विश्वकोश बन जाएँगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय इतिहास में सन्दर्भ हेतु ऐसे ग्रन्थ की महती आवश्यकता है।

यह स्मरणीय है कि यद्यपि वे सब विभिन्न राष्ट्रियता एवं प्रजाति वाले थे, बोलियाँ भी भिन्न-भिन्न ही बोलते थे, उनके शासन प्रदेश भी भिन्न-भिन्न एवं विभिन्न आयामों के थे पर वे सभी इस्लाम के नाम पर शपथ लेते थे, तथा जहाँ कहीं भी जाते, मृत्यु और विनाश की लीला करते थे। पारम्परिक इतिहासों ने इस अधम तथ्य को या तो बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से यथासम्भव छिपाया है, तोड़ा-मरोड़ा है या फिर यूँ ही चलता कर दिया है। इन परम्परागत विवरणों को स्व० सर एच० एम० इलियट ने ठीक ही "निर्लज्ज एवं पक्षपातपूर्ण छल" कहा है। हम अपने पाठकों से इन परम्परागत इतिहासों के जालों से सावधानी बरतने की अपेक्षा रखते हैं।

प्रथमतः तो भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों से यह कहा गया है कि क्योंकि अरबी, फारसी, तुजक तथा उर्दू में इन विदेशी यवनों के भारत में शासन से सम्बंधित अनेकानेक वृत्तान्त हैं अतः मुसलमान महान् इतिहासकार थे। यह सर्वथा गलत है। ये लेख तनिक भी सच्चे नहीं हैं। ये अधिकांशतः उन अक्षम, चरित्रहीन विदेशी घुमक्कड़ों द्वारा लिखे गये हैं जो भारत के यवन दरबारों के टुकड़खोर थे तथा जिन्होंने अपने छोटे-मोटे ज्ञान को अपठ राजाओं की चापलूसी करने तथा उनके कुकृत्यों पर लीपा-पोती करने में भ्रष्ट कर रखा था। इस प्रकार शेरशाह सूर, फीरोजशाह तुगलक तथा अनेक अन्य जिन्होंने कहर ढा दिया था बड़े न्यायप्रिय, विद्वान् तथा योग्य बादशाह ठहराए गए हैं।

इन वृत्तों का दूसरा जाल यह है कि ये सब मनमौजी लेखकों की काल्पनिक रचनाएँ हैं जिनकी छोटी-छोटी घटनाएँ भी—यथास्थान,

वर्त्तनी, घटनाएँ, व्यक्तित्व, विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों के रक्त-संबंध—विश्वसनीय नहीं। इनमें से प्रत्येक लेखक ने नितान्त अप्रामाणिक गप्पें लिखीं या फिर कभी-कभी केवल पन्ने भरने के लिए नयी-नयी कथाएँ गढ़ लीं। ऐसी अशुद्धियों के हम अनेकानेक उदाहरण दे सकते हैं। चौथे मुगल सम्राट् जहाँगीर द्वारा लिखित 'जहाँगीरनामा' में, जो उसके अपने शासन का प्रामाणिक वृत्तान्त माना जाता है, उसने पुत्र परवेज की माँ को अपने हरम की अनगिनत स्त्रियों में से एक को बताया है किन्तु श्री एच० एम० इलियट की मान्यता है कि अबुल फजल ने परवेज की माँ किसी अन्य स्त्री को बताया है, और कि अबुल-फजल ही ठीक था। यह यवन-वृत्तान्तों की अविश्वसनीयता का एक उदाहरण है। स्वयं परवेज का पिता, जिसने वृत्तान्त लिखा, इस बात में विश्वसनीय नहीं कि अपने पुत्र की असली माँ तक को बता सके।

प्रथम भयानक विदेशी यवन आक्रमणकर्ता मुहम्मद बिन कासिम ने जब भारत पर हमला किया, अरबी वृत्तान्त सिन्ध के हिन्दू राजा का नाम दाहिर बताते हैं। उनका वास्तविक नाम धैर्यसैन होगा पर अरब (तथा यूनानी) लेखकों ने भारतीय नामों के साथ बड़ी मनमानी की है। उन इतिहास लेखकों का कैसे विश्वास किया जाय जो नामों तक के प्रति इतने लापरवाह थे? इसी प्रकार उसकी घरेलू स्त्रियों के विषय में बताते हुए एक अरब लेखक एक स्त्री को दाहिर की बहन, दूसरा दाहिर की पत्नी बताता है तो तीसरे (तथा आगे के अन्य भी) का तो कहना ही क्या? उसके अनुसार तो दाहिर ने अपनी बहन से ही विवाह किया था। समय के व्यतीत होने पर परवर्ती इतिहासकारों तथा प्राध्यापकों द्वारा इस नीच अरब मूर्ख को प्रामाणिक मानकर उद्धृत किया जाता है और हिन्दू अपने ही देश में घृणा के पात्र बनते हैं केवल इसलिए कि एक अरब ने असावधानीपूर्वक या जानबूझकर यह आक्षेप लगा दिया कि हिन्दू अपनी सगी बहनों से विवाह करते थे।

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश (विश्वकोश, खण्ड १०, पृष्ठ 'के' ३६५) में उल्लेख है कि सभी अरबी वृत्तान्त ६४० से १,००० ई० तक के काबुल के (हिन्दू) राजाओं को जांतबिल (Zant Bil) कहते हैं। ३६६ पृष्ठ पर विश्वकोश का अनुमान है कि काबुल के सभी राजा 'रणपाल' शब्द

प्रयुक्त करते होंगे। यह पदवी जांतबिल (Zant Bil) के रूप में अशुद्ध प्रकार से लिखी गई होगी और इसीलिए अरब लेखकों ने इसका प्रयोग ६४० से १,००० ई० तक के सभी हिन्दू राजाओं के लिए प्रयुक्त किया होगा। इन सब पर विचार करते हुए अरबों को महान् इतिहासकार मानने में कहाँ तक औचित्य है? इससे सभी सम्बन्धितों को सावधान हो जाना चाहिए कि सभी मुस्लिम इतिहास कितने अविश्वसनीय हैं।

दूसरा जाल, जो सभी मुस्लिम वृत्तान्तों में पाया जाता है, यह है कि वे अपने सभी संरक्षकों की महान् मेधावान, लेखकों, कवियों तथा आविष्कारकों के रूप में प्रशंसा करते हैं। उदाहरणार्थ हुमायूँ की, जो सदैव नशे में धुत्त रहता था एवं जो असाधारण रूप से स्त्री-लोलुप था, अनेक वृत्तान्तों में महान् ज्योतिषी, गणितज्ञ और न जाने किस-किस रूप में प्रशंसा हुई है। हाँ, ज्योतिष की उसे एक ही बात आती थी—कि सूर्य प्रातः निकलता है और सायं छिपता है। अतः इतिहास के विद्यार्थियों को, मुस्लिम वृत्तान्तों को सत्य रूप में नहीं स्वीकार लेना चाहिए। घृणित अर्थ-लाभ के लिए उन चापलूस लेखकों ने क्या-क्या नहीं गढ़ लिया?

यवन वृत्तान्तकारों की एक और नीचता रही है—और वह है विजित हिन्दू महलों, प्रासादों, नगरों, किलों, नहरों, बगीचों आदि के निर्माण को अपने यवन संरक्षकों द्वारा निर्मित बता देना। हमसे विश्वास कराया जाता है कि अपने चार वर्षीय-राज्य काल में बाबर ने अनेक उद्यान, महल एवं मस्जिदें बनवाईं, हुमायूँ ने अपनी निजी दिल्ली बसाई और ज्यों ही उसका पतन हुआ शेरशाह ने उस दिल्ली को समग्रतः विनष्ट कर अपने पाँच वर्ष के अल्पकाल में अपनी दिल्ली बसाई। इससे ही सन्तुष्ट न हो शेरशाह ने हजारों मील लम्बी प्रमुख सड़कें, सराय, और कुएँ बनवाए। खेद का विषय है कि हमारे विद्यार्थी एवं विद्वान् इतनी जल्दी जाल में फँस जाते हैं कि इन जाहिल चापलूसों द्वारा निर्मित कूड़े-करकट को यूँ ही स्वीकार कर लेते हैं। सामान्य इतिहासकार ने चापलूसी, असत्य, कल्पित, मनगढ़न्त तथा तोड़-मरोड़ों में से सत्य को उजागरकर अपनी तीव्र मेधा, तर्क-बोध, सांसारिक ज्ञान, पण्डितोचित सावधानी एवं न्यायोचित विवेक का परिचय नहीं दिया है।

मुसलमानों के भवन-स्वत्व का सफेद झूठ अभी हाल में प्रकाशित

अनेक शोध कृतियों से प्रभावपूर्ण ढंग से स्पष्ट हो जाता है। कुछेक कृतियां हैं "ताजमहल मन्दिर भवन है", "फतहपुर सीकरी हिन्दू नगर है", "दरगाह बन्दा नवाज हिन्दू मन्दिर है" तथा "आगरे का लाल किला हिन्दू इमारत है।" भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान, ऐसे अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए कटिबद्ध हैं जो प्रमाणित करेंगे कि मुसलमानों से सम्बन्धित सभी मध्यकालीन मस्जिदें, भवन, मकबरे, नहरें, पुल, महल, किले यवन-पूर्व हिन्दू निर्माण हैं।

प्रवंचक आधुनिक इतिहास-पाठ्यग्रंथकार बड़े सहानुभूतिपूर्वक मध्य-युगीन यवन वृत्तान्तकारों के लेखों पर विश्वास कर लिख देते हैं कि अमुक सुलतान या बादशाह ने गोवध बन्द करा दिया था तथा जिजिया कर हटा दिया था। भारत में यवन-शासन के समूचे इतिहास में ये घोषणाएँ इतनी बार दोहराई गई हैं कि यह जानना कठिन कार्य है कि कोई ऐसा यवन शासक भी था जिसने जिजिया कर लगाया तथा गोवध पर बल दिया अथवा हरेक हर समय इन दो घृण्य प्रथाओं पर रोक ही लगाता रहा। और इस बार-बार की रोक-थाम के बावजूद इस बात के प्रमाण हैं कि समूचे यवन-शासनकाल में गोवध तथा जिजिया कर वसूली जारी रहे। यह तथ्य हमारी उस स्थापना से सिद्ध है जिसमें हमने अकबर के शासनकाल में जिजिया की प्रथा को प्रचलित बताया है। कहा जाता है उसने जिजिया समाप्त कर दिया था किन्तु हमने दिखाया है कि दो जैन संन्यासी—हिर-विजय तथा शांति-विजय—तथा एक शासक हिन्दू राजकुमार सुर्जनसिंह भिन्न-भिन्न अवसरों पर अकबर से, उसके शासनकाल में, जिजिया से विशेष मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि अकबर ने जिजिया कभी समाप्त नहीं किया था तथा इतिहासकारों की विपरीत घोषणाओं के बावजूद अकबर के "प्रबुद्ध" शासन में हर समय जिजिया वसूल किया जाता रहा था? यह क्या यह भी सिद्ध नहीं करता कि इतिहास में अकबर की जिजिया के हटाने सम्बन्धी सभी घोषणाएँ या तो अज्ञानतावश हैं अथवा उत्तेजक असत्य?

इसी प्रकार प्रस्तुत पुस्तक के बहादुरशाह सम्बन्धी अंतिम अध्याय में हमने बताया है कि किस प्रकार उसे दो मास में तीन बार गोवध बन्द करने वाला बताया गया है। क्या यह प्रदर्शित नहीं करता कि बहादुरशाह के

गोवध सम्बन्धी तथाकथित आदेश मात्र प्रदर्शन थे ? या तो वे आदेश कभी दिए ही नहीं गए या फिर उनका कभी पालन ही नहीं किया गया। ऐसे में—कहाँ तक उचित है कि इतिहासकार आँख मूँदकर लिखें कि बहादुरशाह ने गोवध बन्द कर दिया था ?

इससे हमें बड़े पुराने शराबी तथा भंगड़ी का मजाक याद आता है जो कहता है, "शराब पीना या भंग पीना बन्द करना कितना कठिन है; मैंने इसे सौ बार किया है और दो सौ बार कर सकता हूँ।" अतः इतिहास के विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को महसूस करना चाहिए कि जिजिया से सताये हिन्दुओं की पीढ़ियों की निरन्तर कराहटों तथा गोवध के लोलुप म्लेच्छों की लज्जा के कारण यवन-दरबारी-चापलूसों ने थोड़े-थोड़े काल के बाद यह लिख देना उचित समझा कि अमुक सुलतान अथवा बादशाह ने गोवध तथा जिजिया कर पर रोक लगा दी थी। तद्वत् धूर्त यवन शासक भी राजनीतिक ढंग से हामी भर देते थे, जब कभी जिजिया कर वसूली की क्रूरताओं एवं बहुत बड़ी संख्या में गोवध की बात बलपूर्वक दरबार में कही जाती थी। मध्ययुगीन दरबारी यवन इतिवृत्तकार भी कम धूर्त नहीं थे जो ऐसी छोटी-से-छोटी बात भी बिना लिखे नहीं रहते थे (जिससे जनता एवं राजा प्रसन्न हो जाए) कि यवन शासक ने कृपापूर्वक गोवध बन्द करने एवं जिजिया वसूली समाप्त करने का आदेश दे दिया है। पर यह केवल लेखा एवं फरियाद करने वाले व्यक्ति को अनिश्चित विश्वासों से दूर करने के लिए ही था जबकि तथ्य यह है कि जिजिया सदैव वसूल किया गया तथा गोवध सदैव किया जाता रहा, पर मध्ययुगीन यवन प्रशासन में किसी ने आँख तक नहीं उठाई। इस सबसे हमें एक ही शिक्षा मिलती है कि मध्ययुगीन यवन इतिहास लेखकों को कभी गम्भीरतापूर्वक न लें। प्रामाणिकता की मोहर लगाने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम मध्यकालीन यवन वृत्तान्तों की भली-भाँति जाँच करें, परीक्षा करें, पड़ताल करें, जिरह करें तथा स्वतन्त्र साक्षी से पुष्ट कर लें। हम इतिहास-जगत् से यह भी कहना चाहते हैं कि भारत के मध्ययुगीन अरब, तुर्क, अफगान, ईरानी, एबीसीनियायी तथा मुगल शासकों में कोई भी न्यायी, योग्य, दयालु अथवा ज्ञानवान नहीं था। बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से उनकी महत्ता एवं भलेपन की मिथों को दूर करने के लिए हमने प्रस्तुत तथा प्रथम भाग में दिल्ली के यवन सुलतानों में

से एक-एक के वृत्त को श्रमपूर्वक विश्लेषित किया है।

अपने निष्कर्ष निकालने में हम अतीव विश्लेषक तथा वस्तुनिष्ठ रहे हैं, धोखा देनेवाले, गतानुगतिक एवं दरबारी चाटुकारों के लिखित शब्दों के अन्धभक्त नहीं रहे हैं।

हमने अपना पक्ष समसामयिक दशाओं, लिखित अभिलेखों एवं मानव प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में तर्क से सिद्ध किया है। हमारा विश्लेषण तो पूर्णतः स्पष्ट है। हमने सर्वत्र यही बताया है कि पारम्परीण विचार क्या रहा है, यह गलत क्यों और किस सीमा तक है। अधिकांशतः हमने तो यही देखा है कि इतिहास अत्यन्त विपर्यस्त तथा उलटा-पुलटा है। उदाहरणार्थ मध्ययुगीन यवन आक्रमणकारी तथा शासक निर्माता न होकर विध्वंसक थे। अतः मध्यकालीन ऐतिहासिक स्थलों के दर्शकों को एक ही बात याद रखनी चाहिए, और जो उनके बड़े काम की होगी, कि "निर्माण सब हिन्दू का है और ध्वंस मुसलमान का।"

हम भारत के अध्यापकों-प्राध्यापकों से चाहेंगे कि वे अपने विद्यार्थियों से किसी प्रकार अकबर, शेरशाह या फीरोजशाह की महत्ता के बखान की आशा न करें। उनके लाभ के लिए हमने प्रस्तुत तथा पूर्व कृति में दिल्ली के सभी सुलतानों का चित्रण करके सिद्ध किया है कि कोई भी सुलतान बर्बरता, क्रूरता एवं विप्लवन में दूसरे से कम नहीं था। विद्यार्थियों से कक्षाओं तथा प्रतियोगी परीक्षाओं में अपठ विदेशी बर्बरों के काल्पनिक गुणों के दिल खोलकर वर्णन करने को कहना घाव पर नमक छिड़कना है। यह सत्य नहीं है, फिर इतिहास कैसे ?

अध्यापन एवं परीक्षाओं में राणा प्रताप, शिवाजी तथा अन्य राष्ट्रिय एवं देशभक्त योद्धाओं पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। यह सर्वथा स्वाभाविक था कि एक हजार वर्षों के विदेशी शासन में इन्हें दूर हटा दिया जाय, इनके मुँह पर कालिख पोती जाए और इनका नाम भी न लिया जाए। पर जब हम स्वतन्त्र हैं तब ऐसा क्यों करें? सच तो यह है कि हमारे अध्ययन पूर्णतया इन राष्ट्रिय मूर्तियों पर केन्द्रित हों।

विदेशी आक्रमणकारियों एवं दमनकर्ताओं के शासनों का विस्तार-पूर्वक अध्ययन सभी भारतीयों को यह स्मरण दिलाने के लिए अतीव आवश्यक है कि जो सैनिक रूप से दुर्बल, राजनीतिक क्षेत्र में एकताहीन

एवं सांस्कृतिकतः अशक्त रहते हैं उनके लिए इतिहास अपने गर्भ में भयानक दण्ड छिपाए रहता है।

सहस्र वर्षीय दास-परम्परा के कारण भारत के विदेशी दमनकर्ता सदैव शानदार एवं आदर्श शासक के रूप में प्रशंसित रहे हैं जबकि विलोमतः, भारतीय देशभक्त योद्धागण महत्त्वहीन एवं निन्दनीय नराधम के रूप में घृणा के पात्र रहे हैं। जनता, सरकार, अध्यापक तथा इतिहास पण्डितों का यह पुनीत कर्तव्य है कि इस आवश्यक तथा इतिहास बोध का सबलतापूर्वक खण्डन करें। उन्हें इस आवश्यकता का भान कराने के लिए ही इन ग्रंथों को लिखा गया है। इस दृष्टि से ये ग्रंथ पिष्टपेषित इतिहास ग्रंथों से सर्वथा भिन्न हैं। गत इतिहासों के विपरीत हमने अंधविश्वास एवं शेखचिल्लीपन से दूर रहकर कठोर सत्य एवं तर्क में आस्था रखी है।

—पुरुषोत्तम नागेश ओक

: १ :

इब्राहीम लोदी

(नवम्बर २१, १५१७-अप्रैल २१, १५२६)

इब्राहीम लोदी कुख्यात लोदी वंश का तीसरा तथा अन्तिम सुलतान था। कुतुबुद्दीन से लेकर आगे तक दिल्ली के सभी विदेशी यवन सुलतानों के समान इब्राहीम ने भी अपनी दीन-हीन प्रजा पर असह्य अत्याचार ढाये। अपने पूर्वजों की भाँति वह भी कट्टर मुस्लिम था।

अपनी अगणित हिन्दू प्रजा से तो वह घृणा करता ही था, अपने सगे-सम्बन्धियों को भी सताने में उसे आनन्द आता था। स्पष्ट है कि वह उन विदेशी सुलतानों से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं था जिन्होंने १२०६ ई० से १८५८ ई० तक दिल्ली अथवा भारत की अन्य छोटी-छोटी यवन-जागीरों में शासन किया।

भारत के मुस्लिम शासन की विशेष बात यह थी कि प्रत्येक सुलतान ने इस्लाम के नाम पर हिन्दुओं तथा ईसाइयों पर भयानकतम क्रूरताएँ ढायीं तथा प्रत्येक ही अपने ही भाइयों, पिता, दरबारियों तथा सेनापतियों द्वारा घृणा का पात्र बना। फिर भी उनका कोई न कोई ऐसा इतिहासकार अवश्य होता था जो उसकी योग्यता, नेकनीयती तथा ईमानदारी की प्रशंसा के पुल बाँध देता था। इब्राहीम लोदी के दरबार में भी कुछ ऐसे चापलूस थे जिन्होंने उसे सम्माननीय व्यक्ति एवं प्रबुद्ध प्रशासक बताया है। फिर भी उसके शासन के प्रत्येक वर्णन से स्पष्ट है कि वह अभिमानी, घमण्डी, ढीठ, मौज पसन्द, अयोग्य, धर्मान्ध एवं क्रूर व्यक्ति था।

इतिहास के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को जब यह लगे कि उसकी की गयी झूठी प्रशंसा के विपरीत तथ्य कुछ और ही हैं तो उन्हें किसी भी संशयात्मक स्थिति में न पड़कर आश्वस्त हो जाना चाहिए कि उसकी की

गयी प्रशंसाएँ निरी चापलूसियाँ हैं।

भारतीय इतिहास के आधुनिक लेखकों की सबसे दुःखद कमी तो यह है कि मध्यकाल के उन मुस्लिम इतिहासों में से, जिनमें इस्लामी युद्ध-प्रियता तथा क्रूर शासक के प्रति विनीत भाव के कारण सफेद झूठ भरा हुआ है, सत्य नहीं निकाल पाते। सत्य की खोज के लिए लेखक को उसी युग की भावना से ओतप्रोत हो जाना चाहिए।

उदाहरणार्थ यह जानना कठिन नहीं कि मध्यकाल में जब यह समाचार फैला कि असहाय भारतीयों पर शासन करते हुए मुस्लिम शासक धन लूट रहे हैं, हजारों का धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं, उनकी स्त्रियों तथा बाल-बच्चों का अपहरण कर रहे हैं तो प्रतिदिन अफगानिस्तान से लेकर अरब तक के नीच-गुण्डे भारत आने लगे। वे उन लोगों के नाम किसी का भी परिचय-पत्र ले आते जो मुस्लिम दरबार के पदाधिकारी होते। अन्य लोग भी, जिन पर ऐसे परिचय-पत्र न होते, येन-केन-प्रकारेण प्रभावशाली दरबारियों तथा यवन शासक तक पहुँच ही जाते। उन म्लेच्छों को धन तथा भूमि प्रदान कर दी जाती थी, जो कुरान की कुछ आयतें सुना देते, अरब का दो-चार मुट्ठी रेत दे देते, गद्य या पद्य में प्रशंसात्मक कसीदे गा देते अथवा अपहृत महिलाएँ भेंट कर देते। आश्चर्य तो यह है कि चापलूसों ने ऐसे कृत्यों को कला एवं ज्ञान के संरक्षक कार्य अथवा न्याय, योग्यता तथा दयालुता के काम बताया है। जब उनके शासन के अभिलेख रक्तिम एवं नृशंस कार्यों से परिपूर्ण हैं तो सच्चे इतिहासकार को यवन इतिहासों की मिथ्या प्रशंसाओं द्वारा धोखा नहीं खा जाना चाहिए।

सत्य की इस अनुभूति से हमें इब्राहीम लोदी के शासन का अध्ययन भी अत्यन्त सजगतापूर्वक करना चाहिए। इब्राहीम के शासन के प्रारंभ के विषय में एल्फिस्टन का कथन है* "''''उसका एक भाई, जिसने स्वयं को जौनपुर का राजा घोषित कर रखा था, एक वर्ष के भीतर ही जीतकर इब्राहीम द्वारा चुपचाप समाप्त कर दिया गया—अन्य भाइयों को जीवन

---

*द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, द हिन्दू एण्ड मोहम्मडन पीरीयड्स, माउंट स्टुअर्ट एल्फिस्टन, किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ ३६२।

भर के लिए बन्दी बना लिया गया। तदुपरान्त इस्लाम खाँ नामक सरदार ने विद्रोह किया, पर वह युद्ध में मार डाला गया। इन कृत्यों में भाग लेने वाले अन्य अनेक उच्चाधिकारी तथा प्रान्तों के शासक समाप्त कर दिये गये। अन्य अनेक सन्देह के कारण ही मार डाले गये; कुछ को बन्दी बना कर चुपके से समाप्त कर दिया गया; एक को तो शासन की कुर्सी पर ही कत्ल कर दिया गया।"

भारत में यवन शासन का यह एक अजीब ही तथ्य है, जिसकी ओर भली-भाँति ध्यान नहीं दिया गया, कि उक्त वर्णन ७१२ ई० से १८५८ ई० तक लगभग प्रत्येक यवन सुलतान के शासन पर घटता है, वह चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, चाहे दिल्ली से राज्य चला रहा हो चाहे किसी अन्य स्थान से। बस शासक का नाम भर बदल देना है अन्यथा गड़बड़, भ्रष्टाचार तथा क्रूरता तो पूर्वज से उत्तराधिकारी तक लगातार जारी रही। दूसरी समानता यह थी कि प्रत्येक मुस्लिम शासक के पास निरपवाद रूप से चाटुकारों की कमी नहीं थी जिन्होंने विद्रोह, भुखमरी, क्रूरताओं, भ्रष्टाचार तथा स्वेच्छाचारिता से भरे हुए शासन के होते हुए भी उनकी तारीफों के पुल बाँधे हैं।

इब्राहीम का पिता सिकन्दर लोदी अपनी लूटपाट, क्रूरता तथा हिन्दुओं के पवित्र स्थलों को अपवित्र करने के कृत्यों के लिए कुख्यात था। १५१७ ई० में वह आगरे में मरा। यद्यपि कुछ चाटुकारों द्वारा उसे श्रेष्ठ एवं महान् शासक घोषित किया गया है पर उसका महत्त्व इसीसे आँका जा सकता है कि यह भी नहीं पता कि उसे कहाँ दफनाया गया। उसकी मृत्यु आगरे में हुई, अतः निश्चय ही उसे वहीं कहीं दफनाया गया होगा। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि उसे दिल्ली के अधिकृत हिन्दू भवन के उस भाग में दफनाया गया बताया जाता है जिसे बड़ी मासूमियत से "लोदी का मकबरा" कहा जाता है। स्पष्ट है कि अन्य अनेक भूलों की भाँति यह भी पुरातत्त्व सम्बन्धी भूल है।

विश्वास किया जाता है कि इब्राहीम लोदी नवम्बर २१, १५१७ को बादशाह बना। अपने पिता के समान उसने भी समीपस्थ स्थानों पर धन तथा स्त्रियाँ लूटने और यदि सम्भव हो तो अपनी राज्य-सीमा विस्तृत करने के लिए चढ़ाइयाँ कीं।

इब्राहीम का पहला धावा ग्वालियर पर हुआ जिसका हिन्दू शासक राजा मानसिंह का पुत्र विक्रमादित्य था। दिल्ली या आगरे में शासन करने वाले विदेशी मुस्लिम सुलतानों की आँखों में ग्वालियर का हिन्दू राज्य बहुत काल से काँटे की भाँति खटक रहा था। फलतः इस पर अनेक बार आक्रमण हुए। प्रत्येक बार मुसलमान सेनाएँ बुरी तरह खदेड़ दी गयीं जो वहाँ लगातार हिन्दू शासकों के शासन करने से स्पष्ट है। फिर भी प्रत्येक मुस्लिम तवारीख प्रत्येक आक्रामक यवन सुलतान की विजय की घोषणा करती है। इसी प्रकार इब्राहीम के शासन के मुस्लिम अभिलेख घोषणा करते हैं कि ग्वालियर शासक विक्रमादित्य ने पराजय स्वीकार कर दास बन जाना मान लिया था। ऐसी डींगों को कोई महत्त्व नहीं देना चाहिए क्योंकि मुस्लिम तवारीखें प्रत्येक लड़ाई में मुस्लिम शासक की महान् विजय घोषित करती आयी हैं। मुस्लिम तवारीखों में ग्वालियर शासक 'विक्रमाजीत' कहा गया है जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वर्त्तनी तथा उच्चारण में मुसलमान बहुत लापरवाही बरतते थे अन्यथा नाम 'विक्रमादित्य' होना चाहिए। स्वतंत्र भारत में तो इन अशुद्धियों को ठीक कर लेना चाहिए। पाठकों को भी महसूस करना चाहिए कि मुस्लिम तवारीखों में ऐसी अनेक भ्रांतियाँ हैं, जिनके कारण उनकी विश्वसनीयता में प्रश्न-चिह्न लग जाता है।

इब्राहीम का दूसरा युद्ध मेवाड़ के वीर हिन्दू शासक संग्रामसिंह उपनाम सांगा से हुआ। मुस्लिम सेना को इतनी भीषण पराजय मिली कि बचे-खुचे सैनिक अपने साथियों तथा सामान से हाथ धोकर इधर-उधर भाग खड़े हुए।

इब्राहीम के सगे छोटे भाई जलालखाँ ने इब्राहीम के राजसिंहासन पर बैठने के अधिकार को चुनौती दी। जलालखाँ ने अपने को जौनपुर का राजा घोषित कर दिया। इब्राहीम ने उसके विरुद्ध सेना भेजी। कालपी पर हुए युद्ध में छोटा भाई हार गया। ग्वालियर भागकर उसने वहाँ के हिन्दू सम्राट् विक्रमादित्य के यहाँ कुछ दिन शरण ली। उसकी उपस्थिति से इब्राहीम का क्रोध ग्वालियर पर हुआ, तभी जलालखाँ दक्षिण की ओर भाग गया। मालवा के सरदारों ने उसे पकड़कर इब्राहीम को सौंप दिया। इब्राहीम ने अपने अधिकृत अनुज के शिरच्छेद में तनिक भी

देर नहीं लगायी।

अपने सभी पूर्वजों की भाँति इब्राहीम का शासन भी विध्वंसकारी धावों तथा विद्रोहों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इब्राहीम के विरुद्ध उसके भाई के अतिरिक्त उसके अनेक दरबारियों एवं सेनापतियों ने भी विद्रोह किया। उनमें से एक आजम हुमायूँ था जिसके पुत्र इस्लाम खाँ ने तो आगरे तक पर चढ़ाई की, पर पकड़ा जाकर कत्ल कर दिया गया। बिहार के शासक दरया खाँ लोहानी, खान-ए-जहाँ लोदी, मियाँ हुसेन खाँ आदि एक के बाद एक उसके विरुद्ध विद्रोह करते रहे। दरया खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र बहादुर खाँ ने अनेक असन्तुष्ट सेनापतियों के साथ इब्राहीम के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बना लिया। मोहम्मद खाँ नाम से उसने अपने को बादशाह घोषित कर दिया। उसने अपने नाम के सिक्के भी चला दिये तथा १५२३ ई० तक बिहार का बहुत-सा भू-भाग अपने राज्य में मिला लिया।

इब्राहीम के चाचा आलम खाँ उर्फ अलाउद्दीन लोदी के मन में भी उसे गद्दी से उतार स्वयं सिंहासनासीन होने की लालसा थी। उसने विशाल सेना बना ली और सिन्धुपार के एक नये लुटेरे बाबर से भी बातचीत चलायी।

पंजाब के शासक दौलत खाँ लोदी ने भी राजभक्ति को तिलांजलि देकर अपने को शासक घोषित कर दिया। अब तक यह मुस्लिम साहसी, बाबर, अनेक वर्षों से भारतीय सीमा पर उछल-कूद मचा रहा था, पर इस गड़बड़ में उसने हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का अच्छा अवसर देखा।

इब्राहीम के क्रूर एवं तानाशाहीपूर्ण शासन ने भारत की कैसी दशा कर दी, इसका वर्णन करते हुए एक लेखक कहता है, * "दिल्ली सल्तनत नाम मात्र को थी। अपने पुत्र दिलावर खाँ के प्रति दुर्व्यवहार के कारण इब्राहीम लोदी से असन्तुष्ट पंजाब के सर्वाधिक शक्तिशाली दौलत खाँ तथा दिल्ली के सिंहासन पर आँख लगाये इब्राहीम लोदी के ही चाचा आलम खाँ ने तो यहाँ तक कर डाला कि बाबर को भारत पर आक्रमण

---

*पृ० ४२६, एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डया, ले० : आर०सी० मजूमदार, एच० सी० रायचौधुरी तथा कालीकिंकरदत्त।

करने का निमंत्रण ही दे दिया।"

पहले से ही प्रस्तुत अनेक लुटेरों की सहायता से हिन्दुस्तान की लूटपाट में अत्यन्त लाभ देखकर विशाल मुस्लिम लुटेरों को साथ लेकर बाबर ने भारत में प्रवेश किया। अनेक विद्रोही सरदारों की सहायता पाकर वह पानीपत पहुँचा—वह पानीपत का मैदान जहाँ अनेक निर्णायक युद्ध हुए।

इस नयी बला से निपटने के लिए इब्राहीम लोदी आगरे से अपनी वाहिनी लेकर चला। १२ अप्रैल को दोनों सेनाओं का सामना हुआ। किन्तु वास्तविक युद्ध होने में एक सप्ताह लग गया। २१ अप्रैल, १५२६ को प्रात: दोनों सेनाएँ भिड़ गयीं। यवन इतिहासों में जैसे कि सामान्यत: पाया ही जाता है बाबर अपनी सेना में केवल २५,००० सैनिक तथा इब्राहीम की सेना में इसकी चार गुनी संख्या बताता है ताकि इतनी बड़ी संख्या पर अपनी विजय को और भी शानदार ढंग से प्रस्तुत किया जा सके। बिना किसी तथ्यपरक साक्षी के इसपर भी कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। हमें तो ऐसा लगता है कि ये संख्याएँ ठीक उलटी होंगी। क्योंकि इबाहीम से उसके रिश्तेदार तथा सेनापति नाराज थे, अत: सम्भव है वह केवल २५,००० व्यक्ति ही एकत्र कर पाया हो जबकि नये लुटेरे बाबर की सेना एक युद्ध के बाद दूसरे युद्ध में क्रमश: बढ़ती ही गयी। इब्राहीम के रिश्तेदारों तथा विशाल वाहिनी के सेनापतियों तक ने बाबर को सहायता दी।

दोपहर होते-होते इब्राहीम लोदी की सेना मैदान छोड़कर भागने लगी। इस युद्ध में २०,००० व्यक्तियों के साथ स्वयं इब्राहीम भी मारा गया।

बाबर की विजय ने सुलतानों की उस लम्बी पंक्ति पर पर्दा डाल दिया जिन्होंने १२०६ से १५२६ तक दिल्ली या आगरे से शासन किया। यद्यपि वे विभिन्न प्रजातियों तथा अफगानिस्तान से लेकर पर्शिया, टर्की, अरब एवं एबीसीनिया तक के थे पर इस्लाम के नाम पर गैर-मुस्लिमों का संहार करने, भय एवं क्रूरता प्रदर्शित कर सामूहिक धर्म-परिवर्तन करने, धन-स्त्री लूटने, मन्दिरों को मस्जिदों में बदलने तथा गजनी, बुखारा तथा समरकन्द के बाजारों में दास रूप में बेचने के लिए पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों को ले जाने में सभी एक से थे।

भारत में विशाल मध्यकालीन यवन कुशासन में इब्राहीम की हार तथा मृत्यु को मध्यान्तर कहा जा सकता है। इसके पश्चात् इतनी अवधि (१५२६-१८५८ ई०) तक दिल्ली उनके द्वारा शासित रही जिन्हें मुगल वंश कहा जाता है। पर इस नाम-परिवर्तन तथा एक ही वंश में उत्तराधिकार बने रहने के अतिरिक्त मुस्लिम शासन का रवैया वैसा ही गड़बड़, भ्रष्ट, क्रूरतापूर्ण, झगड़ों से भरा, स्वेच्छाचारी तथा पापपूर्ण रहा जैसा कि पहले था।

: २ :

बाबर

यवन शासकों के सहस्र-वर्षीय क्रमिक शासन में १५२६ ई० में मुगलों द्वारा लोदियों का स्थान ग्रहण करने पर भारतीय इतिहास ने मध्यकालीन भारत का एक नया ही पृष्ठ जोड़ा, जहाँ निरन्तर हत्याओं एवं भारत-विनाश का सिलसिला जारी हो गया।

इन नियतकालिक उत्तेजक परिवर्तनों से उन दरबारियों तथा उनके शैतान सुलतानों में चाहे कोई अन्तर आया हो, हिन्दू जाति के लिए तो यह नारकीय संत्रास की भयावह रात सिद्ध हुई।

लोदी वंश में एक से एक दुष्ट तीन सुलतान हुए। अन्तिम सुलतान, इब्राहीम, सिकन्दर के मरणोपरान्त १५१७ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। ठीक यवन परम्परानुसार, उसका अपना भाई, जलाल खाँ ही उसका घोरतम शत्रु था। जलाल खाँ, जिसकी राजधानी जौनपुर थी, स्वतन्त्र शासक था। दोनों भाई एक दूसरे के खून के प्यासे थे। प्रभावशाली आजम हुमायूँ साखानी अजीब ही यवन दरबारी था जो दोनों भाइयों से रिश्वत लेकर जो जीतता उसी की ओर हो जाता था। जलाल खाँ को भागकर ग्वालियर तथा गोंडवाना के हिन्दू राजाओं के यहाँ शरण लेनी पड़ी। पर ऐसे हत्यारे की कौन सहायता करता? अन्त में इब्राहीम की सेना द्वारा वह पकड़ा गया और जब दिखावे के तौर पर अपने अन्य भाइयों के साथ हांसी बन्दीगृह के लिए ले जाया जा रहा था, उसकी हत्या कर दी गयी।

जलाल खाँ को मार्ग से हटाकर अब हिन्दू घरों को लूटने के लिए अकेला इब्राहीम ही रह गया था। उसने ग्वालियर को लक्ष्य बनाया। इसका वीर सम्राट् मानसिंह, जिसने सिकन्दर को नीचा दिखाया था,

स्वर्गवासी हो चुका था। ग्वालियर जनता के विरुद्ध इब्राहीम की क्रूरताओं ने कुमार विक्रम को संधि के लिए मजबूर कर दिया। हिन्दू ग्वालियर को विनष्ट करने के लिए इब्राहीम की सेना में नौ यवन सेनापति जा मिले। इस विजय से फूलकर यवन सेनाएँ मेवाड़ के राणा साँगा की ओर भी गयीं पर मुँह की खाकर वापस आ गयीं।

अन्य यवन शासकों की भाँति, इब्राहीम को भी उसके अपने ही दरबारी अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। बदले में, इब्राहीम ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह "अफगानी कुलीन पुरुषों को पूर्णतया अधिकार में करके समस्त शक्ति को केन्द्रीभूत कर लेगा।···आजम हुमायूँ सखानी ग्वालियर के फेरे से वापस बुलाकर बन्दी बना लिया गया। इसी भाँति, मियाँ भूवाह नामक मन्त्री को भी बन्दी बना लिया गया। इस भयानक क्रूरता के कारण ही आजम हुमायूँ सखानी के पुत्र, इस्लाम खाँ ने कड़ा में विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर दिया। इस कार्य में उसे ग्वालियर से अकस्मात् प्रत्यावर्तित दो लोदी सरदारों का भी समर्थन प्राप्त हो गया था।" (पृ० १४८-४९, द दिल्ली सल्तनत, भारतीय विद्याभवन की 'द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इंडियन पीपुल', जिल्द VI, १९६७)। ये राज-द्रोही इब्राहीम के लिए बहुत गम्भीर चुनौती बन गये। इब्राहीन ने सुदूर प्रान्तों के शासकों को अपनी सहायता के लिए बुलाया। आगामी युद्ध में इस्लाम खाँ दस सहस्र अन्य विद्रोहियों के साथ मारा गया।

इस सफलता ने इब्राहीम को और भी अधिक क्रूर बना दिया। दो असहाय बन्दी, मियाँ भूवाह तथा आजम हुमायूँ सखानी मार डाले गये। "एक अन्य भद्र पुरुष, मियाँ हुसेन फारमुली को सुलतान के भाड़े के टट्टुओं ने चंदेरी में ठिकाने लगा दिया। इससे दूसरे कुलीन व्यक्तियों में घृणा और भय की लहर व्याप्त हो गयी तथा वे अपनी सुरक्षा के उपाय सोचने लगे।" इब्राहीम की इस दुराचारिता का मेवाड़-शासक राणा साँगा ने लाभ उठाकर चंदेरी को हथिया लिया।

अनेक विख्यात यवन दरबारियों ने विद्रोह की घोषणा कर दी। बहार खाँ ने सुलतान मुहम्मद उपाधि धारण कर बिहार से सम्भल तक का भू-भाग अपने अधिकार में कर लिया। जब इब्राहीम पूर्वी क्षेत्रों में इन विद्रोहों को दबाने में लगा था, उसके पंजाब के शासक दौलत खाँ लोदी ने लुटेरे एवं

बर्बर व्यक्ति बाबर से, भारत पर चढ़ाई करने तथा इब्राहीम को मार डालने के लिए बात शुरू कर दी। जब सुलतान इब्राहीम ने दौलत खाँ के पुत्र दिलावर खाँ को लाशों का जादुई प्रदर्शन यह कहकर किया कि उसकी आज्ञा न मानने वालों की यही गति होगी तो वह भय के मारे अपने पिता के पास लाहौर भाग गया।" (पृ० ८७, तारीख-ए-शानी) यवन इतिवृत्तों में अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है कि भारत के अधिकांश यवन शासक अपने अधिकार को न माननेवाले रिश्तेदारों तथा दरबारियों को डराने के लिए (अपने द्वारा) वध किये हुए कुछेक शरीरों को रखा करते थे।

इब्राहीम लोदी की शाही अलमारी में रखे हुए उन अस्थि-पंजरों से दिलावर खाँ इतना भयभीत हो गया कि वह भागकर सीधा काबुल में बाबर के पास गया जो हिन्दुस्तान को लूटने की ताक में ही था। इब्राहीम का चाचा आलम खाँ स्वयं अपने भतीजे की क्रूरताओं से इतना परेशान था कि इब्राहीम की इस लूटखसोट पर रोक लगाने के लिए वह बाबर से प्रार्थना करने स्वयं गुजरात से काबुल गया था। अब हम बाबर के संस्मरणों के संदर्भ देखते हैं।

उसके वर्णनों में पाँच खाली स्थान हैं : १५०३-०४ ई०, १५०८-१५१६, अप्रैल २ से सितम्बर १८, १५२८ तथा उसके जीवन के अन्तिम १५ महीने।

यद्यपि बाबर को भारत में मुगल वंश को स्थापित करने वाला कहा गया है, वस्तुतः वह तातार था, जिसने मुगलों का उल्लेख बड़ी घृणा के साथ किया है।

बाबर का पिता, उमरशेख, ५०,००० वर्गमील उपजाऊ भूमि का, जिसे तब फरगना कहते थे, मालिक था। वही भू-भाग अब कोकन्द कहलाता है। जो रूसी तुर्किस्तान में है।

बाबर का जन्म १४ फरवरी, १४८३ को हुआ। उसका पिता अतीव शराबी एवं अफीमची था, जिसके हरम में अनगिनत बेगमें एवं वेश्याएँ थीं। बाबर का पिता अपने कबूतरखाने से गिरकर मर गया और ११ वर्षीय बाबर १४९४ ई० में बादशाह बन गया। बाबर का पालन करने वाला शेख मजीद बेग "अत्यन्त व्यभिचारी तथा पुरुषमैथुनकर्ता था।" (बाबर के संस्मरण, जान लेडन तथा विलियम इर्सकीन द्वारा अनूदित, सर लूकस

किंग द्वारा टिप्पणियों सहित, पृ० २२-२३)।

बाबर के पिता के अन्य सहयोगियों में अली मजीद बेग कुची था। बाबर के अनुसार "उसने दो बार विद्रोह किया तथा अत्यन्त कामी, क्रूर एवं पाखंडी था।" इससे पता चलता है कि भारत में १५२६ से १८५८ ई० तक राज्य करने वाले मुगलों ने अपने पितृवंश एवं मातृवंश से विरासत में मिली दुष्टताओं—शराबखोरी, अप्राकृतिक मैथुन, बलात्कार, लूटमार, स्त्री-व्यवसाय तथा दास व्यापार की किस शान से रक्षा की थी! पिता की ओर से तैमूर लंग तथा माँ की ओर से चंगेज खाँ—इस प्रकार इतिहास के घृणिततम एवं भयानक लुटेरों से सम्बन्धित होने के कारण आश्चर्य नहीं कि भारत के सभी मुगल शासक अपने विकृत पूर्वजों, सलाहकारों तथा सरदारों की हूबहू नकल तथा और भी नीच तथा कुटिल रूप थे।

स्वयं स्वीकृत पुरुष मैथुनकार बाबर काम की भ्रष्ट तृप्ति के लिए सुन्दर लड़कों से प्यार करता था जबकि अपनी पत्नियों से सदैव लजाता था। अपनी पत्नी, आयशा के विरुद्ध उसका आक्षेप है, "अपनी बड़ी बहिन की चालों में फँसकर उसने मेरा परिवार छोड़ दिया था।"

बाबर का समूचा जीवन डाकूपन की कहानी है—प्रारम्भ में छोटी-मोटी लूटमार, बाद में बहुत भयानक डकैतियाँ। अपने 'संस्मरण' के ५४वें पृष्ठ पर वह बताता है कि एक बार उसने जगराग (एक वन्य जाति) पर धावा बोलकर उनकी २०,००० भेड़ें तथा १५०० घोड़े छीन लिये थे। इन्हीं लूट-खसोटों ने उसे आगे चलकर स्वयं तथा अपनी सन्तति द्वारा हिन्दुस्तान लूटने में सहायता दी।

प्राचीन भवनों को यवन इतिहास किस प्रकार झूठ बोलकर अपना सिद्ध करते हैं। इसका एक उदाहरण बाबर के 'संस्मरण' के ६३वें पृष्ठ पर है। उसने एक सराय के विषय में लिखा है कि उसे 'ग्रीन पैलेस' नाम से उसके पूर्वज तैमूरलंग ने निर्मित किया था। किन्तु उसी पृष्ठ पर 'पेटी द ला क्रॉय' (Petis be la Croix) का उद्धरण (चंगेज खाँ का इतिहास, पृ० १७१) है, जिसके अनुसार उसी 'ग्रीन पैलेस' में चंगेज खाँ ने गेयर खाँ की हत्या की थी। यह भवन जो समरकन्द के बाहर स्थित है, तथा स्वयं समरकन्द ईसा पूर्व से ही अवस्थित है जब उस क्षेत्र में हिन्दुओं का राज्य था। उस पाद-टिप्पणी में यह भी लिखा है कि उस्मान के शासन काल में

समरकन्द इस्लाम स्वीकारने को मजबूर हुआ। समरकन्द के अनगिनत भवन एवं मसजिदें प्रत्यक्षतः विजित हिन्दुओं के परिवर्तित मन्दिर तथा महल हैं, जिन्हें कपटपूर्वक तैमूर तथा अन्य लुटेरों से सम्बन्धित बता दिया गया है।

इसी प्रकार ८७ वें पृष्ठ की पादटिप्पणी है : "किसी विख्यात घटना को स्मरण रखने अथवा यादगार के तौर पर किसी तिथि को स्थायी बनाने के लिए फारसी लोग स्मरण पद्यों का पर्याप्त प्रयोग करते हैं, जिनमें कुछेक वर्णों का सांख्यकीय मूल्य होता है जिनका योग वांछित तिथि प्रदान करता है। फारसी में इसे अबजद कहते हैं। "कौन नहीं जानना कि यह बहुत प्राचीन संस्कृत परम्परा है जो इस बात का प्रमाण है कि किसी काल में फारस हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का गढ़ था।"

अकेला बाबर ही ऐसा लुटेरा नहीं था जिसके समय, इस्लाम के विकास काल में, भय तथा हड़बड़ी का साम्राज्य था, दूसरे उससे भी इक्कीस थे। दो वर्ष तक तो उससे उसके पिता का राज्य भी छिन गया था। बाबर की स्वीकारोक्ति है, "मेरी दशा अतीव शोचनीय हो गयी थी और मैं बहुत अधिक रोता था, पर मेरे मन में विजय तथा राज्य-प्रसारण की उत्कट लालसा थी। अतः एकाध हार से ही सर पर हाथ रखकर बैठने वाला नहीं था। मैं ताशकन्द के खान के पास गया कि उससे ही कुछ सहायता मिले।" इस प्रकार प्रयत्न कर-करके बाबर ने अपने पिता का खोया हुआ राज्य जून, १४९९ में पुनः प्राप्त किया।

हिन्दुस्तान पर आक्रमण करते समय म्लेच्छ आक्रमणकारी सदैव हिन्दू तालाबों, झीलों, कुओं तथा जल के अन्य स्रोतों को या तो विषाक्त कर देते थे अथवा मल-मूत्र एवं सड़ी लाशों से भ्रष्ट कर देते थे। फतहपुर सीकरी में राणा साँगा से युद्ध करते समय बाबर ने भी यही हथकण्डे अपनाये। अपने 'संस्मरण' के ९८वें पृष्ठ पर वह इस तकनीक की जानकारी के विषय में लिखता है : "जब खुसरू शाह बल्ख में था तो एक दिन उसने नजर बहादुर को बल्ख के आसपास के सभी जल-स्रोतों को विनष्ट करने भेजा।"

बाबर स्वयं तातारवंशीय क्रूर था। अतः उसने मुगल चरित्र को बहुत बुरा बताया है पर बाद में वही इसे भारत में लाया। ११०वें पृष्ठ पर

वह लिखता है, "मुगल लुटेरे हर प्रकार की बदमाशी तथा विनाश के कर्ता हैं; अब तक उन्होंने पाँच बार मेरे विरुद्ध विद्रोह किया है। यही नहीं कि उन्होंने मेरे विरुद्ध ही विद्रोह किया है, स्वयं अपने खांग्रों (khans) को भी उन्होंने नहीं बख्शा है।" जब मुगल और तरतार, अरब तथा अबीसीनियायी, तुर्क तथा अफगान सभी एक-दूसरे पर क्रूरता तथा विश्वासघात का दोषारोपण करते हैं और वे ही जब भारत में एक हजार वर्ष तक टिड्डी दल की भाँति आते रहे तो कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने भारतीय जीवन को वधस्थल बनाकर रख दिया।

अनेक बार हम शिकायतें सुनते हैं कि लुटेरों की इस लम्बी कतार ने भारतीय जीवन को मूल्यवान् बनाया पर हमने कृतज्ञतापूर्वक इन्हें स्वीकारा नहीं। हम इस शिकायत को उचित समझते हैं और चाहते हैं कि मध्यकालीन इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ इस बात पर बल दे कि किस प्रकार ये लुटेरे धनाढ्य, सम्पन्न, पवित्र, पावन एवं धार्मिक हिन्दुस्थान में जड़कारक शराब, नशा लाने वाले पेय, लम्पटता, भ्रष्टता, दुराचारिता, गुदा-मैथुन, मातृ-पितृ-घात, बलात्कार, लूटपाट, छीनाझपटी एवं विनाश लाये। अल्बरुनी, जो यवनों का पक्षपाती था, लिखता है कि किस प्रकार इनमें से केवल एक लुटेरे मुहम्मद गजनी ने अकेले ही हिन्दुओं के जीवन को खाक बनाकर आँधियों में उड़ा दिया था।

एक साधारण लुटेरे से युद्धकर्ता बना हुआ बाबर अपने संस्मरणों के पृष्ठ ११८ (भाग १) पर अपने प्रथम युद्ध के विषय में बताता है। यह संघर्ष तंबोलों के साथ हुआ था। "हमने अनेक बन्दियों के सिरों को काटने की आज्ञा दी। जब मैं इन छावनियों में रुका हुआ था, खुराबर्दी, ध्वजवाहक, जिसे मैंने कुछ काल पूर्व ही बेग उपाधि से आभूषित किया था, दो-तीन बार तंबोलियों पर झपटा, उन्हें भगा दिया और न जाने उनमें से कितनों के सिर काटकर शिविर में ले आया। उश एवं अंदेजन के युवक भी शत्रु देश को लगातार लूटते रहे, उनके घोड़ों को हाँक लाये, उनके लोगों को मार दिया और उन्हें मुसीबतों में डाल दिया।" और यह बाबर का मात्र प्रथम युद्ध था, जिसे हम उसका केवल अभ्यास मात्र कह सकते हैं। ऐसे बाबर तथा उसकी सन्तान को भारतीय इतिहास के पृष्ठों में "महान् तथा भव्य मुगल" कहकर प्रशंसित किया गया है, जिन्होंने अपने समूचे जीवन

ऐसे पाशविक कृत्य करने में व्यतीत किये, जिनमें सताये गये तथा मौत के घाट उतारे गये लोगों की चिल्लाहटें तथा बलात्कार की हुई नारियों की कराहें एवं लूटे गये बच्चों की आहें ऊपर बैठे अल्लाह तक पहुँचने से पूर्व ही मसोस दी गयीं।

बाबर का विवाह आयशा से मार्च, १५०० ई० में हुआ था पर विकृत कामुक होने के कारण वह लिखता है : "मैं उसके पास १०,१५ या २० दिनों में कभी एक बार जाता था। उसके प्रति मेरा स्नेह इतना न्यून हो गया था कि मेरी माँ, खानूम (Khanum), मुझे बहुत डाँटा करतीं तथा बीस-चालीस दिनों में उसके पास कम-से-कम एक बार भेजा करतीं।" पर बाबर को तो हमजिंस से मुहब्बत थी। अपने एक पुरुष स्नेहपात्र के विषय में बाबर लिखता है : "इसी समय कैम्प बाजार का बाबरी नामक एक लड़का था। हमारे नामों में समरूपता थी।" पृष्ठ (१२५-२६) इसके बाद तो बाबर शेक्सपियर के नायक की भाँति काव्यमय भाषा बोलता है, "मैं उस बालक को बहुत चाहने लगा। सच तो यह है कि मैं उसके पीछे पागल हो गया।" वह कहता है, "इससे पहले तो मेरा किसी से इतना प्यार था ही नहीं और न ही ऐसा अवसर ही आया था कि मैंने कभी प्रीति-भरे शब्द सुने या कहे हों। ऐसी दशा में मैंने फारसी में कुछेक तुकबन्दियाँ कीं, जिसका एक छन्द इस प्रकार है—

"मेरे समान कोई भी प्रेमी न जो इतना दुःखी था, न आसक्त और न ही असम्मानित और मेरा मीत न इतना दयाहीन था और न ही तुझ जैसा हेय।" "कभी-कभी ऐसा हुआ कि बाबरी मेरे समीप आता था और मैं लज्जा एवं नम्रता के कारण उससे आँख नहीं मिला पाता था। ऐसे में मैं कैसे तो उसे बातों से प्रसन्न करता और कैसे प्रेम की भावना व्यक्त करता? नशे में धुत होने के कारण मैं उसे उसके आने का शुक्रिया अदा भी नहीं कर पाता। मैं उसके जाने का बुरा भी न मानता। विनम्रतापूर्वक मैं उसका स्वागत भी न कर पाता। एक दिन यूँ ही मैं कुछ नौकरों के साथ एक पतली-सी गली से जा रहा था कि अकस्मात् बाबरी मेरे बिल्कुल सामने आ गया। इस मुलाकात का मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मुझ पर बस घड़ों पानी पड़ गया। मैं न तो उससे आँख मिला सका और न ही एक भी शब्द बोल सका। बडी शरमिन्दगी और हड़बड़ी के साथ मुहम्मद

सालिह का एक पद्य याद करते हुए आगे बढ़ गया—

मैं अपने महबूब को देखकर शरमा जाता हूँ।
मेरे साथी मुझे और मैं दूसरी जानिब देखता हूँ।

पद्य मेरी परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल था। भावातिरेक एवं यौवनाधिक्य में मैं नंगे सिर तथा नंगे पैर ही गलियों, सड़कों, बागों, बगीचों में किसी भी मित्र तथा नये व्यक्तियों की ओर बिना ध्यान दिये घूमा करता। मैं स्वयं तथा अन्य को भी उचित सम्मान न दे पाता—

भावातिरेक से मैं बुरी तरह पगला जाता······
न सोच पाता कि आशिक का यही हश्र होता है······
मुझ में न तो जाने की शक्ति थी, न रुकने की कुव्वत······
ऐसा विक्षिप्त बना दिया है तुमने, ऐ मेरे (पुरुष)-महबूब !"

इस प्रकार अपने पुरुष-मित्र के पागल बना देने वाले सौन्दर्य में खोकर वह नीच बाबर और भी बहुत-कुछ बकता रहता है। १२६वें पृष्ठ पर सम्पादक की पाद टिप्पणी है : "समाज में स्त्री जाति की अधःपतितावस्था के कारण यवन देशों में इस गन्दी प्रथा अप्राकृतिक मैथुन का प्रचलन था।"

इस प्रकार अप्राकृतिक मैथुन में एक ओर तो उसने कुत्तों की नकल की, दूसरी ओर अपने साथियों की हत्या करने में उसने लकड़बग्घों, व्याघ्रों तथा चीतों को भी मात कर दिया था। एक बार जब उसके अनुचरों ने शांतिप्रिय समरकन्द पर धावा बोला "उन्होंने उजबेकों का हर गली-कूचे में पीछा किया और पागल कुत्तों की भाँति लाठियों और पत्थरों से उनमें से ४००-५०० को मार दिया।"

जिन क्षेत्रों में बाबर घूमा वहाँ अब भी अनेक संस्कृत नाम प्रचलित हैं। "ताशकंद प्रदेश सर(Sirr) नदी के तट पर है, जिसका प्रारंभिक संस्कृत नाम श्री था। कोहिक (कौशिक) के दोनों ओर, दाबसी के समीप, मियाँ-काल अर्थात् महाकाल है। २०८वें पृष्ठ पर बाबर लिखता है कि उसने दो-एक आगन्तुकों से दो-एक घड़ी बात की थी तथा पादटिप्पणी में एक घड़ी २४ मिनट के बराबर बतायी गयी है। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उन क्षेत्रों में बाबर के समय तक में समय-मापक 'घड़ी' शब्द प्रचलित था। हिन्दुकुश पर्वतमालाओं में वह दर्रा, जिसमें से होकर बाबर निकला, पंजशिर (पाँच शिखरों के लिए संस्कृत शब्द) कहलाता है। काबुल नगर

भी हिन्दू शासकों द्वारा निर्मित प्राचीन दीवार से परिवेष्टित है। काबुल के चारों ओर एक संकुचित मार्ग का नाम देवरन है जो निश्चित ही संस्कृत शब्द देवारण्य (ईश्वर का वन) का अपभ्रंश रूप है।" पेशावर के समीप हशनगर भी है, जो प्रारम्भ में हस्तिनगर अर्थात् हाथियों का नगर था।

अपने संस्मरणों के २१९वें पृष्ठ पर बाबर 'दासों' के विषय में लिखता है कि इनके कारण ही यवन लुटेरे भारत पर हमला किया करते थे। स्पष्ट है कि सातवीं शती, जबसे भारत पर यवनों के आक्रमण हुए, निस्सहाय हिन्दू स्त्री, पुरुष, बालक वन्य पशुओं की भाँति घेरे जाकर कुकृत्यों, अप्राकृतिक मैथुन आदि के लिए बुखारा, समरकन्द, काबुल और गजनी जैसे यवन बाजारों में बेचे ही नहीं जाते थे अपितु उन्हें बलपूर्वक इस्लाम धर्म में परिवर्तन करके अपनी मातृभूमि पर ही आक्रमण कर उसे परतन्त्र बनाने के लिए वापस लाया जाता था। इस प्रकार ये दुष्ट लुटेरे गुण्डों को साथ लेकर जितनी बार निस्सहाय हिन्दुओं पर आक्रमण कर उन्हें दास बनाकर बेच देते, उसी अनुपात से धनवान हो जाते थे। यवन दास-व्यापारी अपने 'माल' का मूल्य कई प्रकार से बढ़ा देते थे—उन्हें शाही खानदान का बताकर, उनका शारीरिक सौन्दर्य दिखाकर या उनका शारीरिक बल बताकर। अपने साथी पुरुषों को भयभीत कर दास बनाकर बेचते समय इस घृणित व्यापार में अच्छी बिक्री के वे सभी हथकण्डे अपनाते थे यथा— 'पट्टे पर खरीदिए या उधार लीजिए'; 'आज खरीदिए और आसान किश्तों में अदायगी कीजिए; 'सन्तुष्ट न होने पर वापस'; 'अच्छी वस्तु के बदले में फिर बदल ले जाइए' इत्यादि।

काबुल से भारत को चार पर्वतीय दर्रे जोड़ते हैं। इनके किनारे के सभी नगर संस्कृत नाम धारण किए हुए हैं। एक दिनकोट है। दूसरा नगर कोट था जो बाद में इस्लाम के जादू से जलालाबाद हो गया।

अपने संस्मरणों के २३९ वें पृष्ठ (भाग १) पर बाबर ने लिखा है कि किस प्रकार उसने इस्लाम के नाम पर बुद्धुओं को लूटने वालों का भंडाफोड़ किया था। उसके अनुसार, "गजनी के एक गाँव में एक मकबरा था। वह उधर ही घूम जाता जिधर अल्लाह के प्यारे (प्रोफेट) ने आशीर्वचन कहे थे। मैंने उधर जाकर इसे देखा और सचमुच ही उधर एक गति की। अन्त में मैंने इस ढोंग को जाना कि वहाँ के नौकरों ने मकबरे के ऊपर एक प्रकार

का मचान बना रखा था जिस पर खड़े होते ही कुछ हलचल हो जाती। दर्शक को लगता कि मकबरा ही घूम गया है।"

हिन्दुस्तान में पूरी तरह पैर जमाने से पहले बाबर ने इसपर पाँच हमले किये थे। पहला १५१९ ई० के आरम्भ में, दूसरा उसी वर्ष सितम्बर में, तीसरा १५२० में, चौथा १५२४ में और पाँचवाँ नवम्बर, १५२५ में। काबुल से चलकर बाबर छः पड़ाव डालने के पश्चात् काबुल नदी के दक्षिण में अदिनापुर के दुर्ग में पहुँचा। गढ़ क्षत्रिय नामक प्रसिद्ध, विशाल एवं वक्र हिन्दू दुर्ग के विषय में सुनकर लुटेरे बाबर ने मलिक अबू सईद कामरी से हिन्दू दुर्ग तक ले चलने के लिए कहा, पर उस वीर देशभक्त हिन्दू ने इंकार कर दिया। विक्रम एवं गढ़ क्षत्रिय नामक प्राचीन नगर आधुनिक पेशावर के भाग हैं।

दो पड़ावों की दूरी पर ही कोहट था। बाबर का कथन है, "हम कोहट पर टूट पड़े, दोपहर के समय उसे खूब लूटा, अनगिनत बैलों तथा भैंसों को साथ लिया और अनेक अफगानों को बन्दी बना लिया। उनके घरों में बहुत अन्न-भण्डार प्राप्त हुआ। हमारे लुटेरे दल सिन्ध नदी तक पहुँच गये। पर हमारी सेना ने वह सब सम्पत्ति नहीं पायी, जिसकी बकी चेगनियानी के कथनानुसार हम आशा किये बैठे थे।" इस प्रकार बाबर अलीबाबा के समान जिन लाखों चोरों के साथ अफगानों के सोने-चाँदी, हीरों को लूटने आया, उसमें उसे निराशा ही हुई।

उसके लुटेरों का दल इतना दुःखी हुआ कि उसने घर लौटने का बिगुल बजा दिया। बाबर को मजबूर होकर वापस जाना पड़ा, यद्यपि यह वापसी भी रास्ते भर डकैती ही थी। "यह निश्चित हुआ कि हम अफगानों तथा बंगश के प्रदेशों को लूटते-खसोटते नगर (नगज) के मार्ग से वापस जायें।"

कोहट तथा हंगू की घाटी के बीच अफगानों ने एकत्र होकर बाबर और उसके साथियों को अफगान स्त्रियों, बच्चों तथा सम्पत्ति को ले जाने से रोका। पर बाबर के गुण्डे डकैती में माहिर थे, अतः वे इन शान्तिप्रिय किसानों से इक्कीस ही रहे। "आदेश दिये गये कि जीवित पकड़े हुओं के सिर काट दिये जाएँ; हमारे आगामी पड़ाव पर उनके सिरों की मीनार खड़ी हो गयी थी।" (पृ० २५६) पाठकों को याद रखना चाहिए कि भारत के यवन शासन में सदैव यही ढंग रहा। शान्तिप्रिय मासूम लोगों

पर चढ़ाई की गयी एवं बन्दी बनाये हुओं को या तो काट डाला गया अथवा दासों के रूप में बेच दिया गया। कत्ल किए हुओं के शरीरों एवं सिरों को मीनारों के रूप में, औरों की तो कौन कहे, अकबर के शासनकाल तक में एकत्र करके रखा जाता था।

विजित अफगान अपने यमराज बाबर के समक्ष अपने दाँतों के बीच तिनका दबाकर जाते थे मानो कह रहे हों, "मैं आपका बैल हूँ।"

हंगू पर भी अफगानों ने बाबर का मुकाबल किया पर वहाँ भी उन्हें काट-काटकर ढेर कर दिया गया। थाल (संस्कृत शब्द 'स्थल') पर भी बाबर का हुजूम "समीपस्थ अफगानों को लूटने चला। बन्नू के मार्ग में बाबर को अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा तथा लूटे हुए जानवर मरने लगे।"

भाग १ के पृष्ठ २५८ पर यवन इतिवृत्तों की अशुद्धियों, तोड़-मरोड़ों एवं अनियमितताओं का उल्लेख है, "बन्नू की समस्त सैनिक कार्यवाही में बाबर दक्षिण के लिए पश्चिम का प्रयोग करता है और इसी हिसाब से अन्य दिशाओं का।"

कीवी जाति पर की गई चढ़ाई में बाबर के गुण्डों ने बहुत-सा कपड़ा लूटा। मारे हुए अफगानों की खोपड़ियों का ढेर लगा दिया गया। उनका सरदार शादी खाँ बाबर के समक्ष मुँह में तिनका रखकर प्रस्तुत हुआ।

कोहट को हराने के पश्चात् बाबर के हजूम ने बंगश तथा बन्नू को हराकर काबुल लौटने की सोची। पर यह सूचना पाकर कि दश्त की लूट में उन्हें बहुमूल्य पदार्थ मिल सकते हैं, बाबर ने उधर जाने का निश्चय किया। मार्ग में इसखेल (संस्कृत 'इशिकुल') पर आक्रमण किया गया तथा "बहुत बड़े परिमाण में भेड़, पशु तथा कपड़े लाये गये।"

उसी रात वीर इसखेलों ने आक्रमण किया। बाबर के साथी अधिकांशतः अपनी रातें प्रत्यक्षतः गाँवों में असहाय, लूटी हुई स्त्रियों के साथ बलात्कार में बिता रहे थे। अपने को खतरे में डालकर बाबर ने किसी प्रकार उन्हें हरा दिया। क्रूर बाबर के आदेश पर दूसरे दिन "(मेरी सेना के) ऐसे व्यक्तियों की, जो अपने स्थान पर नहीं गये थे, नाक काट डाली गयीं।"

मार्ग में दश्त तथा अन्य स्थानों की लूट, बलात्कार, कत्लेआम में

बाबर को बहुत-कुछ प्राप्त हुआ। २६५वें पृष्ठ पर इस बात का उल्लेख है कि दूसरों को पाठ पढ़ाने के लिए किस प्रकार एक बन्दी के टुकड़े कर दिये गए थे।

यवन इतिवृत्तों में भारत पर राज्य करने वाले हर यवन सुलतान अथवा सूबेदार (क्षत्रप) को बड़ा प्रतिभाशाली अन्वेषक कहा गया है। उनके आविष्कार केवल इसी बात तक सीमित थे कि निस्सहाय बन्दियों को किन-किन ढंगों से यन्त्रणा दे-देकर मार डाला जाय। बाबर के संस्मरणों के भाग २ के ५२वें पृष्ठ पर ऐसी ही एक विधि, जिसका नाम 'अतक् तथा तिकेह' है, का उल्लेख है: "इस प्रकार के दण्ड में दण्डित प्राणी का सिर लकड़ी के दो खण्डों के बीच स्थिर कर दिया जाता है तथा इसके एक छोर पर बहुत बड़ा भार अथवा बहुत भारी काष्ठफलक रखकर ऊपर उठा दिया जाता है। इस भार को हटाने पर, भारी छोर एकदम नीचे गिरकर दण्डित प्राणी के सिर पर टकराता है।"

बाबर को यह अन्तर्राष्ट्रिय गिरोहबाजी प्रत्यक्षतः लाभकारी सिद्ध हुई। भाग २ के पृष्ठ ५३ पर उसकी एक लूट 'अरेबियन नाइट्स' के चोरों की प्राप्ति-सी लगती है, "लूट में अश्व, ऊँट-ऊँटनियाँ, रेशमी कपड़ों से लदे खच्चर, चमड़े के थैलों, तम्बुओं तथा मखमली चंदोवों भरी ऊँटनियाँ थीं। हर घर में हजारों मन सामग्री ठीक तरह रखकर पिटारों में बन्द कर दी गयी। हर भण्डार में ढेर के ढेर ट्रंक तथा गट्ठर तथा अन्य सामान, लबदों के थैले तथा चाँदी के सिक्कों से भरे बर्तन थे। हरेक के घर में लूट का अत्यधिक सामान था। इसी प्रकार अनगिनत भेड़ें थीं।" इस सबसे स्पष्ट है कि अरेबियन नाइट्स के किसी मुहम्मद बिन-कासिम से लेकर अहमद-शाह अब्दाली तक के लुटेरों की चोरियों, गिरोहों, तथा कामुकताओं के ऐतिहासिक वर्णन हैं। बाबर लिखता है, "धन को गिनने में स्वयं को असमर्थ पा हम तराजू से तौलकर इसे बाँटते थे। बेग लोग, अधिकारी तथा नौकर-चाकर चाँदी के थैलों तथा सम्पूर्ण खरभारों (सं० 'खर-भार' अर्थात् गदर्भ का भार, लगभग ७०० पौंड) को लेकर चलते थे और हम काबुल पर्याप्त धन, लूट का सामान एवं ख्याति लेकर लौटते थे।" आज यदि अफगान सरदार अपना इतिहास जान लें तो उन्हें अपने को मुसलमान कहने में भी बड़ी शरम आएगी।

अब बाबर को किसी सरदार जागीरदार की कन्या को बेगम बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। खुरासान के सुलतान अहमद मिर्जा की पुत्री मासूमा सुलतान बेगम से निकाह के लिए उसने कहा। इस भय से कि मना करने पर उसका समूचा घर ही न लूट लिया जाय, सुलतान को उसकी बात मान लेने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था।

सितम्बर में बाबर ने अपने राक्षसी गिरोह से एक प्रयास फिर करने के लिए कहा। पर अफगान लोगों द्वारा कड़े प्रतिरोध के कारण वह पुनः लौट आया। अनेक अफगान मार डाले गये और बन्दियों को सब कुछ लूट-कर सूली पर चढ़ा दिया गया। इतना ही नहीं, उनके खेतों में आग लगा दी गयी। काबुल लौटकर बाबर ने आदेश दिया कि अब से आगे उसे बाद-शाह कहा जाय। इसी समय हुमायूँ का जन्म हुआ और बाबर को सिर झुकाने वाले स्थानीय सरदार भेंट के रूप में ढेरों चाँदी लाये।

अन्तर्राष्ट्रिय लुटेरे गिरोह की अपूर्व सफलता ने बाबर को इतना घमंडी, क्रूर तथा कामुक बना दिया कि कूच बेग, फकीर अली, करीमदाद तथा बाबा चिहरेह जैसे उसके गिरोह के अनेक व्यक्तियों ने परेशान होकर विद्रोह कर दिया। पारसियों को भी बाबर के सहज विश्वासघात का स्वाद उस समय मिल गया जब उजबेकों के साथ युद्ध में उत्कोच स्वीकार कर फ़ारस के निवासियों को धोखा दिया जिससे उनकी हार हो गयी।

भारत पर अपने तीसरे आक्रमण में बाबर बेजोर तक बढ़ गया "जहाँ मैंने आज्ञा दी कि भूमि पर खोपड़ियों का स्तम्भ बना दिया जाय।···मैं बेजोर के दुर्ग तक गया जहाँ हमने मदिरापान किया।" पृष्ठ ८३ (भाग २) की पादटिप्पणी है; "यहाँ से आगे लगता है मृत्यु-पर्यन्त बाबर बहुत अधिक शराब पीता था।"···बाबर भेषज-प्रयोग भी करता था।

कुख्यात गिरोहबाजों की भाँति बाबर अब पूरे समुदाय को ही धन के लिए बन्दी बनाने लगा। "खराज के निवासियों से मैंने अपनी सेना के लिए ४०० गधों पर चल सकने वाली सामग्री माँगी। इससे उन्हें बहुत परेशानी हुई। मैंने अपनी सेना पंजकेरा लूटने भेजी। इसके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही लोग भाग गये थे।" यह तो रोज की ही बात थी जब सारी दुनिया में यवन सेनाओं के क्रोध के कारण लोग भयभीत हो भाग जाते थे और इस्लाम के प्रचार के नाम पर त्रासद यवन गुण्डों के गिरोह हज़ारों वर्षों

तक इधर-उधर घूमते रहे।

मुर्गीखाने की सच्ची भाषा में, जहाँ एक साथ अनेक बच्चे सेये जाते हैं, बाबर ८३वें पृष्ठ (भाग २) पर लिखता है कि उसके अनगिनत स्त्रियों के हरम में "इस वर्ष मेरे कई बच्चे हुए।"

सिन्धुनदी पार करने पर बाबर का सामना जनजुआओं से हुआ। ये राठौर राजपूतों के वंशज थे, जिनके सरदार को राय तथा अनुजों एवं पुत्रों को मलिक कहा जाता था।

अपने समूचे इतिवृत्त में बाबर पीने-पिलाने की पार्टियों की लज्जास्पद बातों को लिखता है : "अपने पुत्र के जन्मदिवस पर एक नाव पर मैंने मद्यपान का आयोजन किया। मध्यह्लान्तर के प्रार्थना-काल तक हम स्प्रिट पीते रहे। स्प्रिट से घृणा करके हमने माजून पीना शुरू कर दिया। बाद में पार्टी असह्य तथा अप्रिय होने पर शीघ्र ही समाप्त हो गयी।···जहाँ तक दोपहर की प्रार्थना का प्रश्न है···एक नाव में शराब का दौर फिर चला। हम काफी रात तक शराब पीते रहे और जब पूरी तरह धुत् हो गये, घोड़ों पर बैठकर, हाथों में मशालें लेकर नदी की ओर से सरपट अपने शिविर की ओर आये। उस समय घोड़े के कभी हम एक ओर फिसल जाते, कभी दूसरी ओर। मैं बहुत बुरी तरह नशे में चूर था और दूसरे दिन प्रातः जब लोगों ने रात की घटना सुनायी तो मुझे तनिक भी याद नहीं आया। घर आकर मुझे भरपूर उल्टियाँ हुईं।" इन बातों से सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इतने गुण्डों के गिरोह के मालिक इस बर्बर व्यक्ति तथा उसके झुण्ड द्वारा बलात्कार एवं लूटमार जैसी कितनी भयानक क्रूरताएँ जनता को सहनी पड़ती होंगी।

भारत के सीमा-निवासी बहादुर गक्खरों तथा अन्य हिन्दू जातियों द्वारा बाबर को सिन्धु के पार खदेड़ दिया गया। जलालाबाद मार्ग पर काबुल से लगभग १० मील पूर्व स्थित बुत-खाक में होकर बाबर का प्रत्यावर्तन हुआ। इसका नाम लुटेरे मुहम्मद गजनी के उस मूर्तिभंजक करतब से पड़ा है जब वह भारत के हिन्दू मन्दिरों को लूटकर उनकी पवित्र मूर्तियों को विचूर्ण कर गया था।

अपनी तीसरी यात्रा में बाबर ने सियालकोट जीत लिया। सईदपुर के निवासियों ने प्रतिरोध किया पर उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया,

उनके बच्चों एवं स्त्रियों को बलाकार तथा इस्लाम में परिवर्तित करने के लिए साथ ले जाया गया और उनकी समूची सम्पत्ति को लूट लिया गया। इसी बीच कन्धार के शासक शाहबेग ने उसके उपनिवेश पर आक्रमण कर दिया, अतः बाबर को बहुत जल्दी लौट जाना पड़ा।

१५२४ में बाबर का चौथा आक्रमण हुआ। इब्राहीम लोदी के अफगान सेनापतियों की हार हुई तथा लाहौर नगर को लूटकर आग लगा दी गयी। देबलपुर में कत्लेआम का आदेश दे दिया गया। बाबर सरहिन्द तक बढ़ आया और फिर वापस काबुल लौट गया।

७ नवम्बर, १५२५ को उसने हिन्दुस्तान पर पुनः आक्रमण किया। पृष्ठ १५६ (भाग २) की पाद-टिप्पणी है : "यद्यपि एक बार उसने सौगन्ध खा ली थी पर बाबर ने चालीस वर्ष होने पर भी शराब पीना नहीं छोड़ा।" इससे उन पाठकों की आँखें खुल जानी चाहिए कि अबुल फजल तथा अन्य चापलूसों के पाखण्डपूर्ण झूठे दावों पर विश्वास न कर जिन्होंने यत्रतत्र अकबर तथा अन्य पाजी मुगलों के विषय में लिखा है कि उन्होंने मद्यपान या गोमाँस त्याग दिया था अथवा जिजिया कर आदि की मुक्ति के आदेश दे दिये थे।

अपने अन्तिम आक्रमण में जिसमें बाबर दिल्ली का शासक बना, उसके लोग उन्मत्त हो गये। दिसम्बर २२, १५२५ को सियालकोट पर पुनः अधिकार कर लिया गया। इस क्षति की पूर्ति भारत अब तक नहीं कर पाया। इब्राहीम लोदी के पंजाब के गर्वनर दौलतखाँ लोदी को बन्दी बना लिया गया। जिन तलवारों को वह अपनी कमर में खोंसे रखता था उन्हें उससे गले में लटकाने के लिए, तथा बाबर के सामने साष्टाँग लेटने के लिए कहा गया। आनाकानी करने पर बाबर के दर-बारियों ने उसकी टाँग में लात जमायी जिससे वह एकदम नीचे गिर पड़ा। इस अनाचार का भी बाबर के सभी वंशजों ने भली-भाँति पालन किया। असीरगढ़ के राजा द्वारा अधीनता स्वीकारते हुए अकबर ने भी यही कृत्य दोहराया।

जनवरी ८, १५२६ को बाबर ने मलोट दुर्ग में प्रवेश किया। जंजुआ राजपूतों की यह परम्परागत गद्दी थी। दुर्ग में उसे अनेक मूल्यवान् पुस्तकें मिलीं जिन्हें वह "गाजी खाँ पुस्तकालय" कहता है। स्पष्टतः, ये सभी

प्राचीन हिन्दू पुस्तकालय, जो ऐतिहासिक लेखों, वैज्ञानिक प्रबन्धों तथा पवित्र धार्मिक ग्रन्थों से भरे हुए थे यवन-काल में विनष्ट कर दिये गये क्योंकि आक्रमणकर्ता बर्बर ही नहीं थे, वे हर हिन्दू वस्तु से पूर्णतः घृणा करते थे।

इस युद्ध के विषय में बाबर लिखता है : "मलोट दुर्ग में प्राप्त स्वर्ण एवं अन्य वस्तुओं के कुछ अंश को मैंने स्वार्थसिद्धि के लिए बल्ख, कुछ को अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों को भेंट स्वरूप काबुल भेज दिया तथा कुछ अंश अपने बच्चों एवं आश्रितों को बाँट दिया।" हिन्दू सम्पत्ति को यवन देशों में अपव्यय करने के लिए धीरे-धीरे भेजने से हिन्दुस्तान अत्यन्त निर्धन हो चला और यह निर्धनता आज भी अपने देश को कष्ट पहुँचा रही है।

बिखरे हुए हिन्दू स्थानों, यथा शिमला की पहाड़ियों के हरूर एवं बिलासपुर को लूटने के लिए बाबर ने अपनी सेना के कुछ अंश भेजे।

अप्रैल १२, १५२६ को बाबर पानीपत पहुँचा। वह निर्णायक युद्ध, जिसमें दिल्ली का यवन शासक इब्राहीम लोदी मारा गया, २१ अप्रैल, १५२६ को हुआ। इब्राहीम के कटे हुए सिर को बड़ी धूमधाम के साथ बाबर के शिविर में भेजा गया। यह रक्तिम रीति बाबर के आगामी मुगल वंशजों को भी बहुत प्रिय थी। शत्रुओं के छिन्न सिर उन्हें ऐसे ही अच्छे लगते थे जैसे गुलदस्ते। मध्ययुगीन युद्धों में बाबर की सफलता का श्रेय प्रथम बार बन्दूकों के प्रयोग को दिया जाता है।

बाबर द्वारा इब्राहीम को पानीपत में हराकर उसके सिर से दिल्ली का ताज छीन लेना भारत में यवन शासन के अन्त का प्रारम्भ था क्योंकि दिल्ली से विदेशी शासनकर्ताओं की श्रृंखला में मुगल वंश अन्तिम बर्बरों का था, पर मुगल निष्ठुरों ने सभी विदेशी राजवंशों के योग से भी कहीं अधिक राज्य किया था। भारत में बाबर का शासनारम्भ हिन्दुस्तान के यवन शासन को दो लगभग बराबर भागों में बाँटता है। ३२० वर्षीय पूर्वार्द्ध में (१२०६-१५२६ ई०) अनेक छोटे-छोटे यवन राजवंश थे यथा; दास, खिलजी, तुगलक, सैयद एवं लोदी। बाबर से प्रारम्भ होने वाले मुगलों ने ३३२ वर्ष तक राज्य किया, यानी १८५८

तक, जब अंतिम मुगल, बाहदुरशाह जफर को अंग्रेजों ने समाप्त कर दिया। यह नियति की विडम्बना है कि मुगलों का पहला छोर, बाबर, भारत में पश्चिम से घुसा और दूसरे छोर, बहादुरशाह को पूर्व का पर्दा दिखा दिया गया।

पानीपत की विजय के पश्चात् ४ मई, १५२६ को बाबर आगरे की ओर पहुँचा। उसने सर्वप्रथम सुलेमान फारमुली द्वारा हथियाये गये एक प्राचीन हिन्दू महल पर अधिकार किया। यह दुर्ग से बहुत दूर था अतः बाबर एक अन्य हिन्दू महल में गया जिसे जलाल खाँ जिगहट ने हड़प लिया था। हुमायूँ जो सेना की कुछ टुकड़ियाँ लेकर पहले ही आ गया था, आगरे के दुर्ग का अधिकारी था। परिवार का मुखिया, राजा विक्रम, पानीपत में इब्राहीम के पक्ष में लड़ता हुआ कुछ सप्ताह पूर्व ही कत्ल कर दिया गया था। विक्रम तथा अन्य अनेक हिन्दू सरदारों के परिवार, जो आगरे के दुर्ग में थे, यवन आक्रमणकर्ताओं द्वारा बन्दी बना लिये गये थे तथा उनकी समूची सम्पत्ति, जिसमें हीरे-जवाहरात एवं अन्य मूल्यवान धातुएँ थीं, लूट ली गयी थी।

पृष्ठ १९२ (भाग २) पर बाबर लिखता है कि उसने आगरे में लोदी के महल को १० मई, जुमारात, के दिन अपने कब्जे में कर लिया था। पृष्ठ २५१ पर वह लिखता है, "ईद के कुछ दिन पश्चात् एक आलीशान दावत (जुलाई ११, १५२६) ऐसे विशाल कक्ष में हुई जो पाषाण खंभों की स्तम्भ पंक्ति से सुसज्जित है और जो सुलतान इब्राहीम के पाषाण-प्रासाद के मध्य के गुम्बद के नीचे है।" प्रत्यक्षतः यह मुमताज की मृत्यु के १०४ वर्ष पूर्व ताज-महल का सन्दर्भ है, जिसे उसका मकबरा समझा जाता है। "महान् मुगल, अकबर" (पृष्ठ ९) पुस्तक में विन्सेंट स्मिथ का कथन है कि बाबर आगरे में अपने उद्यान-प्रासाद में मृत्यु को प्राप्त हुआ था। जिसके चारों किनारों पर आभूषित पत्थरों की मीनारें हैं। बीच में गुम्बद तथा शानदार बगीचा है। आगरे में ऐसा अकेला भवन ताजमहल है।

अज्ञानवश बाबर उन विवादास्पद बातों को प्रमाणित कर देता है जो भारतीय जीवन में यवन-आक्रमणों के कारण उत्पन्न हो गयी थीं। पृष्ठ २०८ (भाग २) पर उसका कथन है, "हिन्दुस्तान में जन-धन नगरों का,

पूर्ण विनाश एक साथ होता है। विशाल नगर, जो अनेक वर्षों से स्थित हैं (यदि निवासी भय के कारण भाग नहीं जाते) एक-डेढ़ दिन में इस प्रकार पूर्णतया निर्जन हो जाते हैं कि आप कठिनता से ही विश्वास करेंगे कि उन में भी कभी कोई आबादी थी।"

पृष्ठ २४५-४६ (भाग २) पर बाबर लिखता है कि किस प्रकार हिन्दुस्तान की लूट के सामान को उसने वितरित किया। "मैं खजाने को देखने एवं बाँटने लगा। मैंने इस खजाने से सत्तर लाख देने के अतिरिक्त एक महल दिया जिसकी अपार सम्पत्ति का कोई लेखा-जोखा तथा विवरण नहीं है। कुछ अमीरों को मैंने दस लाख, कुछ को आठ लाख, सात लाख तथा छह लाख दिये। अफगानों, हजाराओं, अरबों, बलूचों तथा अन्यान्य को, जो मेरी सेना में थे, उनकी स्थिति के अनुसार मैंने उपहार दिये। जो व्यक्ति सेना में नहीं थे उन्हें भी इन कोषों से मैंने अनेक उपहार दिये। उदाहरणार्थ कामरान को १७ लाख, मोहम्मद जमान मिर्जा को १५लाख अस्करी मिर्जा तथा हिन्दाल यानी प्रत्येक-छोटे-बड़े रिश्तेदार तथा मित्र को सोने, चाँदी, वस्त्र, आभूषण तथा बन्दी दासों (हिन्दुओं) के रूप में कुछ न कुछ उपहार मिला ही। अपने पुराने प्रदेश के बेगों तथा उनके सिपाहियों को भी बहुत से उपहार भेजे गये। मैंने समरकन्द, खुरासान, काशगर तथा इराक के अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों को उपहार भेजे। खुरासान, समरकन्द, मक्का तथा मदीना के मुल्लाओं को भी भेंट भेजी गयी। अब उनके निवासियों को, प्रत्येक को, चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, चाहे स्वतन्त्र हो चाहे दास, चाहे बड़ा हो चाहे छोटा स्पर्धा के रूप में भेंट के तौर पर मैंने एक-एक शहरोखी (चाँदी का सिक्का) भेजा।" उन आदमियों की पवित्रता की कल्पना की जा सकती है, जिन्हें बाबर जैसे डाकू ने लूट का माल भेजा। यही पंक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि बादशाहों के रूप में विख्यात मुगल लुटेरों ने भारत में सुख-समृद्धि फैलाने की अपेक्षा उसे पूर्णतया निर्धन बना दिया।

बाबर, हुमायूँ, अकबर तथा उनके वंशजों के क्रूर कारनामों से भय के कारण, जहाँ ये गये वहाँ से लोग भाग गये। बाबर का कथन इसको प्रमाणित करता है (पृष्ठ २४६): "जब मैं प्रथम बार आगरा गया, मेरे लोगों तथा वहाँ के निवासियों में पारस्परिक द्वेष तथा घृणा थी। उस

देश के किसान तथा सैनिक मेरे आदमियों से बचते थे तथा दूर भाग जाते थे। तत्पश्चात् दिल्ली तथा आगरा के अतिरिक्त सर्वत्र वहाँ के निवासी विभिन्न चौकियों पर किलेबन्दी कर लेते थे तथा नगर शासक सुरक्षात्मक किलाबन्दी करके न तो आज्ञा का पालन करते थे और न झुकते ही थे।" (पृ० २४७) : "जब मैं आगरे आया, वहाँ के सभी निवासी डर के मारे भाग गये। फलतः उन आदमियों तथा अपने घोड़ों के लिए न तो अन्न मिला और न ही चारा। हमसे शत्रुता तथा घृणा के कारण ग्रामीणों ने विद्रोह, चोरी तथा डकैतियाँ अपना ली थीं। सड़कों पर चलना असम्भव था। अनेक लोग तेज धूप के कारण गिर पड़ते थे और वहीं दम तोड़ देते थे। इन कारणों से मेरे अनेक बेग तथा श्रेष्ठ व्यक्ति दम तोड़ने लगे, हिन्दुस्तान में रहने को मना करने लगे और यहाँ तक कि वापसी की तैयारी भी करने लगे। हिन्दुस्तान से बहुत अधिक परेशान होकर ख्वाजा कलाँ ने लिखा :

अगर मैं ठीक-ठाक ढंग से सिन्ध पार कर सका,
यदि पुनः मैं हिन्द की इच्छा करूँ तो लानत है।"

आगरा के लोगों ने तो पूरा नगर छोड़ दिया था अतः बाबर ने अपने गिरोह के आदमियों को आसपास के क्षेत्र में भोजन लूटने के लिए भेजा। बाबर इस शत्रुता के वातावरण में अत्यधिक असुरक्षित था। उसे भय था, कि कहीं पकड़ा न जाय अथवा भूखों न मर जाय। हिन्दू स्वतंत्रता का संरक्षक तथा महायोद्धा राणा साँगा, जिसके शरीर पर युद्धों के ८४ घाव थे, अपनी विशाल वाहिनी लेकर बाबर नाम के इस विदेशी लुटेरे को देश से खदेड़ने के लिए आगे बढ़ रहा था।

निजाम खाँ, एक विदेशी मुसलमान जिसने बाबर को देखा तक नहीं था और जो बाबर को अपना एक मित्र समझता था, ने आगे बढ़ते हुए राणा साँगा से बाबर को सुरक्षित रखने के लिए बयाना उसे सौंप दिया।

एक अन्य विदेशी मुसलमान, तातार खाँ, ग्वालियर दुर्ग का अधिपति था। उसने बाबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। बाबर के मुख्य साथी रहीमदाद ने तातार खाँ की आज्ञा लेकर अपने कुछ साथी सहित हाथीपोल द्वार के भीतर घुसा। रात को अचानक अपनी शेष सेना के लिए द्वार खोल कर उसने शस्त्रागार पर अधिकार कर लिया। दूसरे विदेशी मुहम्मद

जैतून ने धौलपुर बाबर को समर्पित कर दिया। जैतून तथा निजाम खाँ को भारत से कोई प्रेम नहीं था। उनके कामों से स्पष्ट है कि मुसलमान होने के नाते वे देश के महान् भक्त राणा साँगा, जो आक्रमणकर्ता को पीछे धकेलने के लिए समस्त शक्ति एकत्र कर रहे थे, की अपेक्षा बाबर जैसे बर्बर तथा सहधर्मी आक्रमणकर्ता को पसन्द करते थे।

राणा साँगा की प्रगति से चिन्तित होकर फरवरी ११, १५२७ ई० को बाबर आगरा से बाहर निकलकर ऐसे उचित स्थान की खोज करने लगा जहाँ वह उससे युद्ध कर सके। उसने उस महान् झील का समीप्य पसन्द किया, जिसे हिन्दुओं ने फतहपुर सीकरी नगरी की जल पूर्ति के लिए निर्मित किया था। अपने सम्पूर्ण वैभवशाली महलों वाली यह नगरी जो हमें आज दिखाई पड़ती है और जहाँ पर्याप्त जल उपलब्ध है, अकबर से शताब्दियों पूर्व स्थित थी। जो दावे अकबर को उसका निर्माणकर्ता बताते हैं, वे सब झूठे हैं। यह तथ्य कि फतहपुर सीकरी नगरी पहले से ही स्थित थी नयी व्याख्या करने के लिए भूले हुए भारतीय इतिहासकार बड़ी मासूमियत से कहते हैं कि राणा साँगा और बाबर का अन्तिम युद्ध कनवाहा से कुछ मील दूर हुआ था किन्तु यह ऐतिहासिक भूल है। अपने संस्मरणों के पृ० २२७ (भाग २) पर बाबर का कथन है कि अब्दुल अजीज और मुल्ला अपाक के मातहत उसकी आगे की सैनिक टुकड़ी को राणा साँगा के अग्रिम दल ने समाप्त कर दिया था। वहाँ राणा साँगा का एक छोटा-सा दुर्ग तथा महल था। इसके पश्चात् राणा साँगा फतहपुर पहुँचा" जैसाकि इतिहासकार बदायूँनी अपने मुन्तखबउत-तवारीख (पृष्ठ ४४५, भाग १) में कहता है।

कनवाहा संघर्ष के कई सप्ताह पश्चात् बाबर तथा राणा साँगा की फौजें फतहपुर सीकरी की ओर बढ़ीं। राणा साँगा ने फतहपुर सीकरी की चार दीवारी के अन्दर, जैसा कि दर्शक को आज भी दिखाई पड़ता है, अपना शिविर लगाया। बाबर ने अपना शिविर इसकी दीवार के बाहर झील के समीप लगाया जहाँ से पूरे नगर को पानी जाता था। जैसी कि इन म्लेच्छों की आदत थी, बाबर ने उस जल को दूषित करना प्रारम्भ कर दिया। पृष्ठ २६४ पर उसका कथन है कि शनिवार, मार्च १६, १५२७ ई० को उसकी फौज ने "एक पहाड़ी के समीप, जो धार्मिक

शत्रुओं की समाधि के समान लगती है," डेरा डाला। ३०८वें पृष्ठ पर उसका कथन है कि युद्ध हमारे शिविर के समीप ही एक छोटी-सी पहाड़ी पर हुआ था।

राणा साँगा की सेना के हिन्दू वीर तथा देशभक्त सैनिक और वे मुसलमान सैनिक भी थे, जिन्हें बाबर से घृणा थी। उनमें डूंगरपुर के रावल उदयसिंह, मेदिनी राय, हसन खाँ मेवाती, ईदर के भारमल, धर्मदेव, सिकन्दर लोदी तथा रायसेन का देशद्रोही हिन्दू सरदार शैलादित्य थे।

कनवाह की हार से बाबर के शिविर में अत्यधिक भय छा गया था तथा उसके सेनापति लौट चलने के लिए जोर दे रहे थे। यदि राणा साँगा कनवाहा से सीधे ही बाबर की सेना को खदेड़ते आते तो उनकी विजय हो जाती पर उन्होंने शत्रु को सेना पुनर्गठित करने का समय दे दिया।

बाबर ने मालवा में रायसेन के हिन्दू शासक के माध्यम से राणा साँगा से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ कर दी। बाबर रायसेन के राय को रिश्वत देकर अपनी तरफ मिलाने में सफल हो गया। कपटपूर्ण संधि-वार्ता लम्बे समय तक चलती रही ताकि बाबर अपनी सैनिक स्थिति दृढ़ कर सके और शत्रु सेना का भेद प्राप्त कर सके। देशद्रोही राय ने युद्ध आरम्भ होने पर अपनी सैनिक टुकड़ी बदल दी। घायल प्रवंचित राणा को ऐसे समय पर युद्धक्षेत्र छोड़ना पड़ा जब कि उसे विजय-श्री प्राप्त होने ही वाली थी।

फतहपुर सीकरी नगरी जिसे दर्शक भ्रमपूर्वक अकबर का निर्माण मान लेते हैं। आज भी इस युद्ध के समय अपनी वहाँ विद्यमानता के चिह्न लिये खड़ी है। भवन-समूह की प्राचीर पर आज भी बाबर की तोपों द्वारा बरसाए गए गोलों के निशान देखे जा सकते हैं। आक्रमण के समय नष्ट हुए कुछ भाग के अवशेष अब भी वहाँ देखे जा सकते हैं। हाथी पोल के हाथियों को शत्रुओं ने ही अपभ्रष्ट किया था। स्वयं बाबर का कथन है कि उस पहाड़ी पर "मैंने काफिरों के सिरों की मीनार बनाने का हुक्म दिया।" उस चबूतरे पर जो सैंकड़ों कब्रें बनी हुई हैं, वे उन मुस्लिम आक्रान्ताओं की हैं, जो युद्ध में राणा साँगा की सेना द्वारा मारे गए थे।

देशद्रोही हिन्दू राय के विश्वासघात के कारण बाबर को जो सफलता मिली उसका कलंक समस्त हिन्दू जाति पर है, जिससे क्रूर मुगल

साम्राज्य की नींव पड़ी और जिसके कारण भारतीयों को शताब्दियों तक बर्बतापूर्ण यातनाएँ सहन करनी पड़ीं।

अपने पूर्वजों एवं पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों की भाँति बाबर ने विजित मुस्लिम शासकों के हरमों की सुन्दरियों और अपहृत हिन्दू ललनाओं को अपने हरम में डाल लिया। उसकी कामासक्ति से दुःखी होकर इब्राहीम लोदी की माँ ने किसी प्रकार उसे विष दे दिया। विष-प्रभाव से मुक्त होने पर बाबर ने विष देने वाली स्त्रियों में से एक को हाथी के पाँवों के नीचे कुचलवा दिया, दूसरी को तोप के गोले से उड़वा दिया गया और इब्राहीम लोदी की माँ को काल कोठरी में डलवा दिया।

दोआब में विद्रोह करने वाले इलियास खाँ को पकड़ लिया गया और उसकी खाल उतरवा ली गई।

बाबर का कामी और क्रूर जीवन अब समाप्तप्राय: था। उसका पुत्र हुमायूँ भी नीम लुटेरे के रूप में फल-फूल रहा था। बाबर की आज्ञा के बिना वह दिल्ली के लिए चल पड़ा। बाबर और उसके सेनापतियों द्वारा एकत्रित खजानों को स्थान-स्थान पर लूटता हुआ वह दिल्ली पहुँचा। मद्यपान और व्यभिचार में उसने बहुत-सा धन विनष्ट किया। कामुकता के सम्बन्ध में डाँटते हुए बाबर ने उसे एक कठोर पत्र लिखा, परन्तु इसका उसपर कोई प्रभाव न पड़ा।

दरबारी इतिवृत्त में उल्लिखित यह बात भी सफेद झूठ है कि हुमायूँ की बीमारी के समय बाबर ने खुदा से दुआ माँगी थी कि उसकी बीमारी बाबर को लग जाए। वास्तव में मद्यप कामी अपने ही दुष्कर्मों के कारण जर्जर हो गया था। पुत्र के विद्रोह से भी उसे गहरा धक्का लगा था, अत: ४८ वर्ष से कम आयु में आगरा के ताजमहल में २६ दिसम्बर, १५३० को उसका देहान्त हो गया। उसका शव कुछ दिन यमुना-तट पर राम बाग में रखा गया। और बाद में काबुल ले जाकर दफनाया गया।

बाबर को भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाला कहा जाता है। वास्तव में जिस दुराचारपूर्ण वीभत्स शासन की नींव उसने डाली उसके कामी, बर्बर, लम्पट वंशजों से उसका निष्ठापूर्वक अनुसरण किया। जिसके कारण 'मुगल' शब्द 'हिंस्र पशु' का पर्याय बन गया।

३

हुमायूँ

द्वितीय मुगल बादशाह, हुमायूँ, तीसरे दर्जे का आदमी तथा अव्वल दर्जे का शराबी, पियक्कड़ था। इसके अतिरिक्त वह हत्यारा, कसाई एवं व्यभिचारी भी था। उसके पिता बाबर ने, जिसने हुमायूँ को अपने जैसा ही बनाया था, उसे चेतावनी देते हुए कहा था, "अगर अल्लाह ने तुम्हें कभी ताज-ओ-तख्त बख्शा, अपने भाइयों के प्राण न लेना।" (पृष्ठ २३१, क्रिसेंट इन इण्डिया, द्वारा एस० आर० शर्मा)। बाबर अपने पुत्र हुमायूँ से अति-मानवीय वस्तु की आकाँक्षा कर रहा था, कारण कि ८०० वर्षों तक पहले अल्लाह के इन बन्दों का काम प्रत्येक आदमी के प्राण लेना तथा जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक स्त्री का शील-हरण करना था।

बाबर स्वयं जीवन-पर्यन्त इस रक्तिम नियम का पालनकर्ता रहा। वह लिखता है: "जब-जब मैंने हिन्दुस्तान में प्रवेश किया है, जाट तथा गूजर हमेशा पहाड़ियों तथा वनों से बहुत बड़ी संख्या में बैल तथा भैंसे लेने के लिए आए हैं...जब मैंने समूचे पड़ोसी प्रांत पर अधिकार कर लिया है, उन्होंने यही बात दोहरायी है।" (पृ० २३५, वही) बाबर नामक इस मुगल की निर्लज्जता विचारणीय है जो स्वयं डाकू तथा भारत में गिरोह-बन्द रहा है हिन्दुओं को, जो अपने ही घरों तथा पशुओं को ले जाते हैं, चोर कहता है।

इस गिरोहबाज की, जो मुगलों का प्रथम सम्राट कहा जाता है, दानवीय क्रूरताओं का दूसरा उदाहरण, जो उसने हिन्दुओं पर की थीं, अहमद यादगार (पृ० २३६, वही) द्वारा वर्णित है। एक काजी ने बाबर से शिकायत की कि मोहन मुन्दाहिर नामक एक वीर हिन्दू ने, काजी द्वारा उसकी समूची सम्पत्ति हड़प लेने का बदला लेने के लिए, काजी की भू-

सम्पत्ति पर हमला किया, जलाया, सब सम्पत्ति लूट ली और काजी के पुत्र का कत्ल कर दिया।

बाबर ने ३,००० अरबों के साथ अली कुली हुमदानी को काजी के बेटे के प्रति किये गये दुर्व्यवहार का बदला लेने के लिए भेजा। "लगभग एक सहस्र मुन्दाहिर मार डाले गये और इतने ही स्त्री, पुरुष एवं बालक बन्दी बना लिये गये। कत्ल बड़ा भयानक था, कटे हुए सिरों का मीनार बन गया था। मोहन को जीवित ही पकड़ लिया गया। जब बन्दी दिल्ली लाये गये तो सभी स्त्रियाँ (बलात्कार एवं त्राण देने के लिए) मुगलों को दे दी गईं। दोषी मुन्दाहिर को कमर तक भूमि में गाड़ दिया गया और तब तीरों से छेद-छेदकर उसका प्राणान्त कर दिया गया।" बाबर का सम्पूर्ण जीवन तथा उसके परवर्तियों की भी ऐसी ही भयानक क्रूरताओं की लम्बी कहानी है।

प्रत्येक कत्लेआम के पश्चात् हिन्दू स्त्रियाँ कामुक मुगल कुत्तों को दे दी जाती थीं। नियति की विडम्बना यह थी कि वे हिन्दू रानियाँ तथा राजकुमारियाँ, जो पहले अतीव सम्मान की पात्र होती थीं, मजबूर कर दी जाती थीं कि वे उन्हीं अपने महलों में वेश्यावृत्ति करें। स्वयं बाबर लिखता है : "मैं प्रतिदिन अपने महलों में ६८० लोगों को नौकर रखता था तथा आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर, ग्वालियर एवं कोल (जिसे गलती से आज अलीगढ़ कहते हैं) में प्रतिदिन १४९१ संग-तराश नौकर थे।" अहमद यादगार के अनुसार बाबर अपना खाली समय ऐसे बाग में व्यतीत करता था जो "यमुना तट पर था तथा जहाँ उसके साथ मुगल साथी एवं मित्र होते थे। वहाँ वह गुलाबी गालोंवाली नर्तकियों के समक्ष मद्यपान (और सच तो यह है कि आलिंगन-चुम्बन) किया करता था। वे (नर्तकियाँ) धुनें गुनगुनातीं तथा अपना सौन्दर्य (यह उनके नग्न शरीरों की नग्नता का ही सुष्ठु प्रयोग है) प्रदर्शित करतीं।"

यहाँ यह ध्यातव्य है कि बाबर (फतहपुर) सीकरी, ग्वालियर तथा अन्य स्थानों की ही बात करता है। अन्य मुगल बदमाशों की भाँति वह उन्हें अपना ही बताता है। संग-तराश निश्चय ही हिन्दू मूर्तियों को काटने के लिए ही रखे गये थे अर्थात् हाथी की उन विशाल मूर्तियों को जो आगरे के दुर्ग तथा फतहपुर सीकरी के द्वारों की शोभा थीं। उसके सीकरी के प्रासादों

के सन्दर्भ से उन इतिहासकारों को जाग जाना चाहिए जो फतहपुर सीकरी की नींव डालने वाला अकबर को बताते हैं वह भी तब जबकि अकबर का मान्सरेट नामक दरबारी कहता है कि उसने न तो किसी संगतराश की छैनी की आवाज सुनी और न किसी कुदाल की ।

कुख्यात मीना बाजार जिसमें ऊँचे तथा नीचे घरानों की सुन्दर स्त्रियों को मजबूर किया जाता था कि वे मजबूत साँड की तरह घूमते हुए मुगल बादशाह की इच्छा पूर्ति करें, अकबर अथवा हुमायूँ का ही आविष्कार नहीं था बल्कि जैसा कि ऊपर कहा गया है, बाबर द्वारा ही प्रारम्भ की हुई एक सम्मानित प्रथा थी । इस पितृ-परम्परा में जन्म लेने के कारण कोई आश्चर्य नहीं कि हुमायूँ बहुत बड़ा कामी तथा-नरसंहारक हो गया, जिसकी तलवार ने उसके भाइयों को भी नहीं बख्शा ।

हुमायूँ का जन्म मार्च ६, १५०८ को काबुल में हुआ था । जैसाकि यवन राजवंश में सामान्य बात है, हमायूँ की वर्ष-परम्परा अतर्कय नहीं । कदम उठाया गया कि उसे राजगद्दी से अलग रखा जाय और बाबर के बहनोई, मीर मोहम्मद मेंहदी ख्वाजा को बादशाह बना दिया जाय किन्तु हुमायूँ ने अपने पिता की मृत्यु के तीन दिन पश्चात् किसी प्रकार ताज हड़प लिया । २९ दिसम्बर, शुक्रवार को आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद में हुमायूँ के बादशाह बनने की घोषणा पढ़ी गयी । (पृष्ठ २४२, वही) और फिर भी आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद में लिखा हुआ है कि शाहजहाँ की लड़की जहाँनारा बेगम ने सौ वर्ष से अधिक वर्ष पश्चात् उसका निर्माण कराया । इससे सिद्ध होता है कि मुसलमानों की मस्जिदों तथा कब्रों पर यह कितनी गलत बातें लिखी गई हैं और इस प्रकार विजित हिन्दू मन्दिरों तथा प्रासादों को यवनों द्वारा निर्मित बता दिया गया है ।

केवल बारह वर्ष की अवस्था में, १५२० ई० में, बाबर ने हुमायूँ को बदख्शाँ का शासक नियुक्त किया । १५२५ में हुमायूँ ने लुटेरों के बहुत बड़े झुण्ड को लेकर हिन्दुस्तान पर अधिकार जमाने में बाबर की सहायता की । कुछ पंजाब की यवन टुकड़ियाँ जो इब्राहीम लोदी की सहायता के लिए जा रही थीं, हुमायूँ की सेना ने तितर-बितर कर दीं । हुमायूँ ने उन युद्धों में भाग लिया, जिनमें बाबर ने १५२६ में पानीपत में इब्राहीम लोदी को हराया तथा फतहपुर सीकरी के युद्ध में, जिसमें रायसेन के एक

देशद्रोही हिन्दू शासक ने धन के लोभ में भारत का मुकुट विदेशी मुसलमान के सिर पर रख दिया। बाद में अन्य चढ़ाइयों में भी, इब्राहीम लोदी की सैनिक टुकड़ियों के विरुद्ध सम्भल, जौनपुर, गाजीपुर तथा काल्पी में हुमायूं ने मुगल सेनाओं का संचालन किया।

१५२८ में हमायूं घरों, आँगनों तथा अपने पतियों से बुरी तरह घेरकर छीनी हुई सहस्रों हिन्दू ललनाओं तथा सैंकड़ों मन सोने, चाँदी तथा जवाहरातों से उत्सव मनाने के लिए अपने यौवन के रंगीन दिनों को गुजारने बदख्शाँ लौट गया।

एक वर्ष पश्चात् अपने स्थान को वीरान करके बिना किसी से कुछ कहे हुमायूं आगरा लौट आया। इस घटना से बाबर को बड़ा आश्चर्य हुआ। बाह्यतः बाबर लम्पट जीवन व्यतीत करने के लिए भारत को इस गड़बड़ में ही रखना पसन्द करता था। एक दिन इसी प्रकार बाबर से कुछ भी कहे बिना वह दिल्ली चल दिया "और वहाँ उन अनेक घरों को खोल डाला, जिनमें कोष था और समस्त सम्पत्ति को बलपूर्वक हथिया लिया। मैं निश्चय ही उससे ऐसे व्यवहार की आशा नहीं रखता था। अतः अतीव दुःखी होकर मैंने उसे अनेक कठोरतम निन्दाभरे पत्र भेजे।" (पृष्ठ ३१५, भाग २, बाबर के संस्मरण)। आश्चर्य है कि बाबर जैसे बदमाश को भी हुमायूं के व्यवहार में दोष दिखाई दिए। यह प्रदर्शित करता है कि युवक हुमायूं अपने कृपाणधारी पिता के जीवन में ही कितना कामुक तथा व्यभिचारी हो गया था।

यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि हथियारधारी मुसलमान मित्रों के साथ, शराब के नशे में चूर होकर दिल्ली के समीप घरों को विनष्ट करता हुआ तथा समस्त खजानों को लूटता हुआ हुमायूं कितने भयानक अत्याचार कर रहा था! यही लुटेरा था जो भारत का दूसरा मुगल-बादशाह बना। गयासुद्दीन, उपनाम खैन्दावीर, हमायूं नाम का लेखक लिखता है कि "हमायूं ने चन्द्रवार तथा बुधवार मौज उड़ाने के लिए निश्चित कर दिए थे। इन दिनों उसके पुराने साथी तथा चुने हुए दोस्त बुलाये जाते थे तथा गवैयों को भी बुलाया जाता था और उन सबकी इच्छाएँ परिपूर्ण होती थीं······चन्द्रवार चन्द्रमा का दिन है और बुधवार बुध ग्रह का। अतः ये उचित ही था कि इन दिनों वह चन्द्रमा जैसे सुन्दर युवकों के

साथ समय व्यतीत करे।" यह उल्लेख कि हुमायूं अपना समय चन्द्रमा जैसे सुन्दर युवकों के साथ व्यतीत किया करता था, इस बात का द्योतक है कि वह निश्चित ही अपने पिता बाबर के समान ही अप्राकृतिक संभोगी था। एकत्र हुए ऐसे अवसरों पर हर व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति करना इस बात का प्रमाण है कि ऐसे सम्मिलन कितने विकृत तथा कामुकतापूर्ण हुआ करते थे ! (पृ० ११२, भाग ५, इलियट तथा डाउसन)।

सर एच० एम० इलियट का कथन है कि, "अपनी वृद्धावस्था में खैन्दा-मीर दरबारी बन गया था तथा इतिहास-लेखन छोड़कर शाही चारण बन गया था। उसकी कृति से स्पष्ट है कि उसे दरबार में बहुत सम्मान मिला था तथा उसे 'अमीर-ए-अखबार' की उपाधि भी प्राप्त हुई थी, (प्रिंस आफ राइटर्ज, पृ० ११६, इलियट तथा डाउसन)। जब यह बदमाश भाट गंभीरतापूर्वक लिखता है, "१५३४ ई० मुहर्रम के महीने के बीच में हुमायूं ने दीनपनाह नामक नगर की दिल्ली में आधारशिला रखी और उसी वर्ष के अन्त तक शौवाल के महीने में (सम्पूर्ण नगर के) दीवारें, बुर्ज, प्राचीर द्वार तथा लगभग पूर्ण हो गये।" (पृ० १२६, वही)। स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार हिन्दू नगरों तथा प्रासादों को धोखे से यवनों द्वारा निर्मित बता दिया गया।

हमें विश्वास है कि हमारे विश्वविद्यालय तथा इतिहास-अध्यापक इन चालों की ओर अपने शैक्षणिक नयन उघाड़ेंगे। बाबर को गुजरे केवल तीन वर्ष हुए थे। इन तीन वर्षों में उसके शक्तिशाली विरोधियों ने—अपने सगे भाई, महमूद लोदी, इब्राहीम लोदी का भाई, शेरशाह सूर, आलम खाँ उपनाम अलाउद्दीन, इब्राहीम लोदी का चाचा—उसका पीछा किया। ऐसे में यह कथन कि अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् इन तीन वर्षों में, हुमायूं जैसे लम्पट ने, जो सदैव अनेक भयानक शत्रुओं से घिरा रहता था, दिल्ली के समीप एक सम्पूर्ण नगर बसाने के लिए और वह भी कुछ ही महीनों में शान्ति, धन तथा कारीगरों को पा लिया, जहाँ तक लेखक का सम्बन्ध है, शैक्षणिक धृष्टता एवं निर्लज्जता की पराकाष्ठा है।

इसके विपरीत, एक अन्य इतिहासकार हैदर मिर्जा देगलात, तारीख-ए-रशीदी के लेखक ने "हुमायूं के आरम्भिक शासनकाल की अक्षमता एवं अव्यवस्था का बृहद्चित्र" खींचा है (पृ० १२८, वही)।

हुमायूँ के तीन भाई कामरान, अस्करी मिर्जा तथा हिन्दाल थे। कामरान को पंजाब, काबुल तथा कन्धार का मालिक बना दिया गया था। अस्करी को सम्भल और हिन्दाल को मेवात (अलवर) जिले का प्रधान बना दिया गया था।

बादशाह बनने के इच्छुक कामरान ने हुमायूँ के विरुद्ध काबुल से कूच किया तथा कभी सेना की सहायता से तो कभी काव्यात्मक चाटुकारिता द्वारा हुमायूँ से दिल्ली से उत्तर की उपजाऊ भूमि हथिया ली। इससे हुमायूँ की आय में बहुत कमी हुई। उधर कामरान को लूट-खसोट के लिए बहुत बड़ा भूखण्ड प्राप्त हो गया। विन्सेंट स्मिथ ने उचित ही लिखा है कि कामरान ने "अपने विपक्षियों पर राक्षसी हमले करके, स्त्रियों एवं बच्चों तक को न छोड़कर, बहुत दुर्नाम कमाया।" (महान् मुगल अकबर, पृ० १८) फिर भी जैसा कहा जाता है, हुमायूँ मूर्ख नहीं था। यही तथ्य कि उसने अपने तीनों शरारती भाइयों को दूर ही रखा, इस बात का प्रमाण है कि वह अतिधूर्त था। चापलूस यवन इतिहासकार हुमायूँ को इसीलिए महान बताते हैं कि वह बादशाह था।

जैसा सामान्यतया होता रहा, हुमायूँ ने अपना शासन हिन्दू राज्य को लूटकर प्रारम्भ किया। कालिंजर का हिन्दू राज्य सर्वप्रथम हुमायूँ के यवन लुटेरों का शिकार हुआ।

स्वर्गीय सुलतान सिकन्दर लोदी के पुत्र, महमूद ने स्वयं को जौनपुर का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और इस प्रकार वह हुमायूँ की राज्य-सत्ता के लिए चुनौती बन गया। लोदी शत्रु को अनेक अफगान सरदारों से अनुमोदन मिला। हुमायूँ उनसे लड़ा और कहते हैं कि उसने बहुत बड़ी विजय प्राप्त की। हुमायूँ ने इस अवसर पर एक उत्सव मनाया, जिसमें दावत ही नहीं दी, अपने दरबारियों को उपहार भी दिये। इससे उसके राजकोष में और कमी आ गयी।

एक के बाद एक राजद्रोह ने हुमायूँ को चैन से नहीं बैठने दिया। एक विद्रोही दरबारी मुहम्मद जमान मिर्जा को अन्धा करने के लिए बयाना के किले में भेजा गया, जहाँ से वह भागकर गुजरात के शासक सुलतान बहादुर से जा मिला। कुछ-कुछ ऐसे ही नाम वाला दूसरा दरबारी मुहम्मद सुलतान मिर्जा, अपने दो पुत्रों के साथ कन्नौज चला गया और वहाँ उसने हुमायूँ

के अधिकार को चुनौती दे दी।

हुमायूँ ने गुजरात के शासक से विद्रोही मोहम्मद जमान मिर्जा को माँगा। उसके मना कर देने पर हुमायूँ ने उसपर चढ़ाई कर दी। ग्वालियर पहुँचने पर (१५३२ में) हुमायूँ दो मास तक कामुकता में डूबा रहा और बाद में लौट आया। दो वर्ष पश्चात् जब वह गुजरात के शासक को धमकाने गया, उसने चित्तौड़ के दुर्ग को घेर लिया। जैसी मुसलमानों की विशेषता ही है, हमायूँ ने अपने शत्रु, सुलतान बहादुरशाह को कहला भेजा कि जब तक वह, मुस्लिम होने के नाते, चित्तौड़ के हिन्दू दुर्ग का घिराव किए रहेगा, हुमायूँ उसे किसी प्रकार परेशान नहीं करेगा और न कोई असुविधा पहुँचाएगा। हुमायूँ का यह कथन यवन दुष्टता का स्पष्ट दर्शक है जो हिन्दुओं को परेशान करने तथा हिन्दू राज्यों को विनष्ट करने के लिए अपनी निजी शत्रुता बिसार देते थे।

क्रूर दुष्ट बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, हिन्दू शौर्य के उस स्थल को लूटा तथा विनष्ट किया, मनमाना धन एकत्र किया और तब हुमायूँ पर अपना क्रोध प्रदर्शित किया। मन्दसौर के स्थान पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। लम्बे युद्ध तथा हुमायूँ के प्रभावशाली घेरे के कारण बहादुरशाह की सेना को भूखों मरने की नौबत आ गयी। वह माण्डवगढ़ (माँडू) की ओर भागा। हुमायूँ ने उसका पीछा कर माण्डवगढ़ का घेरा डाल दिया। बहादुरशाह वहाँ से भी भागा। अहमदाबाद जाते समय बहादुरशाह ने पावगढ़ के दुर्ग से धन लूटकर, वहीं बसे हिन्दू नगर चम्पानेर में आग लगा दी।

बहादुरशाह का पीछा करते-करते हुमायूँ ने अहमदाबाद जीत लिया तथा उस नगर के धनाढ्य हिन्दू व्यापारियों का सब माल लूट लिया। हुमायूँ ने बहादुरशाह को पूर्णतया समाप्त करने के इरादे से कैम्बे तक पीछा किया। बहादुरशाह के दीव भाग जाने पर हुमायूँ ने उसका पीछा छोड़ चम्पानेर की लूट प्रारम्भ कर दी। पावगढ़ के किले का चार मास तक घेरा डालने के पश्चात् हुमायूँ ने उसे हथिया लिया। इतिहासकार फरिश्ता लिखता है, "अनेक दुर्गरक्षक मारे गये और उनकी पत्नियों तथा बच्चों ने प्राचीर से कूदकर प्राण दिये। जिस स्थान पर बहादुरशाह ने धन गाढ़ दिया था, उसे केवल एक व्यक्ति जानता था। उससे रहस्य ले लिया गया।

यह धन जलाशय के तख्ते के नीचे महराब में पाया गया। समस्त धन सैनिकों में बाँट दिया गया। वस्तुएँ तथा स्वर्णहार सैनिकों को इतना मिला कि उस वर्ष उन्होंने गुजरात में मालगुजारी भी वसूल नहीं की।" इसका अर्थ यह है कि हुमायूं के लुटेरे हिन्दुओं को लूटकर इतने संतुष्ट हो जाते थे कि बाद में वे उत्सव भी मनाया करते थे।

गुजरात के यवन दरबारियों ने विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर दिया क्योंकि हिन्दुओं को मुगल दरबारियों ने इतना लूटा कि गुजराती मुसलमानों के लिए कुछ भी शेष नहीं बचा। हुमायूं के भाई अस्करी ने इस विद्रोह को दबाने में सफलता प्राप्त की। दो हजार से अधिक विद्रोही मारे गये तथा गुजरात के विभिन्न भाग हुमायूं के सेवकों में बाँट दिये गये।

हुमायूँ तब आर्थिक लूट के लिए माँडवगढ़ तथा बुरहानपुर तक बढ़ गया। दक्षिण के यवन राजाओं ने हुमायूँ के आक्रमण के भय के कारण उसे चापलूसी से भरे पत्र लिखे। किन्तु हुमायूँ बहुत शीघ्र वापस आ गया क्योंकि शेर खाँ सूर नामक एक नया जमींदार बहुत बड़ा लुटेरा होता जा रहा था। किन्तु शेर खाँ से निपटने के स्थान पर हुमायूं अपनी कामाग्नि शान्त करने आगरा रुक गया (१५३५-३६)। ज्यों ही वह आगरा गया गुजरात तथा मालवा में मुगल राज्य की नींव हिला दी गई।

मुहम्मद जमान मिर्जा जो गुजरात में बहादुरशाह की हार से सिन्ध भाग गया था, लाहौर पर चढ़ बैठा। हुमायूँ के आगरा लौटने पर मुहम्मद मिर्जा एक बार पुनः गुजरात भाग गया। पारसियों ने कुछ काल तक कंधार अपने नियंत्रण में रखा पर कामरान ने इसे वापस ले लिया। गुजरात का बहादुरशाह, जिसे पुर्तगालियों ने हुमायूं से गुजरात लेने में सहायता की थी, पुर्तगाली गवर्नर से सलाह करने दीव जाते हुए समुद्र में डूब गया। उस समय बहादुरशाह केवल तीस वर्ष का था।

शेरशाह उपनाम शेर खाँ ने, जो अफगान जमींदार था, बिहार में पूर्ण सत्ता ग्रहण कर ली तथा बनारस के गंगा के समीपस्थ युनार के दुर्ग को हथिया लिया। हुमायूं ज्यों ही इस नये शत्रु से निपटने गया, समाचार मिला कि गुजरात का सुलतान बहादुर, जिसने मांडवगढ़ पर अधिकार कर लिया था, हुमायूँ की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था, तथा मोहम्मद मिर्जा, जो बयाना के दुर्ग में बन्दी था, पलायन कर

गया है। हुमायूँ को दक्षिण में गया हुआ जानकर शेर खाँ ने बिहार में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी। दुःखी अफगानों को शेर खाँ के रूप में एक सबल नेता मिल गया।

वर्षा के पश्चात् जब हुमायूँ ने शेरशाह के दमन की सोची, उसने (शेरशाह ने) जौनपुर के शासक हिन्दू बेग को, जिसे हुमायूँ ने अपने और शेरशाह के बीच मध्यस्थ बनाया था, बहुत भारी रिश्वत दी। शेरशाह ने मक्कारी से यह भी कहा कि वह तो हुमायूँ का केवल एजेन्ट तथा आसामी था। इस प्रकार स्वयं को हुमायूँ से अलग कर शेरशाह ने बंगाल में लुटेरे भेज दिए।

यह जानकर कि उसे मूर्ख बनाया गया है, हुमायूँ ने आगामी वर्ष ही युनार पर आक्रमण कर दिया। पर जब उसने उस दुर्ग को ले लिया, शेरशाह के पुत्र ने बंगाल की राजधानी गौड़ रोहतास दुर्ग नामक एक अन्य महत्त्वपूर्ण किले पर अधिकार कर लिया। युनार की विजय के पश्चात् हुमायूँ फिर कामुकता एवं शराब में डूब गया।

जब हुमायूँ बनारस की ओर बढ़ा, शेरशाह ने कहला भेजा कि यदि उसे बंगाल में रहने दिया जाय तो वह बिहार प्रान्त दे देगा। इतना ही नहीं वह हुमायूँ को प्रति वर्ष दस लाख रुपये भी देगा। मूर्ख हुमायूँ लौटने ही वाला था की बंगाल के सुलतान महमूद ने उससे कहा कि शेरशाह बहुत धोखेबाज है तथा उसका किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिए। हुमायूँ की सेना ने बंगाल में प्रवेश कर अफगानों को अपने अधीन कर लिया। धूर्त्त शेरशाह ने अधीनता का स्वांग भरकर हुमायूँ का अभूतपूर्व स्वागत किया।

"सभी (विजित हिन्दू) महल आभूषणों तथा विभिन्न प्रकार की साज-सज्जाओं, (नग्न) चित्रों, मूल्यवान् गलीचों तथा रेशमी साज से सज्जित कर दिये गये।" नशा, कामुकता एवं अप्राकृतिक मैथुन के आमोद की वस्तुएँ भी बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध करादी गयी थीं। कामुक हुमायूँ इस जाल में सरलता से फँस गया तथा "चार महीने तक गौड़ में रहा, जहाँ सिवा विषयोपभोग के उसके पास कोई समय नहीं था।" इसी बीच शेरशाह ने ७०० मुगल मार दिये, बनारस नगर पर अधिकार कर लिया, कन्नौज पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी तथा हुमायूँ के अनेक सहायकों के

परिवारों को पकड़कर रोहतास दुर्ग की कोठरियों में बन्द कर दिया।

बनारस जैसे पवित्र हिन्दू तीर्थस्थल की दयनीय दशा की सहज कल्पना की जा सकती है जिसे हुमायूं तथा शेरशाह जैसे दो राक्षस यवनों के मूर्तिभंजक गुण्डों ने एक के बाद दो बार इतनी शीघ्र रोंद डाला। तथाकथित अनेक मस्जिदें इन दो यवन आक्रमणकारियों द्वारा परिवर्तित मन्दिर हैं।

जब हुमायूं दूर बंगाल में मद्यपान में लिप्त था, शेरशाह ने हुमायूं के राज्य के पश्चिमी भाग में क्रूरता का नंगा नाच प्रारम्भ कर दिया था। बनारस के दुर्गरक्षक तलवार के घाट उतार दिये गये, बहराइच मुगलों से रहित कर दिया गया, संभल पर अधिकार करके निवासियों को या तो बन्दी बना लिया गया या इस्लाम में परिवर्तित कर दिया या फिर कत्ल ही कर दिया गया तथा नगर के मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करके भ्रष्ट कर दिया गया।

जौनपुर पर भी अधिकार कर लिया गया। प्रत्येक पड़ोसी नगर के मुगल शासक को भगा दिया गया या मार दिया गया तथा आगरा की ओर विशाल वाहिनी भेजी गयी, जिसने मार्ग में आये सभी हिन्दुओं से भारी कर वसूल किया। इस प्रकार धीरे-धीरे सभी हिन्दू अत्यन्त दीन बना दिये गये जबकि प्रत्येक मुस्लिम गुण्डा, इतस्ततः घूमकर, उनके घरों को फूंक देता। उनके स्त्री-बच्चों को पकड़ लेता, सबको कत्ल कर देता, मन्दिरों को मस्जिदों तथा मकबरों में बदल देता, उनकी दुधारू गायों को मारकर खा जाता तथा उनकी सभी बहुमूल्य वस्तुएँ लूट लेता।

हुमायूं को बंगाल में छोड़कर उसका सबसे छोटा भाई हिन्दाल आगरा आया और अपने को राजा घोषित कर दिया। हुमायूं के विश्वासपात्र शेख बहलोल को मार डाला गया। कामरान भी लाहौर से प्रत्यक्षतः हुमायूं की सहायता करने चला पर वस्तुतः वह उसे सिंहासन से च्युत करना चाहता था। हिन्दाल तथा कामरान की सेनाओं ने दिल्ली का घेरा डाल दिया पर हुमायूं के स्वामिभक्त शासक ने आत्मसमर्पण नहीं किया। तब दोनों भाई आगरे की ओर बढ़े जहाँ कामरान ने स्वयं को सम्राट् घोषित कर दिया तथा हिन्दाल अलवर (मेवाड़) भाग गया।

अब हुमायूं को मजबूरन आराम तथा वासनापूर्ण जीवन त्यागकर

अपनी राजधानी आना पड़ा। मार्ग में चुपाघाट उपनाम चौसा के स्थान पर शेरशाह ने उसका मार्ग अवरुद्ध किया हुआ था। जून २६, १५३९ की प्रातः अफ़गान सेना ने हुमायूँ के शिविर पर पीछे से आक्रमण किया, खूब शोर किया तथा उसके सैनिकों एवं अनुयायियों में गड़बड़ पैदा कर दी। शत्रु के एक हाथी ने हुमायूँ के पास ही आक्रमण किया। हाथी से छूटे हुए एक बाण ने हुमायूँ की भुजा को घायल कर दिया। अब हुमायूँ को शत्रु से घिर जाने का भय था। उसने अपने अंगरक्षकों को शत्रुओं का सफाया करने की आज्ञा दी परन्तु किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया। हुमायूँ ने एक से एक भाला छीनकर हाथी के भौंक दिया। भागते हुए हाथी ने बढ़ते हुए शत्रुओं के बीच मार्ग बना दिया जिससे हुमायूँ के कुछेक स्वामिभक्त सैनिक उसके समीप ही आ गये। एक ने हुमायूँ के घोड़े की लगाम लेकर उसे वहाँ से दूर कर दिया। हुमायूँ सरपट दौड़ा जा रहा था जबकि अफगान शत्रु बिल्कुल उसके पीछे ही था। उसने अपना अश्व जल की धारा में डाल दिया। बीच धार में घोड़ा डूब गया। जब हुमायूँ स्वयं को जल से ऊपर रखने का प्रयत्न कर रहा था, निजाम नामक एक भिश्ती ने अपनी मशक फुलाकर हुमायूँ की ओर फेंक दी जिसने जीवन-नौका का काम किया। कृतज्ञ हुमायूँ ने अपने रक्षक से भागते-भागते कहा कि राज्य मिलने पर वह उस निजाम को दो घण्टे के लिए राजा बना देगा। इस भगदड़ में ८,००० मुगल तथा हुमायूँ के पीछे चलने वाले अनेक हिन्दू उस नदी में डूब गये। हुमायूँ का यह पलायन इतना दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि उसका सम्पूर्ण हरम अफगान कामुकता का शिकार हो गया।

निराश्रित हुमायूँ आगरा पहुँचा। उसके अचानक आ जाने से कामरान ने हुमायूँ की अनुपस्थिति में राजा बनने के लिए पश्चात्ताप किया। हिन्दाल ने भी अलवर से आकर यही स्वाँग दिखाया। कामरान ने लाहौर वापस जाने के लिए तब तक मना कर दिया जब तक उसे स्वतन्त्र शासक न मान लिया जाय तथा हुमायूँ के कोष से अच्छा-खासा भाग न दे दिया जाय। उसके इस क्रूर हठ से दुःखी हो हुमायूँ ने अपने भाई कामरान को विष दे दिया जिससे वह बहुत बुरी तरह बीमार पड़ गया। इस चाल का सन्देह कर कामरान लाहौर जाने के लिए तैयार हो गया। यद्यपि उसने हुमायूँ की सुरक्षा के लिए सेना का अधिकांश छोड़ जाने का वचन दिया था पर

उसने केवल २,००० निराश व्यक्ति छोड़े।

शेरशाह की सेना अब हुमायूँ के सम्पूर्ण राज्य में मनमानी कर रही थी। शेरशाह के पुत्र कुतुब खाँ के नियन्त्रण में भेजी गई एक टुकड़ी की अस्करी तथा हिन्दाल की सेना से मुठभेड़ हो गयी जिसमें कुतुब खाँ मारा गया।

इस विजय से फूलकर हुमायूँ ने शेरशाह से दो-दो हाथ करने की ठानी। दोनों सेनाएँ आमने-सामने थीं, जिन्हें गंगा नदी अलग कर रही थी। दोनों ओर की हिन्दू बस्तियाँ इन यवन सेनाओं द्वारा बरबाद हो गयीं। हुमायूँ की सेना परित्याग के कारण क्षीण होती गयी। मुहम्मद सुलतान मिर्जा, जिसने हुमायूँ से अनेक बार झगड़ा शान्त किया था, उसका जनरल था। वह शेरशाह से मिल गया। कामरान की सेना के पिछले भाग ने लाहौर की राह ली। अन्य अनेक टुकड़ियों ने हुमायूँ का परित्याग कर दिया और यह कहकर कि 'चलो घर चलकर आराम करें' चले गये। एक महीना पहले ही गुजर चुका था। यह सोचकर कि यदि उसने और भी देर की तो उसके पास बिल्कुल सेना नहीं रहेगी, हुमायूँ ने नदी पार कर दूसरी ओर शेरशाह के शिविर से कुछ ही दूर डेरा डाल दिया। अब इन दोनों सेनाओं में प्रतिदिन झड़पें हो जाती थीं। हुमायूँ के शिविर और नदी के बीच २७ तुग थे जिनके अपने निजी ध्वज थे किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने ध्वजों को नीचे कर लिया कि कहीं ऐसा न हो कि उन पर शेरशाह की कुदृष्टि हो जाय। ये वही आदमी थे जिन्होंने हुमायूँ की अप्राकृतिक मैथुन सम्बन्धी रंगरेलियों में भाग लिया था। यह ठीक ही कहा गया है कि, जो आनन्द में भाग लेने के लिए एकत्र होते हैं, वे मुसीबत के समय भाग जाते हैं।

प्रत्येक मुस्लिम दरबारी के पास बहुत से दास थे। जिस दिन शेरशाह ने आक्रमण किया, हुमायूँ की फौज बिना कुछ प्रतिरोध किए भाग खड़ी हुई। हुमायूँ स्वयं आगरे की ओर भागा पर शेरशाह द्वारा पीछा किया जाने पर उसे लाहौर की ओर जाना पड़ा। शरण की खोज में पंख फड़-फड़ाते हुए जंगली पक्षी की भाँति हुमायूँ लाहौर से भी बाहर खदेड़ दिया गया। कामरान काबुल चला गया और हुमायूँ ने सिन्धु के किनारे-किनारे भक्कर की राह पकड़ी।

जंगल में भगोड़े हुमायूँ के साथ कुछ सौ सैनिक ही थे, जिससे उसे

बड़ी परेशानी हुई। कई दिनों तक उसके साथियों को पानी तक नहीं मिलता था। जिस दिन पानी मिल जाता था, वे इतनी बुरी तरह पीते थे कि कुछ तो थककर, गर्मी के कारण बेहोश हो जाते थे। हुमायूँ ने जोधपुर के राजा मालदेव से शरण माँगी। किन्तु यह सोचकर कि हो सकता है उसे शेरशाह के हवाले कर दिया जाय, हुमायूँ अच्छे दिनों की आशा में बिना किसी लक्ष्य के रेगिस्तान में घूमता रहा। सौभाग्य से अमरकोट के राणा प्रसाद ने उसे अपना अतिथि बनाया। राणा के पिता लगभग २०० मील दूर थट्टा के यवन शासक द्वारा मार दिये गये थे। उसे आशा थी कि किसी दिन हुमायूँ उसके पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए थट्टा के यवन शासक पर आक्रमण करेगा। भारत में हुमायूँ की लूटों का बदला लेने के लिए राजा मालदेव के दो हिन्दू शूरवीरों ने हुमायूँ का पीछा किया। वह जोधपुर की सीमा से अमरकोट की ओर भाग गया। तबकात-अकबरी का लेखक निजामुद्दीन इस घटना का वर्णन करते हुए(पृष्ठ २१२, भाग ५, इलयट तथा डाउसन) कहता है, "हिन्दू जो गुप्तचर के रूप में उसके पीछे थे, उसके हाथ पड़ गये और उसके सामने लाए गए। उनसे प्रश्न किए गये और आदेश दिया गया कि ठीक तथ्यों का पता लगाने के लिए उनमें से एक को मृत्युदण्ड दिया जाए। दोनों बन्दी छूट गये तथा दो समीप खड़े हुओं से चाकू तथा कटार लेकर उन्होंने सत्रह पुरुषों, स्त्रियों तथा घोड़ों की हत्या कर दी तब कहीं वे पकड़ में आये और कत्ल कर दिये गए। सम्राट् का निजी घोड़ा भी मार दिया गया था। उसके पास दूसरा घोड़ा नहीं था।"

यदि हुमायूँ मार दिया जाता तो भारत कई शताब्दियों तक मुगलों के विनाशों से बचा रहता। जब हुमायूँ ने फारसियों की सहायता से अपने भाई अस्करी से कन्धार छीना उस समय निजामुद्दीन के कथन से ही मुगलों की नैतिकता आँकी जा सकती है। इतिहासकार निजामुद्दीन कहता है, "तब हुमायूँ ने फारसी सेनापतियों को बुलाकर विनती की कि तीन दिन तक उन अनेक चुगताई परिवारों को पीड़ा न दी जाये जो वहाँ थे।" (पृष्ठ २२०, भाग ५, वही) इस कथन से स्पष्ट है कि जब हुमायूँ ने अपनी जाति के परिवारों को न छेड़ने के लिए तीन दिन की प्रार्थना की थी तो भारत में हजार साल से ऊपर हर यवन आक्रमण के पश्चात् कितने हिन्दू

परिवारों को भ्रष्ट कर दिया जाता होगा।

यद्यपि हुमायूं का सारा जीवन ऐसी ही दुष्टताओं से भरा है तथा वह हमेशां नशे में चूर रहता था फिर भी नीच निजामुद्दीन लिखता है (पृष्ठ २४०, भाग ५, वही) "हुमायूं के दैनिक चरित्र में प्रत्येक मानवीय गुण था। ज्योतिष तथा गणित विद्याओं में तो वह अद्वितीय था।" हमारे इतिहास मशीन की तरह मुस्लिमों की क्रूरताओं का उल्लेख करते हुए जान-बूझकर कही गयी इन्हीं झूठी बातों को दोहराते रहते हैं। कोई इतना तक नहीं सोचता कि हुमायूं जैसे दुष्ट को एक अक्षर भी सीखने का समय कहाँ मिला था? उसे ऐसे गहन विज्ञान किसने और कहाँ सिखाये? और यदि वह इतना महान् वैज्ञानिक था तो उसकी प्रकृति में ऐसी दुष्टता कैसे बनी रही जो लकड़बग्धों, भेड़ियों, चीतों तथा बिल्लियों को भी शरमा दे?

लगभग एक वर्ष पूर्व रेगिस्तान में अपने भाई हिन्दाल के शिविर में जाते समय ३३ वर्षीय हुमायूं की कामुक आँख, हिन्दाल के हरम में खोजते-खोजते १३ वर्षीया हमीदा बानू पर टिक गयीं। उसका पिता मीर बाबा दोस्त हिन्दाल का धार्मिक मार्गदर्शक था। हुमायूं की क्रूरता तथा कामुक आदतों के कारण वह बालिका हुमायूं की अंकशायिनी नहीं होना चाहती थी। उसके पिता की भी इच्छा नहीं थी परन्तु उनके इन्कार का क्या मूल्य? पिता को दो लाख रुपये की रिश्वत दी गयी और बालिका हुमायूं को सौंप दी गई। एक बेघर घुमक्कड़ द्वारा सितम्बर, १५४१ में कामुक भँवर में फँसायी गयी १३ वर्षीया यही बालिका थी जिसने अक्तूबर १५, १५४२ को अकबर को जन्म दिया। इस जोड़े ने अमरकोट के हिन्दू शासक राणा प्रसाद के महल में मधुयामिनी बितायी थी। हिन्दू घर में जन्मा यही अकबर आगे चलकर ऐसा राक्षस बना जिससे हिन्दू लोग भय के कारण दूर भागते थे।

हुमायूँ ने मरुभूमि में तीन वर्ष व्यतीत किये। जब वह कन्धार जाने की सोच रहा था, तब उसका सेनापति बैरम खाँ, जो हुमायूं की हार के पश्चात् गुजरात में छुपा हुआ था, आकर उससे मिल गया था। कंधार पहुँचने पर हुमायूँ को सूचना मिली कि उसके भाई कामरान तथा अस्करी थट्टा के शासक **शाह हुसैन** से हुमायूँ को जाल में फँसाकर मारने की बात कर रहे हैं। इस समाचार से भयभीत होकर हुमायूं ने अकबर

को कन्धार के हरम की कुछ स्त्रियों के हवाले कर फारस की राह पकड़ी। प्रारम्भ में ईरान के शाह की ओर से सीमास्तान के शासक द्वारा उसका भव्य स्वागत किया गया। बाद में हुमायूं शाह के समीप गया। शाह ने हुमायूं को १४,००० लुटेरे इस शर्त पर दिए कि हुमायूं सुन्नी न रहकर इस्लाम के शिया वर्ग में विश्वास रखेगा तथा हथियाने के बाद कन्धार शाह को दे देगा।

इस सेना को लेकर हुमायूं वापस लौटा। उसके सगे भाई ही उसके सबसे बड़े शत्रु थे। कामरान काबुल का राजा था, अस्करी कन्धार का। कामरान ने बदख्शाँ (दक्षिण बैक्ट्रिया) को भी इसके शासक सुलेमान मिर्जा से छीन लिया था। इसे बाबर ने नियुक्त किया था।

हुमायूं की सेना ने गर्मसीर क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। फिर उसने कंधार का घेरा डाला। लम्बे घेरे के बाद अस्करी ने इसका समर्पण कर दिया पर साथ ही ईरान के शाह से की गई शर्त के अनुसार कन्धार को ईरान को सौंप देना था। मिर्जा अस्करी यद्यपि घर में बन्दी था पर वह किसी प्रकार हुमायूं के शिविर से भाग गया। उसका पीछा किया गया और वापस लाकर चौकसी के साथ बन्दी बना दिया गया।

चुगताई सेनापतियों ने हुमायूं को शाह से पुनः कन्धार लेने के लिए उकसाया। कृतघ्न हुमायूं द्वारा अचानक पीठ में छुरा भोंकने से फारसी आश्चर्य में पड़ गये और बिना किसी प्रतिरोध के सितम्बर, १५४५ में उनके हाथ से कन्धार हुमायूं के हाथ चला गया। बैरम खाँ, जिसे बाद में अकबर का संरक्षक बनाया गया, कन्धार का शासक नियुक्त हुआ तथा हुमायूं अपने विद्रोही तथा हठी भाई कामरान से काबुल छीनने चला। हुमायूं ने काबुल को घेर लिया। कामरान के सेनापति एक-एक कर हुमायूं की ओर आते गये। कामरान ने हुमायूं से सुलह की बात चलायी। हुमायूं ने कामरान को इस शर्त पर क्षमा करने का वचन दिया कि वह व्यक्तिगत तौर से क्षमा माँगे। अपने भाई की कुरान की शपथ में भी विश्वास न कर कामरान काबुल के दुर्ग में छिप गया। उसके अधिकांश सेनापति हुमायूं से जा मिले थे। नवम्बर १५, १५४५ को जब हुमायूं ने काबुल पर अधिकार किया, कामरान गजनी भाग गया। यहाँ अकबर का एक बार फिर हुमायूं से मिलन हुआ।

हुमायूँ ने बदख्शाँ के मिर्जा सुलेमान का समर्पण चाहा। दुत्कारे जाने पर हुमायूँ ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर कामरान काबुल और गजनी पर चढ़ बैठा तथा दोनों नगरों पर अधिकार कर लिया। बालक अकबर अब कामरान के अधिकार में था। सुलेमान की हार हुई पर क्योंकि हुमायूँ को कामरान से निपटने वापस जाना था, उसने बदख्शाँ की गद्दी पर पुनः सुलेमान को बैठा दिया। हुमायूँ की सेना ने घेरा डाल दिया। हुमायूँ की तोपों की मार जिस दीवार पर सर्वाधिक होती थी वहीं कामरान अकबर को बिठा देता था ताकि हुमायूँ आक्रमण करने से विरत हो जाय। हुमायूँ को नई कुमक मिलती ही गई। अन्त में हार मानकर कामरान ने शान्ति की बात चलाई। अब भी हुमायूँ के समक्ष वह नहीं आना चाहता था अतः बदख्शाँ भाग गया। वहाँ उसने उजबेक लुटेरों को एकत्र करना चाहा पर असफल होने पर वह अप्रैल, १५४७ में हुमायूँ के शिविर में आ गया। एक बार पुनः हुमायूँ ने उसे क्षमा कर दिया तथा शाही सम्मान के साथ उसे खर्चे के लिए कोलाब का भूभाग प्रदान कर दिया।

जून, १५४८ में हुमायूँ काबुल से बल्ख की ओर बढ़ा। अपनी सहायता के लिए उसने तीनों भाई बुलाये। हिन्दाल तो उसके समीप आ गया, अस्करी तथा कामरान ने उसके बुलावे को नामंजूर कर दिया। इससे क्रोधित होकर हुमायूँ ने कामरान की जागीर समाप्त कर दी। कामरान ने सिन्ध के शाह हुसैन सारगुन से सहायता माँगी। इसकी पुत्री कामरान द्वारा रखी हुई हजारों पत्नियों में से एक थी। उसकी सहायता से कामरान ने पुनः काबुल पर चढ़ाई की। इस आक्रमण में नवम्बर १६, १५५१ को हिन्दाल मारा गया। कामरान सलीमशाह सूर से शरण लेने भारत भाग गया। वहाँ दुर्व्यवहार प्राप्त करने के कारण कामरान सियालकोट की पहाड़ियों में भाग गया। इन पहाड़ियों में घूमते हुए वह लोगों को लूटता तथा स्त्रियों का सतीत्व भ्रष्ट करता। हिन्दुओं के गक्खर जाति के शूर-वीरों ने उसे पकड़कर बन्दी के रूप में हुमायूँ के समीप भेज दिया।

कामरान की कृतघ्नता से परेशान हो चुगताही सेनापतियों ने हुमायूँ को कामरान को अन्धा कर देने की सलाह दी। कामरान को भान हो गया कि उसे कोई भयानक दण्ड दिया जाएगा, उसने हरम-ललनाओं का परि-

धान माँग हुमायूँ के बन्दीगृह से, यवन स्त्री के वेश में, पलायन करने का प्रयत्न किया। पर एक तम्बू में उसे पहचान लिया गया। टाँग पकड़कर उसे बाहर घसीट लिया गया, जमीन पर चित्त लिटा दिया गया, एक व्यक्ति उसके घुटने पर बैठा, दूसरे ने कामरान की दोनों आँखों में छुरी भोंक दी। इतना ही नहीं, जीवन भर हिन्दू तथा मुस्लिम स्त्रियों एवं बच्चों के साथ राक्षसी व्यवहार करने के एवज में उसके चक्षु-गह्वरों में नींबू का रस तथा नमक लगा दिया गया। इस विलक्षण, दयनीय शल्यचिकित्सा के ठीक पश्चात् कामरान को घोड़े पर बिठाकर उसके रक्षक के साथ बाहर कर दिया गया। चार वर्ष पश्चात् अक्तूबर ५, १५५७ को अन्धा कामरान बिना किसी आश्रय के मक्का में मर गया। यवन इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है जहाँ हर यवन गुण्डे तथा देशद्रोही ने कुरान की झूठी शपथ खायी है तथा मक्का को अपनी अन्तिम शरण स्थली माना है। हर यवन पाखण्डी तथा कपटी व्यक्ति ने, धन एवं लड़कियों की इच्छा पूरी न होने पर, मक्का जाने की धमकी दी। फिर भी, अपना दोषपूर्ण जीवन व्यतीत करके वह तब तक यहीं बना रहा जब तक उसका अंगभंग करके देश से बाहर न कर दिया गया अथवा मारकर इस्लामी नरक में न भेज दिया गया।

अब हुमायूँ को भारत से सुसमाचार सुनाई पड़ने लगे। १५४५ में शेरशाह की मृत्यु हो ही गई थी। शेरशाह का उत्तराधिकारी सलीमशाह भी अल्लाह को प्यारा हो गया था। अफगान सरदार सब बिखरे हुए थे। अब अपने को सबल मान नवम्बर, १५५४ में हुमायूँ भारत के लिए रवाना हुआ। अफगान से बिना कोई प्रतिरोध पाये फरवरी २४, १५५५ को हुमायूँ ने लाहौर में प्रवेश किया। हुमायूँ की सेना अब विभिन्न दिशाओं में बिखर गयी। अफगानों में साहस अब बिल्कुल नहीं था। दीयालपुर में कुछ अफगानों ने अवश्य सामना किया पर हार कर मुगलों की वासना-शान्ति के लिए अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को भी दे बैठे।

अन्य भयंकर युद्ध माछीवाड़ा में लड़ा गया। समीपस्थ हिन्दू गाँवों में आग लगा दी गई और उस अभूतपूर्व प्रकाश में यवन राक्षस एक-दूसरे के प्राण लेने लगे तथा हरम के पीछे एक-दूसरे की रोती-बिलखती स्त्रियों को खींचने लगे।

दिल्ली का शासक सिकन्दर अफगान अपनी सेना लेकर हुमायूं की प्रगति रोकने को रवाना हुआ। उसने सरहिन्द में अपना डेरा डाला। विरोधी सेनाएँ कई दिनों तक लड़ती-भिड़ती रहीं। अन्तिम युद्ध में अफगान हार गये और उनका नेता सिकन्दर भाग गया। अब हुमायूं के लिए दिल्ली तथा आगरे का मार्ग साफ हो गया। दिल्ली पर अधिकार करने के लिए सिकन्दर खाँ उजबेक के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी पहले ही भेज दी गई। हुमायूं ने स्वयं जुलाई २३, १५५५ को दिल्ली में प्रवेश किया तथा एक बार फिर भारत की राजधानी में दूसरे यवन लुटेरे के नाम पर शाही फरमान पढ़ा गया। जोरदार उत्सव मनाया गया। तभी यवन समूह ने अब मनमानी लूट तथा बेरोकटोक वासना से अपने को तृप्त किया। हुमायूं ने उस महल पर अधिकार कर लिया जो आज गलती से तथा बेसोचे-समझे उसका मकबरा कहा जाता है। यह महल दिल्ली के उन अनेक भवनों का एक भाग था जिनके एक ओर पुराना किला तथा दूसरी ओर अब्दुल रहीम खानखाना का मकबरा था। पुराने किले से उस हिन्दू महल तक, जिसे हुमायूं ने जीवित अवस्था में अपने अधिकार में कर लिया था और अब भी जहाँ उसकी कब्र है, सीधी तीन फलांग की दूरी थी। यह इमारत पुराने किले से भूगर्भ-मार्ग से उस स्थान के पीछे से जुड़ी हुई थी जहाँ आज दिल्ली पब्लिक स्कूल है।

जनवरी २१, १५५६ को सूर्यास्त की बेला में हुमायूं हिन्दुओं की एक प्राचीन इमारत की ऊपरी मंजिल पर था (दुष्ट शेरशाह ने इसे एक समय हड़प लिया था अतः इसे गलती से शेर मंडल कहा जाता है)। ४७ वर्षीय मदिरा मस्त हुमायूं के कदम लड़खड़ाये और वह एक सीढ़ी से सिर के बल धड़ाम नीचे आ गिरा। अचेतावस्था में तीन फलांग दूर उसे अपने घर ले जाया गया। जनवरी २१, १५५६ को यह कामुक दुष्ट, जिसने अपने अधम भाइयों तथा हत्यारे पिता के साथ हिन्दुस्तान को अपवित्र किया, लूटा तथा नष्ट किया, एक हिन्दू भवन में मर गया, जिसे उसने अपने निवास के लिए चुना था। हिन्दू शक्ति चक्र (गुम्फित त्रिभुजों का चिह्न जो भवानी माँ के भवनों में बड़ा प्रचलित है), जिसके ठीक बीचोंबीच उठा हुआ पाषाण-पुष्प होता है, आज भी तथाकथित हुमायूं के मकबरे तथा पास ही स्थित तथाकथित खानखाना के मकबरे के बाहरी भाग पर देखे जा सकते हैं।

हुमायूँ की लाश नीचे के केन्द्रीय कक्ष में लायी जाकर एक गड्ढे में बस यूँ ही डाल दी गयी। धरातल से कुछ ही इंच उठा हुआ मिट्टी का टीला इस मुस्लिम जालिम का अन्तिम स्थल है। इस हिन्दू महल की चक्करदार नीचे की मंजिल में घूमने वालों के पैर हुमायूँ के ऊपर पड़ते थे, अतः मकबरे के पास का हिस्सा एक दीवार खड़ी करके सदा के लिए बन्द कर दिया गया है। वास्तविक ऐतिहासिक शोध के लिए इस दीवार को गिरा देना चाहिए तथा इस हिन्दू महल के नीचे की मंजिल तक जनता की पहुँच होनी चाहिए।

हुमायूँ के मकबरे के नाम से विख्यात इस विशाल भवन के विषय में भूतपूर्व चिन्तन किस प्रकार समाप्त हो जाता है यह भारत सरकार के एक प्रकाशन (पृ० ३०५, मान्युमेण्ट्स एण्ड म्यूजियम्स, आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, १९६४) से स्पष्ट है : हुमायूँ "१५५६ में मरा तथा उसकी विधवा हमीदा बानू बेगम, उपनाम हाजी बेगम, ने उसका मकबरा उसकी मृत्यु के चौदह वर्ष पश्चात् १५६९ में बनवाना प्रारम्भ किया। फारसी भवन-निर्माताओं द्वारा प्रेरित मुगल ढंग का यह प्रथम उदाहरण है। निस्सन्देह हुमायूँ ने अपने निर्वासित काल में फारसी भवन-निर्माण कला के सिद्धान्त सीखे और यद्यपि कोई लेखा नहीं, पर लगता है उसी ने मकबरे की योजना बनायी। फारस के मीरक मिर्जा गियाथ को इस मकबरे के निर्माण के लिए हाजी बेगम ने नियुक्त किया था।"

उक्त गद्यांश के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इसमें विचारों का कितना गड़बड़ घोटाला है। प्रथम तो यही कि इस इमारत की शैली न मुगल है न फारसी। रेखांकन में तथाकथित हुमायूँ का मकबरा ताजमहल जैसा है। अतः हुमायूँ का मकबरा कहा जाने वाला अष्टकोणीय भवन भी हिन्दू इमारत है। विख्यात अंग्रेज भवन-निर्माता ई० बी० हवेल भी इस बात पर जोर देते हैं। दूसरे, पूछा जा सकता है कि हुमायूँ का मकबरा १९ वर्ष बाद क्यों बनना प्रारम्भ हुआ। इस बीच उसकी लाश का क्या हुआ ? तीसरे, हुमायूँ ने अपने ही मकबरे की योजना क्यों और कैसे बनायी ? अपनी इस आकस्मिक मृत्यु से पूर्व वह दिल्ली में मुश्किल से छह महीने रहा होगा। चौथे, उस रेगिस्तान में हुमायूँ को कहाँ से फारसी गृह-निर्माण कला के अध्ययन का अवसर मिला गया, जहाँ उसे खाना-पीना

तक तो नसीब नहीं होता था और जब वह अपने दिन डकैती और चोरी द्वारा काट रहा था ? उदाहरणार्थ, अकबर के जन्म के पश्चात् उसने जौहर नामक अपने भृत्य से कहा कि वह लूटे हुए २०० सिक्कों तथा रजत आभूषणों को उनके मालिकों को लौटा दे ताकि इस चोरी के कारण अल्लाह नवजात शिशु को शाप न दे दे। यदि उसकी पत्नी ने इस मकबरे का निर्माण किया तो इसके नक्शे, बिल तथा रसीदें कहाँ हैं ? स्पष्ट है कि मीरक मिर्जा गियाथ मात्र कब्र खोदने वाला था, जिसे हुमायूं को दफ़नाने का काम सौंपा गया था।

इस समाधि पर जाने वाले दर्शकों को इस धोखे से मूर्ख न बन जाना चाहिए कि मृतक हुमायूं पर बहुत विशाल इमारत बनायी गयी थी। ढोल पीट-पीटकर जो कहा जाता है कि हुमायूं का मकबरा बनाया गया, इसका अर्थ केवल इतना ही है कि उसके लिए मध्य कक्ष की निचली मंजिल में उसकी कब्र पर एक टीला बना दिया गया। प्र..चित दर्शक जल्दी में उतने ही अनजान 'गाइड' से नहीं पूछ पाता कि यदि वह हुमायूं का मकबरा है तो उसका महल कहाँ है ? क्या यह बात तर्कसंगत है कि हुमायूं की लाश के लिए एक महल बनाया गया जिसके चारों ओर खाई, विशाल तिहरी दीवारें, संलग्न भवन तथा बीसियों कमरे थे जबकि हजारों स्त्रियों तथा लड़कों के साथ अपनी अप्राकृतिक मैथुनयुक्त तथा कामुक जीवन बिताने के लिए उसे कहीं एक इंच भूमि तक न मिली ? यह रहस्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। ब्रिग्स द्वारा अनूदित फरिश्ता के इतिहास के दूसरे खण्ड के पृष्ठ १७१ पर लिखा गया है, "राजकुमार मुराद (अकबर का पुत्र) जो पहले शाहपुर में दफनाया गया, बाद में आगरा ले जाकर अपने बाबा हुमायूं के समीप दफनाया गया।" तब दिल्ली में हुमायूं के मकबरे के नाम से विख्यात इमारत भी क्या मुस्लिम इतिहास के धोखे का अन्य उदाहरण नहीं है ?

: ४ :

शेरशाह

भारत के कॉलेज तथा हाई स्कूल छात्रों से यह आशा की जाती है कि वे इतिहास की परीक्षाओं में शेरशाह द्वारा किये गये अनेक सुधारों तथा जनता की भलाई के लिए किये गये कृत्यों का लेखा-जोखा दें—उस शेरशाह का, जिसने प्रारम्भ में डाकुओं के समूह का शिष्यत्व ग्रहण किया और जो बाद में स्वयं पूर्ण लुटेरा बनकर हुमायूँ को हिन्दुस्तान से बाहर खदेड़ने तथा जहाँ-जहाँ गया भय तथा आतंक फैलाने में, सफल रहा।

यदि इस तथ्य को महसूस कर लिया जाय कि इस दुष्ट शेरशाह ने जीवनपर्यन्त क्या किया तथा उन छलियों द्वारा, जो अपने को इतिहासकार कहते हैं, उसकी की गयी प्रशंसा निरा धोखा है तो इतिहास के अध्यापक उसकी प्रशंसा के पुल बाँधना छोड़ देंगे। वे देखेंगे कि उसने हिन्दुस्तान पर कितने भयानक घाव किये।

दो मुस्लिम इतिहासकार वाकयात-ए-मुश्वकी (पांडु० पृ० १०३) तथा तारीख-ए-दाउदी (पांडु० पृ० २५३) लिखते हैं कि एक बार सारंगपुर तथा उज्जैन के बीच की यात्रा में शेरशाह ने अपने साथ चलते हुए मल्लू खाँ को अपने जीवन की प्रारम्भिक घटनाएँ सुनायी थीं। उसने बताया कि उसने अपनी जवानी में कितना श्रम किया था, किस प्रकार धनुष-बाण लेकर वह पन्द्रह कोस तक शिकार करने चला जाता था। ऐसे ही एक बार वह चोरों तथा लुटेरों के चक्कर में पड़कर उन्हीं के साथ हो लिया और चारों ओर गाँवों को लूटता रहा।

डाकुओं के साथ इस प्रारंभिक प्रशिक्षण ने उन सात वर्षों तक (१५३८-४५) शेरशाह को मनमानी लूट तथा बलात्कार के योग्य बना दिया जिन वर्षों में उसने मुगल दुराचारी हुमायूँ को बाहर खदेड़ उत्तर भारत पर

शासन किया।

शेरशाह का वास्तविक नाम फरीद था। उसका पिता हसन खाँ नैतिक संयम में तनिक भी विश्वास नहीं रखता था अतः उसके पास इस्लामी रीति द्वारा अनुमोदित चार प्रत्यक्ष पत्नियाँ तथा मुस्लिम परम्परा द्वारा स्वीकृत अनगिनत रखैलें थीं। उसकी सन्तति का तो छोर ही नहीं था। उसकी चार पत्नियों से उत्पन्न आठ पुत्रों के इतिहासानुमोदित नाम मिलते हैं: एक से फरीद खाँ तथा निजाम खाँ, दूसरी से अली और यूसुफ, तीसरी से खुर्रम तथा शादी खाँ तथा चौथी से सुलेमान और अहमद पैदा हुए। शायद और भी अनेक थे पर इतिहासकार मुख्य शरारतियों की ही चर्चा करते हैं क्योंकि उन चार में से प्रत्येक पत्नी से दो और केवल दो पुत्र ही होना एक मुस्लिम तक के लिए आश्चर्यजनक करतब था।

शेरशाह के अपराधपूर्ण जीवन का कारण उसके पूर्ववंश एवं कुल में व्याप्त नितान्त अव्यवस्था तथा कामवासना में खोजा जा सकता है। 'तारीख-ए-शेरशाही' का लेखक अब्बास खाँ लिखता है, "हसन खाँ फरीद तथा निजाम की माँ से न प्यार करता था, न उनकी चिन्ता; उसे तो अपनी दास कन्याओं में अभिरुचि थी।...अनेक बार हसन (पिता) तथा फरीद (उपनाम शेरशाह, पुत्र) के बीच तू-तू मैं-मैं हो जाती।"(पृ० ३१०, भाग V, इलियट एण्ड डाउसन)।

अपने पिता हसन से प्राप्त स्वल्प धन से फरीद को सन्तोष न था। स्पष्ट है कि फरीद ने सबसे पहले अपने घर में ही अपने पिता एवं भाइयों के विरुद्ध मोर्चा जमाया। इसकी तो आशा ही नहीं की जा सकती कि फरीद औरों को बख्श दे। उसने बिहार की परिवार-सम्पदा पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने की माँग की।

अपने पिता से तंग आकर फरीद खाँ जौनपुर के विदेशी यवन डाकू तथा सरदार के पास गया। वहाँ उसे इस्लामी स्वर्ग प्राप्त करने का एक ही प्रशिक्षण दिया जाता था—हिन्दू मूर्तियों को तोड़ना, मन्दिरों को मस्जिद में परिवर्तित करना, हिन्दू सम्पत्ति लूटना, हिन्दू ललनाओं को भगाना, बच्चों का अपहरण करना, क्रूरतापूर्वक लोगों का धर्म-परिवर्तन करना।

फरीद की इस बढ़ती गुण्डागर्दी की सूचना उसके पिता को प्राप्त हुई।

इस भय से कि एक दिन उसका पुत्र उस पर ही आक्रमण कर समस्त सम्पत्ति लूट लेगा, हसन खाँ ने यह उचित समझा कि उस हठी बालक को परम्परागत पारिवारिक दोनों परगने (जिले) देकर शान्त कर दिया जाय। ये जिले स्पष्टत: सहस्रार्जुन नामक हिन्दू तीर्थस्थल (जिसे अब गलती से ससराम कहते हैं) के आसपास हड़पी हुई हिन्दू सम्पत्ति थी। लगातार यवन आक्रमणों से नष्ट हुए इस क्षेत्र के सभी सुन्दर, महान् एवं विशाल मन्दिर तथा महल यवनों के अधिकार में चले गये थे। सहस्रार्जुन के आसपास के यही प्राचीन मंदिर तथा महल अपने पिता द्वारा सौंपे जाने के कारण अब फरीद की सम्पत्ति हो गये थे। इन्हीं हिन्दू मन्दिरों तथा महलों में शेरशाह तथा अन्य विदेशी लूटपाट करने वाले उसके पूर्वज दफनाये गये। अज्ञानी इतिहासकार एवं पुरातत्त्ववेत्ता अपने विश्वास में इतने प्रवंचित हुए हैं कि उन्होंने भारत तथा बिहार सरकारों को गलत ढंग से विश्वास दिलाया है कि इन भवनों का निर्माण मरते हुए पठानों ने अपने अथवा अपने पूर्वजों के मकबरों के रूप में किया।

हिन्दुओं से लूटी गयी यह नव सम्पत्ति फरीद का ऐसा ठिकाना बन गयी थी जहाँ से वह अधिकांश उत्तर भारत में भयानक डकैतियाँ डाला करता था। फरीद ने अपने पिता से इस अधिकार की माँग की कि उस क्षेत्र में रहने वाले हिन्दुओं के साथ वह जैसा चाहे व्यवहार करे। फरीद को ज्यों ही जागीर मिली उसकी क्रूर प्रकृति से लोगों को भय हुआ और "उसके कुछ सरदारों ने निश्चित धन-प्राप्ति के लिए लिखित समझौता चाहा" क्योंकि वे जानते थे कि शेरशाह लूटी हुई सम्पत्ति का बहुत कम मूल्य आँक कर उनके अधिकार का धन, सोना-चाँदी तथा अन्य सम्पत्ति ले लेगा। फरीद ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि "जब भुगतान का समय आएगा वह कोई अनुग्रह नहीं दिखाएगा तथा पूर्ण कठोरता के साथ मालगुजारी (इस प्रकार) वसूल करेगा।" (पृ० ३१३, भाग IV, इलियट एण्ड डाउसन) फरीद खाँ हिन्दुओं से अधिक-से-अधिक धन चूस लेना चाहता था ताकि उसकी सहायता से वह और भी अधिक मुस्लिम लुटेरों को एकत्र कर अन्य भू-भागों पर हमला कर सके। पर अनेक ऐसे थे जो उससे भयभीत नहीं हुए। अत: उसने अपने पिता के लुटेरों से कहा, "इन परगनों में कुछ ऐसे जमींदार हैं जो न तो कभी गवर्नर के सामने आये और न उन्होंने पूरी

मालगुजारी ही दी···उन्हें कैसे समाप्त किया जाय ?" अधिकारियों का उत्तर था, "सेना का अधिकांश मियाँ हसन के साथ है, कुछ दिन प्रतीक्षा कीजिए, वे वापस आ ही जाएँगे।" फरीद ने कहा कि वह और प्रतीक्षा नहीं कर सकता, वह उन्हें दण्ड देने का इच्छुक है।

हिन्दुस्तान में दिन-दहाड़े लूट-पाट करने का जीवन प्रारम्भ करके शेरशाह ने "सभी जागीरहीन (यानी चोरों, डाकुओं, उचक्कों) अफगानों तथा जातिवालों को कहला भेजा कि 'मैं तुम्हें खाना-कपड़ा दूँगा। इन विद्रोहियों से जो कुछ सामान या धन ले लो वह सब तुम्हारा है। मैं स्वयं तुम्हें घोड़े दूँगा। इसमें जो अच्छा काम कर दिखाएगा उसे मियाँ हसन (शेरशाह का पिता) से अच्छी जागीर दिलवाऊँगा।' यह सुनकर वे अतीव प्रसन्न हुए।" (पृष्ठ ३१४)।

पाजी शेरशाह बहुत बड़ा धूर्त था। उसने गुण्डों को अपने पिता की भूमि का लोभ देकर अपना क्षेत्र बढ़ाने की योजना बनायी थी। शेरशाह की धूर्तता का दूसरा ढंग था अपने दोनों जिला के सभी हिन्दुओं के साज-सामान समेत घोड़े छीनकर शेष हिन्दुओं को दास बनाने के लिए गुण्डे मुसलमानों को दे देना। "जिस सिपाही के पास अपना घोड़ा नहीं था उसे फरीद ने सवारी के लिए घोड़ा दिया और शीघ्र ही कुलीन व्यक्तियों (अर्थात् हिन्दुओं) के गाँवों को लूट उनके बच्चों, पशुओं तथा सम्पत्ति को ले आया।" (पृष्ठ ३१५)। शेरशाह का जीवन इस प्रकार हिन्दुस्तान की लूटपाट तथा बलात्कार से प्रारम्भ हुआ।" (यवन) सिपाहियों को वह समस्त सम्पत्ति तथा पशु दे देता किन्तु बच्चों तथा स्त्रियों को अपने पास रख लेता (स्पष्टतः स्त्रियों के साथ बलात्कार करने तथा बच्चों को इस्लाम का क्रूर एवं भयानक एजेण्ट बनाने) तथा मुखियाओं से कहला भेजता : "मुझे मेरे हक दो; यदि नहीं दोगे तो मैं तुम्हारी पत्नियों तथा बच्चों को बेच दूँगा और फिर तुम्हें कहीं स्थापित नहीं होने दूँगा।" इस प्रकार वह शेरशाह जिसे भारतीय इतिहासों में बहुत बड़ा उपकारी चित्रित किया जाता है बहुत बड़ा नीच, डाकू, लुटेरा, चोर, बलात्कारी, अपहरणकर्ता, हत्यारा तथा उचक्का ठहरता है। उसने यह भी कहा, "तुम जहाँ कहीं जाओ, वहीं मैं तुम्हारा पीछा करूँगा तथा तुम जिस गाँव में जाओगे वहाँ के मुखियाओं को मैं आज्ञा दूँगा कि वे तुम्हें पकड़कर मेरे हवाले कर दें अन्यथा

मैं उन पर भी आक्रमण करूँगा।"

बहुत से हिन्दुओं ने अब भी शेरशाह नाम के इस नव मुस्लिम डाकू, लुटेरे की बात नहीं मानी। उनसे निपटने के लिए उसने सब को युद्ध करने का आदेश दिया। उसका "आदेश था कि प्रत्येक ग्रामीण व्यक्ति उसके पास आये—घोड़े वाला घोड़े पर तथा बिना घोड़े वाला पैदल। आधे सिपाही उसने अपने लिए और शेष आधे उसने धन एकत्र करने पर नौकर रखे।" धन एकत्र करने की विधि लोगों को खूब कोड़े मारना तथा तंग करना था। बिन कासिम के ८०० वर्ष पूर्व आने से विदेशी गुण्डों ने भारत में जो तहलका मचा दिया था उस क्रूरता में शेरशाह ने और भी अभिवृद्धि कर दी। खूब तंग करके उसने हिन्दुओं का स्थानान्तरण करना प्रारम्भ कर दिया ताकि वे उसे हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट करने तथा उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित करने, समस्त भूभाग को इस्लाम में बदलने तथा यवन हरमों को भरने के लिए हिन्दू स्त्रियों के अपहरण में सहायता दे सकें। यह इतना भयानक तथा दुष्ट गिरोहबन्द डाकू था जिसने अपने दो जिलों के हिन्दुओं को इसलिए डराकर विस्थापित कर दिया कि वे शेष हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को डरा सकें।

"अपने अश्वारोहियों को उसने आज्ञा दी कि वे गाँवों के चारों ओर घूमें, सब आदमियों को मार दें तथा स्त्री-बच्चों को बन्दी बना लें, किसी को काश्त न करने दें तथा पहले की बोयी हुई फसल नष्ट कर दें, किसी को पड़ोस से कुछ न लाने दें और गाँव से बाहर कुछ न ले जाने दें। अपनी सेना को वह यह आदेश प्रतिदिन सुनाता था कि वे गाँवों पर छा जाएँ और किसी को भी बाहर न जाने दें। अपने पियादों को सभी जंगल काट डालने का आदेश देता। जब वह पूरी तरह कट जाता वह पुराने स्थान से आगे बढ़ जाता और अन्य गाँव का घेरा डालकर उस पर अधिकार कर लेता। यद्यपि विद्रोही बड़े विनम्र हो बहुत-सा धन देने को प्रस्तुत हो जाते पर फरीद खाँ उस धन को नहीं स्वीकारता और अपने लोगों से कहता, "यह रास्ता है…" (पृ० ३१६, भाग IV) इस प्रकार अधिक खेती करने के स्थान पर शेरशाह ने सभी वन काटकर, सभी आदमियों को कत्ल कर, स्त्रियों के साथ बलात्कार कर, कृषि भूमि जलाकर, अनेक डकैतियाँ डाल भारत को वीरान कर दिया।

"बहुत तड़के फरीद खाँ ने (हिन्दू) जमींदारों पर आक्रमण किया, सभी विद्रोहियों को मार दिया और उनके सभी स्त्री-बच्चों को बन्दी बनाकर अपने लोगों को आदेश दिया कि वह उन्हें चाहें बेच दें चाहे दास बना लें (अर्थात् हिन्दू स्त्रियों को अपने हरम में रख लें) तथा अन्य लोगों (यानी मुसलमानों) को लाकर गाँवों में बसा दें।" इस प्रकार अब्बास खाँ की तारीख-ए-शेरशाही में स्पष्ट लिखा हुआ है कि किस प्रकार शेरशाह ने धीरे-धीरे बिहार से सभी हिन्दुओं को निकाल दिया और विदेशी-मुसलमानों को बसा दिया तथा क्रमशः हिन्दुओं की स्त्रियों को पकड़कर तथा उनके बच्चों को बेचकर सभी हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन कर दिया।

फरीद की नयी सम्पत्ति ने उसके पिता तथा उसके हरम-भाइयों में ईर्ष्या उत्पन्न की। फरीद की एक सौतेली माँ ने हसन से शिकायत की, "फरीद और तुम्हारे खानदानी, जो मेरे शत्रु हैं, तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् हमारा अपमान करके हमें परगने से बाहर निकाल देंगे।" (पृष्ठ ३१८) शेरशाह के समीपतम सम्बन्धियों की राय तो उसके विषय में यही थी। फरीद के पिता मियाँ हसन ने यह देखकर कि उसका पुत्र पूरा डाकू बनता जा रहा है "तथा दो सिर वाले साँप की तरह अपने परिवार समेत सभी का भक्षण किए जा रहा है, फरीद में कोई दोष ढूँढ़कर उसे निकाल देना चाहा।" शेरशाह के भयानक शासन के प्रतिकूल शिकायतें उसे हटा देने के लिए पर्याप्त थीं। उसके दो परगने एक हिन्दू स्त्री के पुत्र सुलेमान को दे दिए गये और पिता ने शेरशाह को बहिष्कृत कर दिया।

उसका यह निष्कासन वरदान सिद्ध हुआ। उसने उत्तर भारत की इस्लामी शासन की राजधानी आगरा की राह पकड़ी। सुलतान इब्राहीम लोदी के एक डाकू सेवक दौलत खाँ ने उसे अपने यहाँ रख लिया। इस नये संरक्षक का कृपाभाजन बनकर शेरशाह ने अपने पिता की शिकायत करते हुए कहा कि मियाँ हसन अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल हैं अतः उससे छीने गए दोनों परगने उसे वापिस कर दिए जाएँ। जब दौलत खाँ ने अपनी सेनाएँ बिहार भेजने के लिए इब्राहीम लोदी की आज्ञा चाही तो उसने उचित ही कहा, "वह (शेरशाह) बहुत बुरा आदमी है जो अपने ही पिता के विरुद्ध शिकायतें करता है।"

कुछ समय पश्चात् मियाँ हसन मर गये। फरीद खाँ को सूचना भी

नहीं दी गयी क्योंकि वह मुजरिम था और समूचे परिवार का शत्रु था। उसके सौतेले भाइयों ने समस्त सम्पदा पर अधिकार कर लिया। शेरशाह का तो प्रशिक्षण दिन-दहाड़े डकैती तथा लूट-खसोट में हुआ था, अतः वह चुप नहीं बैठा। कुछ लुटेरों को साथ लेकर उसने बिहार में अपने पिता की सम्पदा पर झपट्टा मारा किन्तु दूसरे यवन लुटेरे द्वारा उसे मुँह की खानी पड़ी; उसका नाम मुहम्मद खाँ था जो शेरशाह के सौतेले भाइयों का मित्र था।

प्रत्येक मुसलमान लुटेरा दूसरे का शत्रु था। ऐसे ही मुहम्मद खाँ और बिहार खाँ थे। शेरशाह बहुत बड़ा दुष्ट था। वह जानता था कि एक-दूसरे को कैसे भिड़ाया जाता है। अतः उसने बिहार खाँ से सुलह कर ली। पानीपत के युद्ध में बाबर द्वारा इब्राहीम लोदी के कत्ल किए जाने के बाद बिहार खाँ ने अपने को बिहार का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। एक बार बिहार खाँ के साथ शिकार खेलते समय कहा जाता है कि उसने एक शेर को मार गिराया था, तभी से फरीद शेर खाँ कहा जाने लगा और उसके इस हत्यारे नाम के अनुरूप ही इतिहास में नरभक्षण तथा नारी अपहरण उसका कार्य रहा।

बिहार खाँ ने अब अपना नाम सुलतान मुहम्मद रख लिया और दुष्ट शेरशाह को नीचा दिखाने के लिए अपने पुत्र जलाल खाँ को नायब नियुक्त किया। यह जानकर शेरशाह ने अपना यह नया ओहदा छोड़कर अपने दोनों परगनों की राह पकड़ी। वह बड़ा बनने के फिराक में था लेकिन भाग्य ने उसे उन दोनों परगनों में भी नहीं घुसने दिया जिन्हें उसके पूर्वजों ने हिन्दुओं को मारकर तथा कत्ल करके हड़प लिया था।

शेरशाह को जब उसके मित्रों ने सलाह दी कि उसे अपने ही भाइयों की लूट-खसोट करना उचित नहीं है तो उसने एक डाकू के समान ही उत्तर दिया भारत रोह से भिन्न है। मुसलमान इसे बिना "बड़े, छोटे या वंश के" ध्यान के लूट सकते हैं। (पृष्ठ ३२७, भाग IV)।

शेरशाह का यह दृढ़ इरादा जानकर कि वह अपने भाइयों की तमाम जायदाद तथा हरम छीन लेगा उसके भाइयों को इस डाकू को दण्ड देने के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं रहा। जब वह सहसराम में था, शेरशाह की सेना को वाराणसी के समीप मुँह की खानी पड़ी।

षड्यन्त्री शेरशाह ने अब आगरा में सुलतान जुनेद नामक एक दरबारी की सहायता लेकर अपने भाइयों पर आक्रमण कर दिया। उसने अपने पुराने दो परगनों पर ही अधिकार नहीं कर लिया बल्कि चौंध तथा उन अनेक परगनों पर भी अधिकार कर लिया जो बादशाह के थे। सदा की भाँति उसने हिन्दुओं को बाहर निकाल दिया तथा विजित भू-खण्डों में अपने विदेशी अफगान सेवकों को बसा दिया। शेरशाह की सफलता ने समूचे भारत में बिखरे हुए विदेशी अफगानों को उसके ही झण्डे तले लाकर डाकुओं के रूप में संगठित किया। अब उसने सुलतान जुनेद की उधार ली हुई सेनाओं को यह कहकर वापिस कर दिया कि वह हिन्दुओं की स्त्रियों तथा धन की लूट कर सकते हैं। जुनेद की सहायता से शेरशाह ने यह जानने के लिए आगरे में बाबर की सेवा की कि मुगल लुटेरे हिन्दुस्तान को किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। बाबर को यह समझते देर न लगी कि शेरशाह की चालें सन्देह से भरी हुई हैं तथा उसके कार्य अपराधपूर्ण हैं। बाबर ने शेरशाह की गिरफ्तारी के आदेश दे दिये, किन्तु उसे पहले से ही पता लग गया था अतः वह बिहार भाग गया। ठीक इसी समय बिहार का सुलतान मुहम्मद मर गया। शेरशाह ने अपनी हिन्दू पत्नी को धमकाया कि वह अपने छोटे पुत्र जलाल खाँ को रेजेण्ट स्वीकार कर ले। अब उसने लोहनी मुसलमानों से सुलह कर ली और बंगाल के मुस्लिम शासक पर आक्रमण कर दिया। शेरशाह की विजय हुई। "धन, घोड़े, हाथी इत्यादि, जो उसके हाथ लगे शेरशाह ने लोहनियों को कुछ नहीं दिया और इस प्रकार वह बहुत धनवान हो गया।" (पृष्ठ ३३३, भाग IV) इससे स्पष्ट है कि वह कठोरता तथा प्रवंचना, क्रूरता तथा डाकूपन का मिश्रण था और फिर भी इस कमीने, पाशविक पाजी शेरशाह को भारतीय इतिहास में सिंह का रूप दे दिया गया है। शेरशाह के लोभ, कामुकता तथा विश्वासघात ने उसके प्रति इतनी घृणा जागृत कर दी थी कि एक बार शेरशाह जब स्वर्गीय सुलतान की हरम की निस्सहाय स्त्रियों को भ्रष्ट करने जा रहा था तो लोहनियों ने उसे मार डालने की योजना बनायी। किन्तु शेरशाह को न जाने कैसे समय पर सूचना मिल गयी और उसने यवन सूचकों को बिहार की हिन्दू भूमि प्रदान कर दी।

शेरशाह ने स्वयं जलाल खाँ को दी गयी एक रिपोर्ट में विदेशी मुसल-

मानों की परम्परागत क्रूरता तथा घात-प्रतिघात को अनुमोदित किया है। वह लिखता है, "तुम जानते हो कि लोहानी लोग सूरों से अधिक बलवान तथा शक्तिशाली हैं और अफगानों की यह नीति है कि यदि कोई भी व्यक्ति दूसरे से चार भाई अधिक रखता है तो उसे अपने पड़ोसी का अपमान करने तथा जान से मारने में तनिक भी नहीं सोचना पड़ता।" (पृष्ठ ३३५, भाग IV)।

युवक जलाल खाँ स्वयं एक लोहानी होने के नाते इस दुष्ट शेरशाह का कत्ल करना चाहता था। अपने को शेरशाह की शक्ति के समान न पाकर जलाल खाँ ने बंगाल के मुस्लिम बादशाह से संधि कर ली। इससे शेरशाह तथा बंगाल और बिहार की मुस्लिम सेनाएँ आमने-सामने आ गयीं। शेरशाह को घेरने वाली बंगाल की सेना तथा रक्षक शेरशाह के बीच बहुत दिनों तक संघर्ष होता रहा किन्तु बंगाली मुसलमानों की हार हुई और शेरशाह बिहार का मालिक बन गया। जलाल खाँ की सम्पत्ति तथा स्त्रियाँ उसके अधिकार में आ गये।

ठीक इसी समय चुनार दुर्ग के मुस्लिम सेनापति तेज खाँ तथा अनेक अपहृत स्त्रियों द्वारा उत्पन्न उसके पुत्रों में मनमुटाव हो गया। तेज खाँ अपने पुत्रों द्वारा ही मारा गया। उनमें से कुछ ने शेरशाह का अनुमोदन चाहा। उन्होंने डाकू शेरशाह तथा उसके ४०,००० चोरों को घुस आने दिया। एक बार प्रवेश पा जाने पर शेरशाह ने तेज खाँ की पटरानी लाड़ मलिका तथा अन्यों को खींचकर अपने हरम में डाल लिया, समूची सम्पत्ति जब्त कर ली तथा दुर्ग का मालिक बन बैठा। एक और गद्दार कुसैन नामक दुखियारी विधवा थी, जिसका पति नासिर खाँ मर चुका था। शेर खाँ ने उसके महल पर आक्रमण किया तथा उसे अपने हरम में डालकर उसके पति ने हिन्दू घरों से जिस ६० मन सोने को लूटा था, उस पर अधिकार कर लिया।

उधर सिकन्दर लोदी का पुत्र मुहम्मद, जो मुस्लिम गुण्डों को साथ ले देहातों की ओर घूम रहा था, १५२७ ई० में बिहार में घुसा। बिना किसी प्रतिरोध के शेरशाह ने समर्पण कर दिया। शेरशाह को यह आदेश देकर कि वह उससे मिले मुहम्मद जौनपुर की ओर बढ़ा। शेरशाह ने अनपेक्षित उत्तर दिया। मुहम्मद अब घूम पड़ा और उसने डाकू शेरशाह

के छिपने की जगह, सहसराम, की ओर कूंच किया। अब उसके पास अपनी सेना समेत मुहम्मद का साथ देने के सिवाय कोई विकल्प ही नहीं रहा। सम्मिलित सेना ने जौनपुर पर धावा बोला। मुगल दुर्गरक्षक भाग खड़े हुए। तब तक भारत के द्वितीय मुगल शासक के रूप में हुमायूं बाबर का उत्तराधिकारी बन चुका था। वह अपनी सेना लेकर आक्रामकों का मुकाबला करने चला। लखनऊ के समीप हुए युद्ध में शेरशाह धोखे से युद्ध विरत हो गया ताकि हुमायूँ तथा मुहम्मद की सेनाएँ आपस में लड़-कर समाप्त हो लें। मुहम्मद की हार हुई। उसने अपने शेष समय का बहुलाँश पटना में विषय-वासना की तृप्ति में तथा डाकू शेरशाह के विश्वासघात पर विचार करते हुए बिताया।

हुमायूँ ने शेरशाह के किले चुनार का घेरा डाला। शेरशाह ने लम्बी बातचीत चलाकर समय प्राप्त करने के लिए युद्ध रोके रखा। इसी बीच अनुशासनहीन शत्रुओं के यवन गुण्डों द्वारा हुमायूँ की अपनी राजधानी, दिल्ली खतरे में पड़ गयी। ज्योंही हुमायूं लौटा, अपने सभी शत्रुओं की हत्या करते हुए शेरशाह ने बिहार पर धावा बोला। उसकी घोषणा थी कि वह शेरशाह के व्यक्तिगत मुहम्मद तथा धर्मोन्मादी इस्लामिक उत्साह के साथ हिन्दू सम्पत्ति लूटने के लिए "सिपाही बनने से इनकार करने वाले प्रत्येक अफगान को जान से मार देगा।"

शेरशाह ने फतह मलिका नामक एक अन्य निस्सहाय यवन विधवा को भी अपने हरम में डाल लिया तथा उस "तीन सौ मन चमचमाते स्वर्ण" को भी हथिया लिया, जिसे उसके लुटेरे पिता तथा पति ने हिन्दू घरों से लूटा था।

मालवा सुलतान तथा अन्य विद्रोहियों के खतरों को दूर कर हुमायूँ शेरशाह को परास्त करने चला। चुनार दुर्ग का घेरा फिर डाला गया। हुमायूँ से सीधा संघर्ष का साहस न कर शेरशाह ने अपना पुराना विश्वास घात प्रयुक्त किया तथा सौदेबाजी में एक हिन्दू राज्य को विनष्ट कर दिया। पास ही एक हिन्दू सरदार का रोहतास नामक दुर्ग था। शेरशाह ने सर्व-प्रथम अपनी अगणित पत्नियों, रखैलों तथा बच्चों के लिए उससे शरण माँगी। भावुक हिन्दू मूर्ख बन गये और प्रवंचित हिन्दू वजीर ने उन्हें शरण दे दी। उनके साथ उनके बच्चे आये, फिर नौकर आये और बाद में

सन्देशवाहकों का नियमित आना-जाना होता रहा। इस व्यवस्था के लिए शेरशाह ने हिन्दू मन्त्री को रिश्वत के तौर पर छह मन स्वर्ण दिया क्योंकि वह जानता था कि एक बार दुर्ग में प्रवेश कर जाने पर वह उसे ही वापस नहीं छीन लेगा अपितु सम्पूर्ण हिन्दू कोष एवं उनकी स्त्रियों पर भी अधिकार कर लेगा। मूर्ख हिन्दुओं को यह कभी अनुभव नहीं हुआ कि मुस्लिम स्त्रियों तथा बच्चों के प्रति गलत दया दिखाने पर वे अपने धर्म, स्त्रियों, बच्चों तथा स्वातंत्र्य को ही विदेशी यवनों को समर्पण कर रहे थे। उन्होंने हिन्दू बनना भी स्वीकार कर लिया था क्योंकि भय तथा यन्त्रणाओं द्वारा इस्लाम में परिवर्तित होने से पूर्व समूची अफगान जाति हिन्दू ही तो थी। जिन्होंने हिन्दुओं से शरण माँगी यदि उन्हें हिन्दू धर्म में प्रवेश की अनुमति दे दी गयी होती तथा रामनाम उच्चारित कर लेने दिया जाता तो रोहतास का हिन्दू शासक रोहतास को ही नहीं बचा लेता अपितु एक नयी परम्परा बनाकर तथा एक नया मार्ग दिखाकर विदेशी यवन के विरुद्ध ही धारा बदल देता—क्रमशः उसे बाहर निकालकर अथवा समाप्त करके।

राजा हरिकृष्णराय अपने मन्त्री से चतुर था। उसने शेरशाह की चाल समझ ली थी किन्तु मन्त्री अपने 'वचन' की आन रखने के लिए दृढ़ता पकड़ गया। तारीख-ए-खाँ-जहान लोदी में वर्णन है कि किस प्रकार अपने सभी यवन पूर्वजों की भाँति कृतघ्न शेरशाह ने हिन्दू आतिथ्य का दुरुपयोग किया। उसने यवन स्त्रियों को बिठाकर कुछ पालकियाँ भेजीं। हिन्दू रक्षकों ने उन्हें देखा-भाला और जाने की आज्ञा दे दी। फिर मक्कार शेरशाह ने कहा कि उसे यह अच्छा नहीं लगता कि उसकी सभी स्त्रियों को उघाड़कर देखा जाय, अतः शेष पालकियों को बिना जाँच किए ही घुसने दिया जाय। उनके अन्दर सशस्त्र अफगान विश्वासघाती थे। जब सभी पालकियाँ अन्दर पहुँच गईं, बुर्काधारी अफगान सैनिकों ने चुपके से रात में निकलकर हिन्दू द्वार-रक्षक को वश में करके समीप ही तैयार खड़ी शेरशाह की सेना के लिए द्वार खोल दिया। विश्वासघाती यवन सेना ने हिन्दू सेना काट डाली, समस्त हिन्दू ललनाओं तथा सम्पत्ति को हथिया लिया एवं भीतर के सभी मन्दिर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिये।

इसी बीच चुनार मुगल सम्राट् हुमायूँ के हाथ से चला गया। जब

हुमायूँ बिहार में बढ़ा, शेरशाह ने उसकी अधीनता का स्वाँग भरा तथा अपनी शक्ति बंगाल के मुसलमानों की ओर मोड़ दी। बंगाल-प्राप्ति के अनन्तर हुमायूँ ने विलासिता में अपना समय नष्ट कर दिया। उसके आलस्य का लाभ उठाकर शेरशाह ने हिन्दुओं के तीर्थस्थल बनारस (वाराणसी) को हथिया लिया। इसके बाद तो सदा की भाँति ही भवनों द्वारा नरसंहार, लूटपाट तथा अपवित्रीकरण के कार्य हुए। दूसरे क्षेत्र में कन्नौज तथा सम्भल तक शेरशाह की सैन्य टुकड़ियों ने मुगल सैनिकों को पराजित कर मार डाला अथवा बाहर भगा दिया।

न चाहते हुए भी बेचारे हुमायूँ को अपने भाई हिन्दाल को कुचलने तथा शेरशाह की उत्कट लालसा नियंत्रित करने के लिए बंगाल के विलासमय जीवन को तिलांजली देनी पड़ी। ज्योंही वह रोहतास के समीप आया, शेरशाह ने पुनः लम्बी चलने वाली बातचीत शुरू कर दी। उसने बाह्यतः तो उसके प्रति अपनी अधीनता प्रदर्शित की पर इस कृतघ्नता के पीछे उसका उद्देश्य था कि समय प्राप्त करके उसे लाभ ही रहेगा क्योंकि इस बीच सतत परिवर्तनशील यवन स्वामिभक्ति के कारण हुमायूँ चल देगा। मक्कार शेरशाह ने सुझाव दिया कि क्योंकि हुमायूँ बंगाल को छोड़ चला था अतः उस प्रान्त को शेरशाह के निरीक्षण पर छोड़ दिया जाय (यानी इच्छानुसार लूटने के लिए) और बदले में शेरशाह हुमायूँ का आधिपत्य स्वीकार कर लेगा। पर परोक्षतः वह सभी अफगानों तथा परिवर्तित हिन्दुओं को इधर-उधर भेजता रहा।

हुमायूँ के लिए विनाशकारी निर्णायक युद्ध १५३८ ई०के झूसा(चौंसा) तथा बक्सर के बीच शातय गाँव में हुआ। दोनों ही शिविर गंगा के एक ही ओर थे। उन्हें विलग करने वाला एक जल स्रोत मात्र था। शेरशाह के आक्रमण के समक्ष मुगल न टिक सके। हुमायूँ अकेला ही आगरे की ओर भागा तथा उसका सम्पूर्ण हरम शेरशाह के हाथ लग गया। अफगानों के हाथ जो हरम लगा उसमें से अपनी वासना शान्ति के लिए स्त्रियों को अवश्य लिया। इस भय से कि कहीं उसके सैनिक उन ४,००० स्त्रियों के साथ बलात्कार में ही समाप्त न हो जाएँ, शेरशाह ने आज्ञा दी कि रात होने तक बन्दी स्त्रियों को शेरशाह के शिविर को लौटा दिया जाय।

इस विजय के पश्चात्, उस डाकू तथा स्त्रियों को भ्रष्ट करने वाले ने जिसे शेर खाँ उपनाम दिया गया था, अपने को बादशाह शेरशाह घोषित कर दिया। एक सप्ताह तक मनाये जाने वाले उत्सव का अर्थ सभी मुसलमानों द्वारा लूटपाट, मद्यपान तथा भोग-विलास था।

इसके पश्चात् तो कार्य उलट गये। शेरशाह हुमायूँ का पीछा करने लगा। शेरशाह ने अपनी सैनिक टुकड़ियाँ हुमायूँ के शेष सैनिकों पर अधिकार करने भेजीं। इन दिनों उज्जैन, मांडू तथा सारंगपुर मल्लू खाँ उपनाम कादिरशाह के नियंत्रण में थे। रायसेन तथा चंदेरी पर पूरनमल का अधिकार था। महेश्वर भोपाल का राजा था।

कुछ भी भला करने के स्थान पर शेरशाह ने दिल्ली तथा आगरे को उजाड़ देने का आदेश दिया (पृ० ३७८, भाग VI)। उसने आज्ञा दी कि खानखानाह को, जिसे बन्दी बनाने के समय से ही प्रतिदिन आधे सेर बिना पिसे जौ पर मुंगेर में रखा गया था, कत्ल कर दिया जाय। लूटमार करने के लिए शेरशाह ने अपने पुत्र कुतुब खाँ को भेजा। पर चौंधा नामक स्थान पर मुगल सेना ने कुतुब खाँ की हत्या कर दी।

महान् हिन्दू सरदार महारथी, जिसने बिहार में मुस्लिम लूट-खसोट, क्रोध तथा विनाश के होते हुए भी हिन्दू देशभक्ति के ध्वज को ऊँचा रखा, उन क्षेत्रों पर लगातार आक्रमण करता रहा, जिसे शेरशाह ने हिन्दुओं से हड़प लिया था। इससे शेरशाह का जीवन दूभर हो गया था। अन्त में, महारथी हिन्दुत्व की रक्षा करते हुए खवास खाँ (शेरशाह का नायब) से युद्ध करते हुए स्वर्गवासी हुआ।

सिंहासन अधिकार में रखने के अपने अन्तिम प्रयत्न में हुमायूँ ने कन्नौज के पड़ोस में अपनी सेना भेजी। शेरशाह ने समीप ही शिविर डाल दिया और अपने धावा करने वाले सैनिकों को मुगल सेना के लिए जाने वाली रसद पकड़ लेने के लिए लगा दिया। १५४० ई० में होने वाले इस युद्ध में हुमायूँ पुनः पराजित हो आगरे की ओर भाग गया। वहाँ भी शेरशाह की सेना के जा पहुँचने पर वह लाहौर की ओर चला गया। शेरशाह हुमायूँ को पकड़कर उसके प्राण लेना चाहता था, अतः उसने अपने सैनिकों को हुमायूँ को बन्दी बनाने में असफल रहने पर बहुत डाँटा। हर स्थान पर पीछा किये जाने पर हुमायूँ अन्त में हिन्दुस्तान से बाहर चला गया।

सिन्ध के मरुस्थल में होकर भागने पर उसे बहुत कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। अब शेरशाह ने हिन्दुस्तान के सिंहासन पर उसके स्थान पर महान् लुटेरे के रूप में अधिकार कर लिया तथा जिन भूखण्डों को जीता था वहाँ से हिन्दुओं को निष्कासित कर यवनों को बसाने लगा।

शेरशाह की सेनाएँ अब रामगंगा के तट पर बसे सम्भल के पूर्व में स्थित एक छोटे से नगर कखमोर, गंगा-सिन्धु के मैदान, मालवा, उज्जैन तथा ग्वालियर के निवासियों को पीड़ित करने लगीं। शेरशाह ने इन समस्त भूखण्डों को अपने भृत्यों में बाँट दिया था। "रोह से आने वाले अपने अनेक खानदानियों को उसने उनकी आशा से कहीं अधिक धन दिया।"

मुस्लिम इतिहासकारों ने अपने इतिहास ग्रंथों में जो बातें गढ़ी हैं उनका एक ज्वलन्त उदाहरण तारीख-ए-शेरशाही में अब्बास खाँ की यह घोषणा है कि "रोहतास का चयन कर उसने वहाँ एक दुर्ग बनवाया जो आज भी खड़ा है।" हम ऊपर लिख चुके हैं कि शेरशाह ने मूर्ख हिन्दुओं की भावुकता का लाभ उठाकर किस प्रकार रोहतास पर अधिकार कर लिया था। फिर भी एक बेहया मुसलमान इतिहासकार यह लिखने का साहस करता है कि रोहतास दुर्ग शेरशाह द्वारा निर्मित हुआ। मुसलमानों की इस कपटपूर्ण आदत ने भारतीयों को यह सोचने के लिए गुमराह कर दिया है कि दिल्ली तथा आगरे के लालकिले, फतहपुर सीकरी तथा अन्य इमारतें एवं नगर, यद्यपि सभी प्राचीन हिन्दू मूल के हैं, विदेशी यवन आक्रमणकारियों द्वारा पुनर्निमित हुए।

शेरशाह ने गक्खरों के भूभाग को बुरी तरह लूटा। इतना ही नहीं, हिन्दू गक्खर बादशाह सारंग की युवा कन्या का अपहरण कर खवास खाँ को बलात्कार के लिए सौंप दिया गया।

बंगाल पहुँचकर शेरशाह ने मुस्लिम शासक बेरक को बन्दी बनाकर पीड़ित करने की आज्ञा दी। उसका दोष यह था कि उसने सुलतान महमूद की कन्या से विवाह कर लिया था। इससे प्रकट होता है कि उसे विधवा बनाकर उसने उसे अपने हरम में डाल लिया।

तत्पश्चात् शेरशाह मांडू की ओर चला ताकि "बदला ले सके कि कुतुब खाँ (शेरशाह का नायब) को, कुछ वर्ष पूर्व हुमायूँ की सेना ने युद्ध में मार दिया था, सहायता देने में वहाँ का शासक पीछे कैसे रहा।" मांडू जाते

समय शेरशाह की उत्पाती सेना ग्वालियर पहुँची। उसकी क्रूरताओं के भय से मुगल रक्षकों ने चुपचाप दुर्ग का समर्पण कर दिया।

यवन सेनाओं ने रायसेन के हिन्दू राजा पूरनमल की प्रजा पर अभूतपूर्व अत्याचार करके उसे मजबूर कर दिया कि वह जंगली तथा डाकू शेरशाह की अधीनता स्वीकार करे। अपने पति की सुरक्षा के प्रति चिंतित उसकी एकनिष्ठ, स्वामिभक्त, सुन्दर पत्नी रत्नावली अपने प्रिय हिन्दू पति की वापसी तक दुर्ग के बुर्ज पर बैठे रहने का निश्चय कर उठी। उसे तभी वापस जाने दिया जब उसने शेरशाह की सेवा के लिए ६,००० अश्व देने तथा अपने अनुज चतुर्भुज को प्रतिभू के रूप में छोड़ने की सहमति दी।

उज्जैन में शेरशाह कालियदेह महल नामक सुन्दर हिन्दू दुर्ग में ठहरा। मल्लू खाँ के राज्य में आतंक मचाकर तथा झूठे वायदे करके शेरशाह ने मांडू के शासक को अपने शिविर में प्रलोभित कर लिया। आने पर मल्लू खाँ पर पूरी निगाह रखी गयी और बन्दी के रूप में कालपी ले जाने के लिए आदेशित किया। शेरशाह की इच्छा थी कि इसकी सभी सम्पत्ति तथा स्त्रियों पर अधिकार कर लिया जाय। जब ऊँटों तथा गाड़ियों का काफिला जो उसे बन्दी रूप में ले जाने के लिए उसके शिविर पर पहुँचा, मल्लू खाँ ने "उन्हें बड़ी शक्तिशाली शराब दी जिससे वे नशे में चूर हो बेहोश हो गये।" तभी मल्लू अपना परिवार तथा धन लेकर गुजरात भाग गया ताकि शेरशाह के पंजे से सुरक्षित रहे। इस अवसर पर शेरशाह ने मांडू, धार, उज्जैन की जो लूटपाट की तथा मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करते समय विनाश का जो ताण्डव नृत्य किया उसकी उपमा नहीं।

अहमद यादगार नामक एक मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि इस संघर्ष के बीच चंदेरी के राजा के विरुद्ध चढ़ाई करने के लिए वली दाद खाँ के आधीन सेना भेजी गयी। राजा के भतीजे को अपनी ओर मिला लिया गया और उसकी देशद्रोहिता के कारण राज्य जीत लिया गया। शेरशाह की फौज के हाथ उसके हाथी, घोड़े तथा अन्य सम्पत्ति लगी। राजा की सुन्दर दुहिता के साथ शेरशाह ने बलात्कार किया।

मांडू तक अपना भय तथा आतंक जमाकर शेरशाह आगरा लौटा और बंगाल पर आक्रमण करने चल दिया। पर उसे ज्वर आ गया। ठीक

होने पर शेरशाह ने अपना इरादा ही बदल दिया। बहुत दिनों से रायसेन के हिन्दू सम्राट् पूरनमल की सुगृहणी रत्नावली का सतीत्व भ्रष्ट करना चाहता था। शेरशाह ने रायसेन को घेर लिया। पूरनमल की वीर हिन्दू सेना ने उन घिराव करने वाले अफगान लुटेरों को इस सफलतापूर्वक काट डाला कि वे (अफगान) उससे बहुत डर गये। दुर्ग पर अधिकार करने तथा हिन्दू दुर्ग-रक्षकों को पराजित न कर सकने पर शेरशाह ने वही पुरानी म्लेच्छ युक्तियाँ अपनायीं—हिन्दू जनता को कष्ट देना, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार करना, उनकी फसल तथा घरों को जला देना एवं उनके बच्चों को बहुत कष्ट देना। इन रोंगटे खड़े कर देने वाले अत्याचारों से द्रवित हो पूरनमल ने दुर्ग खाली कर देने का वचन दिया। इस शर्त पर कि उसके परिवार तथा दुर्ग-रक्षकों को सुरक्षापूर्वक चले जाने दिया जायेगा, शेरशाह ने अपने भृत्य कुतुब खाँ को आदेश दिया कि वह पूरनमल के परिवार एवं कोष को बिना छुए चले जाने देने के लिए कुरान की शपथ खा ले। उन्हें एक विशेष शिविर में ठहरा दिया गया। पर स्वाभाविक विश्वासघात के अनुसार "रात में इंसा खाँ हबीब को आदेश दिया गया कि एक निश्चित स्थान पर हाथियों सहित वह अपनी सेना एकत्र करे। हसीब खाँ को उसने चुपके से आदेश दिया कि वह पूरनमल पर निगाह रखे कि वह भागने न पाये और किसी भी व्यक्ति से इस विषय में बात न करे।" (पृ० ४०२, भाग IV)। पूरनमल ने यह जानकर कि सदा की भाँति मुसलमानों ने कुरान की शपथ ताक में रखकर लोगों को जान से मारने तथा हिन्दू स्त्रियों को भ्रष्ट करने की ठान ली है "अपनी प्राणप्रिय पत्नी रत्नावली के शिविर में जा, जो हिन्दी भजनों को अत्यन्त माधुर्य के साथ गाती थी, उसका सिर काट दिया। (अपने अनुयायियों के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए) तथा बाहर आकर अपने साथियों से कहा, मैंने यह किया है, क्या आप भी अपनी पत्नियों एवं परिवारों का यही करेंगे? जबकि हिन्दू लोग अपनी स्त्रियों एवं पारिवारिक सदस्यों को समाप्त करने में लगे थे (मुसलमानों के हाथों बलात्कार एवं अप्राकृतिक मैथुन से बचने के लिए) चारों ओर अफगान हिन्दुओं के प्राण ले रहे थे। पूरनमल एवं उसके साथी महान् वीरता एवं शौर्य प्रदर्शित कर (विश्वासघात के कारण मुट्ठी भर संख्या में थे) सब-के-सब मारे गये। उनकी कुछ बची हुई पत्नियाँ एवं

पारिवारिक सदस्य पकड़ लिये गये। पूरनमल की एक कन्या एवं उसके अग्रज के तीन पुत्र जीवित पकड़ लिये गये। शेष को मार डाला गया। शेरशाह ने पूरनमल की कन्या को कुछ घुमक्कड़ (यवन) भाटों को दे दिया ताकि वे उसे बाजारों में नचायें तथा बच्चों को नपुंसक बना देने का आदेश दे दिया गया ताकि अत्याचारियों(यानी हिन्दुओं)की वंश-वृद्धि न हो पाये। रायसेन के दुर्ग को उसने मुंशी शाहबाज खाँ को दे दिया।" (अब्बास खाँ की तारीख-ए-शेरशाही, पृ० ४०२-४०३, भाग IV, इलियट व डाउसन)। इस प्रकार एक और गौरवशाली हिन्दू राज्य विदेशी म्लेच्छ द्वारा विनष्ट कर दिया गया। शेरशाह को सबसे बड़ा क्लेश उस बात से हुआ कि उसकी रत्नावली का सतीत्व विनष्ट करने की इच्छा पूर्ण नहीं हुई।

राजपूत सरदार वासुदेव तथा राजकुँवर राजपूत जाति के विरुद्ध भी शेरशाह ने ऐसे ही घोर क्रूर कृत्य किये। शेरशाह के कुछ दरबारियों ने उसे दक्षिण भारत पर आक्रमण करने की सलाह दी। किन्तु शेरशाह दक्षिण जाने से पूर्व उत्तर भारत से हिन्दू धर्म समूल विनष्ट करना चाहता था। उसने उससे कहा, "तुमने बिल्कुल उचित सलाह दी है किन्तु मेरे विचार में तो यह आया है कि सुलतान इब्राहीम (लोदी) के समय से इन मूर्ति-पूजकों (यानी हिन्दू) जमींदारों ने इस्लाम के देश (अर्थात् हिन्दुस्तान) को काफिरों (अर्थात् हिन्दुओं) से भर दिया है तथा मसजिदों एवं हमारी (अर्थात् विदेशी, शरारती, बलात्कारी मुसलमान) इमारतों को ढहा कर (अर्थात् मन्दिरों पर अधिकार कर) उनमें मूर्तियाँ रख दी हैं (अर्थात् मस्जिदों में परिवर्तित अपने मन्दिरों पर पुनः दावा किया है) तथा दिल्ली एवं मालवा प्रान्त पर अधिकार कर लिया है। इन काफिरों से जब तक मैं देश को साफ नहीं कर देता (अर्थात् हिन्दू धर्म का विनाश), मैं अन्य किसी ओर नहीं जाऊँगा···सर्वप्रथम मैं इस पतित (यवन इतिहासों में हिन्दुओं के लिए प्रयुक्त प्रिय विशेषण) मालदेव (जोधपुर का हिन्दू शासक जो यवन विलासिता एवं क्रूरता के समक्ष नहीं झुका) को निर्मूल करूँगा।" (पृ० ४०३-४०४)।

शेरशाह के म्लेच्छ लुटेरे, इतने अधिक "कि श्रेष्ठ गणक भी अपनी समस्त गणना, विचार एवं चिन्तन के बावजूद भी, उन्हें गिनने में अक्षम थे" नागोर, अजमेर तथा जोधपुर को विनष्ट करने आगरे से चले।

उसने फतहपुर सीकरी में पड़ाव डाला। पाठकों को फतहपुर सीकरी (१५४३-४४ ई०) के इस उल्लेख पर ध्यान देना चाहिए, जिसका उस तिथि से ३० वर्ष पूर्व जिक्र हो रहा है, जिस तिथि को झूठे ही अकबर द्वारा इमारतों के निर्माण का प्रारम्भकर्ता कहा जाता है। शेरशाह अब राजपूत प्रदेश में था। यवन आक्रमणकर्ता से फतहपुर सीकरी, प्राचीन राजपूत नगर, को तो बचाना ही था। जयचन्देल तथा गोहा नामक दो वीर राजपूत सरदार "बाहर आये, जिन्होंने अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन कर शेरशाह पर आक्रमण किया। हिन्दू सेना द्वारा यवन सेना का कुछ भाग समाप्त हो गया।" यद्यपि हिन्दू बहुत कम तथा शेरशाह के सैनिक ३,००,००० से भी अधिक थे। इससे पूर्व कि मुसलमान बलात्कार एवं विनाश द्वारा आतंक फैलाकर हिन्दुओं को निराश एवं दुःखी कर पाएँ, उनपर आक्रमण कर दिया गया। अफगानों की कायरता एकदम स्पष्ट हो गयी। उनमें से एक "शेरशाह के समीप आकर उसे अपनी बोली में गालियाँ देकर कहने लगा, 'चलिए, काफिर (अर्थात् हिन्दू) तुम्हारी सेना समाप्त किए दे रहे हैं'।" शीघ्र ही समाचार फैल गया कि दोनों हिन्दू वीर घेर लिये गये, पराजित कर दिये गये तथा कत्ल कर दिये गये। अपने भाग्य की सराहना करते हुए शेरशाह ने कहा, "एक बाजरे के दाने के लिए मैंने दिल्ली की सल्तनत खो दी होती।" भयभीत शेरशाह शीघ्र ही आगरा लौट गया जबकि उसका अनुचर खवास खाँ जोधपुर तथा मारवाड़ के निकट कहर ढाने लगा। जहाँ कहीं मुसलमान कहते हों कि उन्होंने 'नींव डाली' वहाँ उसका यही अर्थ लेना चाहिए कि उन्होंने हिन्दू नगर के नाम को मुस्लिम नाम में परिवर्तित कर दिया।

अब्बास खाँ की वह मनगढ़न्त कहानी, जिसे तारीख-ए-शेरशाही कहते हैं, का दावा है कि शेरशाह चित्तौड़, कछवाहा तथा रणथम्भोर की ओर बढ़ा तथा इन सभी ने उसे (बिना लड़े) आत्मसर्मण कर दिया। यह सफेद झूठ है क्योंकि इसके बाद मुसलमानों के आतंक एवं क्रूरताओं का मर्मभेदी वर्णन नहीं है।

शेरशाह के दक्षिण भारत पर आक्रमण न करने का मुख्य कारण उत्तर में अनेक हिन्दू-मुस्लिम सरदारों का उसके शत्रु होना था जो उसे फिर दक्षिण से न आने देते और उसके राज्य पर अधिकार कर लेते।

उत्तर में कालिंजर हिन्दुओं का बहुत बड़ा गढ़ था। इसका वीर हिन्दू राजा कीरतसिंह था। सरहिन्द के एक अन्य बहादुर हिन्दू शासक भगवन्त ने एक यवन लुटेरे आलम खाँ पर चढ़ाई कर मार डाला। शेरशाह ने कालिंजर नगर का घेरा डाल दिया। घेरा डालने वाले अफगानों ने खोदी हुई मिट्टी का टीला बना लिया और उसपर चढ़कर कालिंजर के घरों तथा सड़कों पर हिन्दुओं पर बाणों तथा बन्दूकों से हमला किया। शेरशाह का लक्ष्य तो विलासिता था। अब्बास खाँ की तारीख-ए-शेरशाही में लिखा है : "कीरतसिंह की स्त्रियों में एक पातर बालिका थी। शेरशाह ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा सुनी थी; वह उसे प्राप्त करने की ही सोचता रहा क्योंकि उसे भय था कि 'ऐसा न हो कि वह जौहर कर ले'।"

हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का सभी म्लेच्छों का उद्देश्य हिन्दुत्व को समाप्त करना तथा हिन्दुस्तान को एक यवन देश में परिवर्तित कर देना था, जिसमें उन्हें कम सफलता नहीं मिली, यह कालिंजर के बाहर शिविर में नाश्ता करते समय शेरशाह के शेख निजाम के एक कथन से स्पष्ट है : "इन काफिरों के खिलाफ जिहाद छेड़ने के समान और कुछ नहीं है (अर्थात् यवनों द्वारा हिन्दू लोगों का कत्ल एवं हिन्दू महिलाओं का अपहरण)। यदि आप मर जाते हैं तो शहीद कहलाएँगे, यदि जीवित रहते हैं तो गाजी।" (पृ० ४०८)। इससे स्पष्ट है कि भारत में मुसलमानों द्वारा किये गये अपहरण उनके तथाकथित सन्तों, काजियों, उलेमाओं एवं मुल्लाओं द्वारा उकसाये गये थे।

शेख के शब्दों से उत्तेजित हो शेरशाह ने उठकर दरया खाँ को गोले लाने के लिए आदेश दिया तथा टीले के ऊपर चढ़कर स्वयं अनेक बाण छोड़ते हुए चिल्लाया : "दरया खाँ आता नहीं; वह बहुत देर लगा रहा है।" जब वे ले आये गये, शेरशाह टीले से नीचे उतरकर गोलों के समीप ही खड़ा हो गया। जब उसके लोग उन्हें चला रहे थे नगर द्वार से आये एक गोले ने शेरशाह के समीप ही एक ढेर में आग लगा दी, जिससे उनमें विस्फोट हो गया। गोलों का वह ढेर एकदम फट गया तथा धड़ाके के साथ उनके अन्दर की बारूद वेग से बाहर निकली। अपने हाथों से अपने विकराल चेहरे को दबाये हुए बुरी तरह जला हुआ नंग-धड़ंगा शेरशाह चीत्कार करते हुए अपने शिविर की ओर लड़खड़ाते हुए भागा। वह निर्दयी

डाकू शेरशाह, जिसने अपना समूचा जीवन विश्वासघातों एवं व्यभिचारों में व्यतीत किया, जीवित ही भुन गया। उसका चेहरा अत्यंत विकृत हो गया था। वह ऐंठने और बुरी तरह चिल्लाने लगा। पर उस दर्द में भी उसकी इच्छा थी कि हिन्दुओं को मार डाला जाय। कहा जाता है कि उसके अनुयायी नगर पर टिड्डी दल की भाँति टूट पड़े और सभी हिन्दुओं को तलवार के घाट उतार दिया। अपने ७० शूरवीर हिन्दू योद्धाओं के साथ अन्त तक लड़ता हुआ राजा कीरतसिंह दूसरी सुबह उत्तेजित किया गया और पकड़ लिया गया। इससे पूर्व मई, १५४५ की भरी दोपहरी में गोलों के विस्फोट के तुरंत पश्चात् शेरशाह का शरीर भुनकर समाप्त हो गया था। इस प्रकार अफगान लुटेरे तथा डाकू शेरशाह, जो अपने कुकृत्यों के कारण मानवता पर बहुत बड़ा कलंक है, जीवन का समुचित अन्त हुआ था।

पाठकों ने ध्यान दिया होगा कि शेरशाह के इस सप्तवर्षीय राज्य में लोगों के प्राण लिये, भवनों को नष्ट किया, जंगलों को काट डाला तथा महिलाओं के साथ बलात्कार किया। और मजा यह है कि इतने पर भी प्रवंचक यवन इतिहासकार शेरशाह के काल्पनिक न्याय एवं औदार्य विषयक झूठों का उल्लेख करते हैं। कुछ उदाहरण देखिए। अब्बास खाँ नामक धूर्त अपने तारीख-ए-शेरशाही (पृ० ४१७, भाग IV) में लिखता है: "उसने सर्वत्र न्यायालय खोले तथा अपने ही जीवन तक के लिए नहीं, अपनी मृत्यु के पश्चात् तक के लिए अनेक धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की। हर मार्ग पर यात्रियों की सुविधा के लिए हर दो कोस पर उसने एक सराय बनायी...तथा एक सड़क तो उसने पंजाब से बंगाल तक बनायी।" शेरशाह द्वारा बनवायी गयी ग्रैंड ट्रंक रोड के विषय में यह इतना बड़ा झूठ है कि कोई इस निराधार दावे की सत्यता जानने की चिन्ता ही नहीं करता)। एक अन्य मार्ग उसने आगरे से बुरहानपुर तक बनाया। एक सड़क उसने आगरे से जोधपुर तथा चित्तौड़ तक (भी) बनायी तथा दूसरी सरायों समेत लाहौर से मुल्तान तक। समग्रतः उसने विभिन्न मार्गों पर १७०० सरायों का निर्माण किया तथा प्रत्येक सराय में हिन्दुओं तथा मुसलमानों—दोनों के लिए अलग-अलग निवास-स्थल बनाये। प्रत्येक सराय में हिन्दुओं का सत्कार करने, उन्हें शीतल-उष्ण जल प्रदान करने तथा भोजन-बिस्तरे देने के लिए उसने ब्राह्मण रख छोड़े थे। शेरशाह ने

दिल्ली को नष्ट करके फिर से बनाया। कनौज को भी इसने इसी प्रकार नये रूप में बसाया। उसने बोहन कुण्डल तथा शेर दुर्ग भी बनाये।"

यह पंचवर्षीय योजना (क्योंकि हुमायूं ने भारत १५४० में छोड़ा और तभी से शेरशाह अपनी मृत्यु (१५४५) पर्यन्त भारत में सबसे बड़ा लुटेरा रहा) भारत सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं को पीछे छोड़ देती है तथा रुड़की के अभियंताओं को लज्जित करती है।

एक और नीच झूठा, वाकयात-ए मुश्तकी का लेखक कहता है: "जिस किसी को भोजन की इच्छा होती शेरशाह की रसोई में जाता और प्राप्त करता। उसके शासनकाल में देश में इतनी सुरक्षा थी कि चोरी-डकैती तथा लूटपाट का तो नाम भी नहीं था। गौड़ देश से लेकर अपनी राज्यसीमा तक, प्रत्येक दिशा में, हर कोस पर उसने सरायें तथा कयाम-गाह बनवाये। गौड़ प्रदेश से अवध प्रान्त तक एक सड़क का निर्माण किया गया जिसके किनारे सरायें, बगीचे तथा छायायुक्त फलदार वृक्ष थे। बगीचों तथा सरायों समेत दूसरी सड़क उसने बनारस से बुरहानपुर तक तथा अन्य बगीचों-सरायों समेत आगरा से जोधपुर तक बनाई। एक अन्य सड़क बयाना से जनौपुर एवं अजमेर तक बनाई। कुल मिलाकर १७०० सरायें थीं और प्रत्येक सराय पर अश्वयुग्म तैयार रहता था फलतः एक दिन में ३०० कोस तक समाचार पहुँच जाता (कौन से समाचार-पत्र थे जो इसे छापते थे)। हर दिशा से प्रार्थना-पत्र आते तथा उसके उत्तर भेज दिये जाते।" (पृष्ठ ५४६-५५१, भाग IV)।

अपने को इतिहासकार कहने वाले नीचों द्वारा ऐसी अगणित झूठें लिखी गई हैं। हमारे विद्वानों को इस चाल में न फँसकर शेरशाह के विषय में अपने प्रभावपूर्ण विद्यार्थियों द्वारा इन अधम झूठों की आवृत्ति कराकर उनकी प्रज्ञा का अपमान नहीं करना चाहिये। सत्य की माँग है कि शेरशाह को नर-संहारक महिला-सतीत्वहर्त्ता, लुटेरा तथा डाकू, उचक्का तथा गिरोहबाज, धूर्त, एवं देशद्रोही तथा अधिक से अधिक घृण्य एवं पाशविक अपराधी से न्यूनाधिक कुछ न समझना चाहिये।

शेरशाह सहसराय के उस हिन्दू भवन में दफनाया पड़ा है, जिसे हड़पकर वह रहा करता था। इतिहासकारों की यह समझना बहुत बड़ी भूल है कि यह उसकी मृत्यु के पश्चात् निर्मित हुआ था।

: ५ :

अकबर

प्रचलित भारतीय इतिहास की पुस्तकों में, छठी पीढ़ी में उत्पन्न मुगल बादशाह औरंगजेब को क्रूरता, धोखेबाजी, धूर्तता और धर्मान्धिता का साक्षात् मूर्त रूप प्रस्तुत किया गया है। किन्तु, औरंगजेब का प्रपितामह अकबर इससे भी बदतर था। चाटुकारों द्वारा लिखे इतिहास-ग्रन्थों ने अकबर के कुकृत्यों को रूप परिवर्तित कर देने, तमाम प्रमाणों को तितर-बितर कर देने और उन बिखरे पड़े प्रमाणों को भी अकबर के शाही शयनागारीय कालीन के नीचे कुशलतापूर्वक छिपा देने का यत्न किया है। इस प्रकरण में पाठकों के समक्ष उसी साक्ष्य का नमूना प्रस्तुत करने की इच्छा है, यद्यपि वह साक्ष्य मात्रा में इतना विपुल है कि एक पृथक् पुस्तक ही उसके लिए उपयुक्त होगी। उत्कृष्ट व्यक्ति होना तो दूर, भारत के इतिहास में उसका स्थान भी छोड़िये, अकबर को तो विश्व-इतिहास के निष्कृष्टतम अत्याचारियों में से एक गिना जाना चाहिये और अकबर को तो अशोक जैसे पुण्यात्मा, परम हितैषी और मनस्तापपूर्ण व्यक्ति के समकक्ष रखना शैक्षिक बुद्धिहीनता की पराकाष्ठा है।

'महान मुगल—अकबर' शीर्षक वाली, अकबर के शासन का आडम्बर-पूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण वर्णन करने वाली पुस्तक में भी पृष्ठ ३२ पर विन्सेंट स्मिथ यह उल्लेख किये बिना नहीं रह सका कि "कलिंग विजय पर हुई दीनावस्था के कारण अशोक को जो मनस्ताप अनुभव हुआ था, उसपर अकबर खुलकर हँसा होगा, और उसने अपने पूर्ववर्ती के निर्णय की पूर्ण भर्त्सना की होगी कि अतिक्रमण के लिए की जाने वाली भावी लड़ाइयों से दूर रहा जाय।"

स्मिथ इस विचार को बिल्कुल 'भावुकतापूर्ण निरर्थकता' कहकर

तिरस्कृत कर देता है कि अकबर द्वारा विभिन्न चढ़ाइयाँ छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर विशाल साम्राज्य स्थापित करने के महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर की गई थीं।

समकालीन व्यक्तियों; यथा अबुल फजल, निजामुद्दीन और बदायूँनी तथा विन्सेंट स्मिथ जैसे पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अकबर के शासन के वर्णनों का पर्यवेक्षण पाठक को इस बात के लिए प्रतीति कराने को पर्याप्त है कि अकबर के शासनाधीन होकर दासता अपने अधमतम रूपों में चरमोत्कर्ष पर थी, और उसका शासनकाल इस प्रकार की नृशंसता, विधिहीनता, दमन और निर्ममतापूर्ण चढ़ाइयों से परिपूर्ण है, जिनका दूसरा रूप इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है।

अकबर के व्यक्तित्व का सही आकलन कर पाने के लिए यही उचित होगा कि उस परिवार की परम्पराओं तथा व्यवहार के स्तर का परिवेक्षण किया जाय जिससे कि अकबर का वंशानुक्रम है।

अपनी पुस्तक के ७वें पृष्ठ पर विन्सेंट स्मिथ ने उल्लेख किया है कि "अकबर भारत में एक विदेशी था। उसकी रगों में भारतीय रक्त की एक बूंद भी नहीं थी।" यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार भारतीय विद्यार्थियों की पीढ़ियों को तोते की-सी रट लगवाकर तथा अपनी उत्तर-पुस्तिकाओं में यह लिखवाकर सदैव धोखे में रखा गया है कि अकबर एक भारतीय था, तथा उनमें भी प्रमुखों में से एक प्रमुखतम व्यक्ति था। भ्रान्ति के उस दूसरे अंश का जहाँ तक सम्बन्ध है कि वह एक महान् व्यक्ति तथा शासनकर्ता था, हम इस लेख में सिद्ध करना चाहते हैं कि वह तो अपने समस्त सम्बन्धियों तथा भारतीयों द्वारा सर्वाधिक घृणित व्यक्तियों में से एक था, और इसीलिए भारतीय इतिहास-ग्रन्थों में उसकी गणना ऐसे ही और घृणित व्यक्तियों में की जानी चाहिये।

ऊपर कहे हुए शब्दों को जारी रखते हुए विन्सेंट स्मिथ कहता है कि अकबर अपने पितृपक्ष में तैमूरलंग से सीधी सातवीं पीढ़ी में था और मातृ-पक्ष में चंगेज खाँ से था। इस प्रकार अकबर, इतिहास में ज्ञात उन दो नृशंसतम विप्लवकारी वंशों से उत्पन्न था जिनके जीवन-काल में पृथ्वी त्रास से थर्राती थी। किन्तु भारतीय इतिहास-ग्रन्थ हमको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अकबर असीसी के सेंट फ्रांसिस और अबबेन एडम

की सन्त-परम्परा से सम्बन्ध रखता था।

विन्सेंट स्मिथ की पुस्तक के २६४वें पृष्ठ पर कहा गया है कि : "तैमूरलंग के राजपरिवार के लिए मद्यपान उसी प्रकार जन्मपाप था, जिस प्रकार यह अन्य मुस्लिम राजघरानों की नैतिक दुर्बलता थी। बाबर गहरे पियक्कड़ स्वभाव का व्यक्ति था...हुमायूँ स्वयं को अफीम से धुत रखकर जड़बुद्धि बन चुका था...अकबर ने अपने आपमें दोनों अवगुणों का समावेश होने दिया...अकबर के दो छोटे लड़के पुरानी मद्यपानता के कारण मर गये थे और उनका बड़ा भाई अपनी दृढ़ शारीरिक संरचना के कारण बच गया था,...न कि किसी गुण के कारण।"

स्मिथ कहता है कि "अकबर के चाचा कामरान ने स्वभावतः अपने शत्रुओं को क्रूरतम यातनाएँ देकर अपना मुँह काला कर लिया था...., उसने बच्चों और महिलाओं तक को नृशंसतम अत्याचार का शिकार बनाया...।"(पृष्ठ १५)।

जैसाकि भारत के समस्त मुस्लिम शासकों के साथ सामान्य बात रही थी वैसा ही हुमायूँ भी अपने सम्पूर्ण जीवन में अपने ही भाइयों के साथ घमासान युद्ध में व्यस्त रहा। जहाँ तक अत्याचारों का सम्बन्ध रहा, वह कामरान का प्रतिस्पर्धी था। पकड़ लिये जाने पर कामराज को घोर यातनाएँ दी गईं। स्मिथ ने (२०वें पृष्ठ पर) लिखा है "अपने भाई के कष्टों से हुमायूँ को कोई दुःख नहीं हुआ...कामरान को उसके आवास से घसीटकर बाहर लाया गया, लिटाया गया, और जब उसके घुटनों पर एक आदमी बैठ गया, तब दो धार वाला तेज नोकदार नश्तर कामरान की आँखों में घुसेड़ दिया गया। थोड़ा-सा नींबू का रस और नमक उसकी आँखों में रगड़ा गया, और उसके तुरन्त बाद पहरेदारों के साथ चलने के लिए उसको घोड़े की पीठ पर बैठा दिया गया।" अपने पिता और चाचा तक चली आई ऐसी परम्परा, व स्वयं अकबर के सब सम्भव अवगुणों के प्रति असीमित रूप में व्यसनी स्वभाव के होते हुए भी यह बात करना, जैसाकि आज के हमारे इतिहास-ग्रन्थ कहते हैं, केवल मात्र परले दर्जे की प्रगल्भता है, कि अकबर बिरले सद्वृत्ति वाले लोगों में से एक था।

(पृष्ठ २४२ पर) विन्सेंट स्मिथ द्वारा दी गई अकबर की शारीरिक विशिष्टताओं से स्पष्ट है कि अकबर का व्यक्तित्व कुरूप तथा भद्दा था,

जैसा होना नृवंश-विज्ञान के बिल्कुल अनुरूप है क्योंकि उसका सम्बन्ध एक अत्यन्त दुर्गुणी परिवार से था। स्मिथ कहता है, "(जीवन के मध्यकाल में) अकबर औसत दर्जे के डील-डौल का था, ऊँचाई में लगभग ५ फुट ७ इंच, चौड़ी छाती, पतली कमर और लम्बे बाजू। उसके पैर भीतर की ओर झुके हुए थे। चलते समय वह अपने बायें पैर को कुछ घसीटता-सा था, मानो लंगड़ा हो। उसका सिर दायें कंधे की ओर कुछ झुका हुआ था। नाक कुछ छोटी थी, बीच की हड्डी कुछ उभरी हुई थी, नथुने ऐसे लगते थे मानो क्रोध से फूले हों। मटर के आधे दाने के आकार का एक मस्सा उसके ऊपरी होंठ को नथुने से जोड़ता था···उसका रंग श्यामल था।" इस प्रकार की भद्दी आकृति होते हुए भी, समकालीन व्यक्तियों द्वारा 'निर्लज्ज चाटुकार' संज्ञा दिया गया आत्म-निर्दिष्ट, मिथ्याचारी, परान्नभोजी, अकबर के शासन का वृत्तकार अबुल फज़ल उसको "धरती पर सुन्दरतम व्यक्ति' कहते नहीं थकता।

तेज नशीली वस्तुओं तथा मदान्ध करने वाली जड़ी-बूटियों का अकबर घोर व्यसनी था, इस तथ्य के असंख्य उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। वह नशीली पेय तथा खाद्य-वस्तु ओंसे निर्मित होने वाली भयंकर नशे वाली वस्तुओं का भी सेवन कर लेता था।। अकबर का बेटा जहाँगीर स्वयं कहता है: "मेरा पिता चाहे, शराब पिये हो, चाहे स्थिर चित्त हो, मुझे सदैव 'शेख बाबू' कहकर पुकारता था।" इसका अन्तर्निहित अर्थ स्पष्ट है कि अकबर प्रायः शराब के नशे में रहता था। (पृष्ठ ८२वें पर) स्मिथ ने उल्लेख किया है कि "यद्यपि अकबर के चाटुकार भाँडों ने उसकी मदिरापानावस्था का कोई वर्णन नहीं किया है, तथापि यह निश्चित है कि उसने पारिवारिक परम्परा बनाए रखी, और वह प्रायः आवश्यकता से अधिक शराब पीता रहा।"

अकबर के दरबार का ईसाई पादरी अक्वावीवा कहता है कि "अकबर इतनी अधिक शराब पीने लगा था कि वह प्रायः (आगन्तुकों से बातें करते-करते ही) सो जाया करता था। इसका कारण यही था कि वह कई बार तो ताड़ी पीता था। वह अत्यन्त मादक ताड़ की शराब होती थी और, कई बार पोस्त की शराब पीता था, जो उसी प्रकार अफीम में अनेक वस्तुएँ मिलाकर बनाई जाती थी।" मदिरा-पान के दुर्गुण के उसके बुरे

उदाहरण का पूर्ण निष्ठापूर्वक पालन उसके तीनों बेटों ने युवावस्था प्राप्त होने पर किया। (२४४ वें पृष्ठ पर) उल्लेख है कि जब अकबर सीमा से अधिक पी लेता था, तब पागलों जैसी विभिन्न हरकतें किया करता था। उसको एक अति नशीली ताड़ से निकली शराब विशेष रूप से प्रिय थी। उसके बदले में वह अत्यन्त चटपटी अफीम का अवमिश्रण लिया करता था। अनेक पीढ़ियों से चली आयी अत्यन्त नशीले पेय पदार्थों तथा अफीम को विभिन्न रूपों में सेवन करने की पारिवारिक परम्परा को उसने खूब निभाया, अनेक बार तो अतिपान करके निभाया। ऐसे दृष्टान्तों के मन-चाहे उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु अकबर की अत्यन्त दुर्गुणी प्रकृति थी···ऐसा विश्वास पाठक के हृदय में जमाने के लिए, ये उदाहृण पर्याप्त होने चाहिये। इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं कि दुर्गुणी आत्मा जो निरन्तर वर्धमान पापोन्मुखी हो, वही मादकता में संरक्षण चाहती है।

सभी इतिहासकारों ने सर्वसम्मत स्वर में पुष्टि की है कि अकबर निपट निरक्षर था। उसके बेटे जहाँगीर ने उल्लेख किया है कि अकबर न तो लिख सकता था और न ही पढ़ सकता था, किन्तु वह प्रदर्शित ऐसा करता था जैसे अत्यन्त शिक्षित व्यक्ति हो। अकबर का स्वयं ऐसा भाव प्रदर्शित करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना अन्य लोगों का उसके सम्मुख यह अभिव्यंजित करना कि जो कुछ अकबर के मुख से निकलता था, वह अत्यन्त बुद्धिमत्ता-सम्पन्न होता था। क्रूर और सिद्धान्त-शून्य सर्वशक्तिमान राजा के सम्मुख उपस्थित होने पर वे और कर भी क्या सकते थे—

अकबर का जीवन उस संस्कृत उक्ति का अच्छा उदाहरण है, जिसमें कहा गया है।

"यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥"

३१वें पृष्ठ पर स्मिथ कहता है: "अबुल फजल यह दुहराते हुए कभी नहीं थकता कि अपने प्रारम्भ के वर्षों में अकबर 'पर्दे के पीछे' रहा। अबुल फजल का आशय यही है कि अकबर अपना अधिकतम समय अपने हरम में ही बिताया करता था।" ८२वें पृष्ठ पर स्मिथ हमें सूचित करता है कि "पुनीत ईसाई-धर्म-प्रचारक अक्वावीवा ने अकबर को, स्त्रियों से

उसके कामुक-सम्बन्धों के लिए बुरी तरह फटकार लगाने का अत्यन्त साहस किया था···अकबर ने लज्जारंजित हो स्वयं को क्षमा कर दिया···।" अकबर के हरम का वर्णन करते हुए अबुल फजल कहता है : "शहंशाह ने अपने आराम करने के लिए विशाल चहारदीवारी बनाई है, जिसमें अत्यन्त भव्य भवन हैं। यद्यपि (हरम में) ५००० से अधिक महिलायें हैं, फिर भी शहंशाह ने उनमें से प्रत्येक को पृथक्-पृथक् निवास-गृह दे रखा है।" पृथक् निवास-गृह वाला अंश तो झूठ है क्योंकि अकबर के समय का ऐसा कोई भवन नहीं मिलता, जिसमें ५००० महिलायें भिन्न-भिन्न निवास-गृहों में रह सकतीं।

ब्लोचमन द्वारा सम्पादित 'आईने-अकबरी' के प्रथम भाग के २७६वें पृष्ठ पर अबुल फजल पाठकों को बताता है कि "शहंशाह ने महल के पास ही शराब की एक दुकान स्थापित की है···दुकान पर इतनी अधिक वेश्याएँ राज्य भर से आकर एकत्रित हो गईं कि उनकी गणना करना भी कठिन कार्य हो गया···दरबारी लोग नर्तनियों को अपने घर ले जाया करते थे। यदि कोई प्रसिद्ध दरबारी-गण किसी असम्भुक्ता को ले जाना चाहते हैं, तो उनको सर्वप्रथम शहंशाह से अनुमति प्राप्त करनी होती है। इसी प्रकार लड़के भी लौंडेबाजी के शिकार होते थे, और शराबीपन तथा अज्ञान से शीघ्र ही खून-खराबा हो जाता था। शहंशाह ने स्वयं कुछ प्रमुख वेश्याओं को बुलाया और उनसे पूछा कि उनका कौमार्य किसने भंग किया था ?"

एक सहज किन्तु आवश्यक प्रश्न यह होगा कि ये तथाकथित वेश्याएँ कौन थीं ? टिड्डी-दल की भाँति वेश्याओं की यह पूरी फौज की फौज कहाँ से अकबर के राज्य में आ पहुँची ? उत्तर यह है कि सतत् वर्धमान ये वेश्याएँ उन संभ्रान्त हिन्दू महिलाओं के अतिरिक्त और कोई नहीं थीं, जिनके घरों को प्रतिदिन लूटा-खसोटा जाता था और जो अपने पुरुष वर्गों का या तो वध या धर्म-परिवर्तन हो जाने के पश्चात् स्वयं ही अपने लिए प्रबन्ध करने को कामुक मुगल दरबारियों की दया पर असहाय छोड़ दी जाती थीं।

पाँच हजार से अधिक स्त्रियों का निर्वाधित हरम तथा राज्य की उन सभी असम्भुक्ता वेश्याओं के होते हुए भी, जिनका कौमार्य अबुल फजल के अनुसार अकबर की पूर्ण इच्छा पर सुरक्षित सम्भव था, जिसको कोई

भी दरबारी बिना विशेष अनुमति के भंग नहीं कर सकता था, उमरावों तथा दरबारियों की पत्नियों का सम्मान भी अकबर की कामुक-वृत्ति का शिकार था। सर जदुनाथ सरकार द्वारा सम्पादित अकबरनामा के भाग ३ में अबुल फजल कहता है—"जब भी कभी बेगमें, अथवा उमरावों की पत्नियाँ या ब्रह्मचारिणियाँ उपहृत होने की इच्छा करती हैं, तब उनको अपनी इच्छा की सूचना सबसे पहले वासनालय के सेवकों को देनी होती है, और फिर उत्तर की प्रतीक्षा करनी होती है। वहाँ से उनकी प्रार्थना महल के अधिकारियों के पास भेज दी जाती है। जिसके पश्चात् उनमें से उपयुक्तों को हरम में प्रविष्ट होने की अनुमति दे दी जाती है। उच्च वर्ग की कुछ महिलाएँ वहाँ एक मास तक रहने की अनुमति प्राप्त कर लेती हैं।"

यह स्मरण रखते हुए कि अबुल फजल "निर्लज्ज चाटुकार" की संज्ञा से कलंकित है, उपर्युक्त उद्धरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उमरावों और दरबारियों की पत्नियों तक को भी, जिनकी ओर वह आकृष्ट हो जाता था, अकबर अपने हरम में कम-से-कम एक मास तक रहने के लिए बाध्य करता था।

यह निष्कर्ष रणथम्भोर की सन्धि की शर्तों का आकलन करने पर और भी पुष्ट हो जाता है। विन्सेंट स्मिथ द्वारा दी गयी सूची में पहली शर्त थी : "राजपूतों द्वारा (महिला का) डोला शाही हरम में भिजवाकर उनका तिरस्कार करने के रिवाज से बूंदी के (किले के स्वत्वाधिकारी) सरदारों को छूट देना।" यह प्रदर्शित करता है कि पराभूत शत्रुओं के घरों से मनपसन्द महिलाओं को अपने हरम में भरती कर लेने का अपकारी रिवाज अकबर ने चालू कर रखा था। इस प्रकार अकबर द्वारा विजित प्रदेशों की महिलाएँ, चाहे वे साधारण परिवारों अथवा राजघरानों से, अकबर की रतिविषयक दया पर निर्भर रहती थीं।

अकबर की स्त्रियों-विषयक घोर दुर्बलता का उल्लेख करता हुआ स्मिथ पृष्ठ ४७ पर कहता है : "जनवरी सन् १५६४ के प्रारम्भ में अकबर दिल्ली की ओर गया। जब वह एक सड़क से गुजर रहा था, तब सड़क के किनारे बनी इमारत के एक छज्जे से एक पुरुष ने एक तीर मारा, जिससे अकबर का एक कन्धा घायल हो गया···प्रतीत होता है, अकबर ने हत्यारे के पापसहायों का पता लगाने के प्रयत्नों को निरुत्साहित किया था। अकबर

उस समय दिल्ली-परिवारों की महिलाओं से विवाह करने की योजना में लगा हुआ था, तथा उसने एक शेरू को अपनी पत्नी अकबर को समर्पित करने के लिए बाध्य किया था। अकबर की हत्या का प्रयत्न…सम्भवतः अकबर द्वारा परिवारों के सम्मान के हरण के विरुद्ध रोष का प्रतिफल था। पत्नियों और रखैलों के मामलों में अकबर ने स्वयं को पर्याप्त छूट दे रखी थी।"

इस कुत्सित वर्णन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि चूँकि अकबर की आँख बैरम खाँ की पत्नी पर लग गई थी और उसने बैरम खाँ की हत्या के बाद उसकी पत्नी से शादी भी कर ली थी, अपने पूर्वकालीन संरक्षक की नृशंस और दुःखान्त समाप्ति भी अकबर ने ही करवाई होगी।

३७वें पृष्ठ पर स्मिथ ने वर्णन किया है कि किस प्रकार अकबर के सेनापति आदम खाँ ने माँडवगढ़ के शासक बाजबहादुर को पराजित करने के पश्चात् अपने लिए महिलाओं तथा लूट-खसोट की अन्य वस्तुओं को सुरक्षित रखते हुए, अकबर के पास 'केवल हाथियों के कुछ नहीं भेजा।' अकबर ने आगरा से २७ अप्रैल, सन् १५६१ को प्रस्थान किया और बाज-बहादुर के हरम में प्रविष्ट करने के लिए विशाल बलशाली सेनाओं से बाजबहादुर को धर दबाया। इस प्रकार अकबर का हरम सैकड़ों महिलाओं से निरन्तर वर्धमान होता रहा था। उन महिलाओं की दशा का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। कल्पना की जा सकती है की उनका जीवन भी अन्यों की तरह उत्तम नहीं रहा होगा। वे तो केवल पशु-समूहों की भाँति रही होंगी और इसलिए अबुलफजल का बलपूर्वक उच्च स्वर से यह घोषित करना, कि उन महिलाओं के निवास के लिए पृथक्-पृथक् आवास दिये गये, मुस्लिम-चाटुकारिता का सामान्य अंश प्रतीत होता है।

विन्सेंट स्मिथ पृष्ठ १६३ पर अन्य एक घटना का उल्लेख करता है जो फिर अकबर की संभोगेच्छा की ओर संकेत करती है। राजा भगवान-दास का सम्बन्धी जयमल एक अल्पकालिक यात्रा पर भेजा गया था। उन भयावह दिनों में जीवित रहने की कामना न रखने के कारण उसकी विधवा पत्नी ने अपने पति के शव के साथ, अग्नि की भेंट चढ़ जाने की तैयारी की। अकबर ने उस विधवा के साथ जाने वालों का पीछा करने एवं उनको पकड़ने के पश्चात् बन्दी बनाने के कार्य में कोई देर न की। थोड़े-से भी

अन्वेषण द्वारा यह द र्शा या जाना सम्भव हो सकता है कि जयमल को जान-बूझकर मार डाला गया हो, और उसकी विधवा पत्नी को अकबर के हरम में ठूंस दिया गया हो।

१८५वें पृष्ठ पर स्मिथ का कहना है कि, "ग्रिमन का यह कथन कि अकबर एकनिष्ठ पति रहा तथा उसने रखैलों को अन्य दरबारियों में वितरित कर दिया था, अन्य स्रोतों से पुष्ट नहीं होता।" अकबर की कामुकता में यह एक नया अध्याय जुड़ जाता है क्योंकि वह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार अकबर और दरबारियों के मध्य महिलाएँ केवल चल-सम्पत्ति के समान ही उन लोगों की कामवासना तृप्ति के लिए इधर-उधर विनिमय की जाने वाली व्यभिचार की सामग्री मात्र समझी जाती थीं। उन दयनीयाओं की स्थिति मांसबाजार में स्थित उन मेमनों की-सी रही थी जिनको व्यावसायिक-समझौते के निर्णय तक विक्रेता और ग्राहक के मध्य बार-बार इधर-से-उधर घसीटा जाता है।

इसके साथ ही मीना बाजार नाम की कुख्यात प्रथा थी जिसके अनुसार नव वर्ष के दिन सब घरों की महिलाओं को अकबर की रुचि के अनुसार चयन किये जाने के लिए उसके सामने से समूह में निकाला जाता था।

अकबर के शासन के वर्णनों में से कामुकता के सभी सम्भव रूपों की ऐसी दु:खदायी अधम कथाएँ जितनी संख्या में चाहें उपलब्ध की जा सकती हैं।

क्रूरता में अकबर की गणना, इतिहास के घोरतम क्रूर-संभोगियों में की जानी चाहिये।

पृष्ठ २० पर विन्सेंट स्मिथ कहता है कि "ग्वालियर में सन् १५६५ में कामरान के पुत्र (अर्थात् अकबर के अपने भाई) को निजी रूप में मार डालने के अकबर के कार्य ने अत्यन्त घृणित उदाहरण प्रस्तुत किया, जिसकी नकल उसके अनुवर्ती शाहजहाँ और औरंगजेब ने खूब की।" इस प्रकार शाहजहाँ और औरंगजेब द्वारा किये गए अत्याचार उनकी नवीन कल्पनाएँ न होकर उनके यशस्वी (?) पूर्वज अकबर द्वारा भली-भाँति रचित परम्परा में उनको विरासत में सिखाए गये थे। यह साधारण-सा सत्य भी भारतीय इतिहास के तथाकथित विद्वानों द्वारा उपेक्षित कर दिया जाता है, तभी तो वे अकबर की महानता के भ्रमजाल को स्थिर बनाए हुए हैं।

पानीपत के युद्ध के पश्चात् ६ नवम्बर, १५५६ के दिन जब अकबर के सम्मुख घायल तथा अर्ध-चेतनावस्था में हेमू को लाया गया तब "अकबर ने अपनी टेढ़ी तलवार से उसकी गर्दन पर प्रहार किया"—स्मिथ का कथन है। अकबर उस समय केवल १४ वर्ष का था। उस छोटी आयु से ही उसने कायरों की भाँति अपने पराभूत तथा असहाय शत्रुओं की हत्या करने का यश अर्जित किया था। इस प्रकार का उसका लालन-पालन था।

पानीपत की लड़ाई के बाद अकबर की विजयी सेनाएँ "सीधी दिल्ली की ओर कूच कर गईं। जहाँ उनके लिए द्वार खोल दिए गये। अकबर राज्य में जा घुसा। आगरा भी उसके अधीन आ गया। उस काल की पैशाचिक-प्रथा के अनुसार कत्ल किए गये व्यक्तियों के सिरों पर एक स्तंभ बनाया गया। हेमू के परिवार के साथ ही विपुल कोष भी ले लिया गया था। हेमू का वृद्ध पिता मौत के घाट उतार दिया गया।" (स्मिथ की पुस्तक का पृष्ठ ३०)।

खान जमान के विद्रोह को दबाने के अवसर पर उसके विश्वासपात्र मोहम्मद मिरक को वधस्थल पर पाँच दिन तक निरन्तर यातनाएँ दी गईं। प्रत्येक दिन एक लकड़ी के कटघरे में उसकी मुश्कें बाँधकर उसको हाथी के सामने लाया जाता था। हाथी उसे सूँड से पकड़ता था, झकझोरता था और एक ओर से दूसरी ओर उछालता था…अबुलफजल ने इस लोमहर्षक बर्बरता का उल्लेख, भर्त्सना का एक भी शब्द कहे बिना किया है। (पृष्ठ ५८)।

पृष्ठ ६४ पर स्मिथ का कहना है कि चित्तौड़ के अधिग्रहण के पश्चात् अपनी सेनाओं के सतत प्रतिरोध किये जाने से कुपित होकर अकबर ने दुर्ग-रक्षक सेना तथा जनता के साथ क्रूरतम निर्ममता का व्यवहार किया… शहंशाह ने कत्लेआम का सार्वजनिक आदेश दे दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप ३०,००० लोग मारे गये। बहुत-से लोग बन्दी बनाए गए।

अकबर के ऊपर सबसे बड़ा लांछन, कदाचित् महान् इतिहासकार कर्नल टाड के इन शब्दों में प्रस्तुत है कि "चित्तौड़ में शाहंशाह की गति-विधियाँ सर्वाधिक निर्मम निपट अत्याचारों से भरी पड़ी हैं।"

सन् १५७२ के नवम्बर मास में जब अकबर अहमदाबाद के शासक मुजफ्फरशाह को हराकर बन्दी बना चुका था, तब उसने आज्ञा दी थी

कि विरोधियों को हाथियों के पैरों तले रोंदकर मार डाला जाय।

सन् १५७३ में सूरत का घेरा डालने वाली अकबर की सेनाओं के सेनानायक हमजबान को उसकी जबान काटकर घोर बर्बरतापूर्ण दण्ड दिया गया।

"अकबर के निकट सम्बन्धी मसूद हुसैन मिर्जा की आँखों को सूई से सी दिया गया था जबकि वह उसके विरुद्ध बगावत करने के बाद पकड़ा गया था। उसके अन्य ३०० सहायकों के चेहरों पर गधों, भेड़ों और कुत्तों की खालें चढ़ाकर अकबर के सम्मुख घसीटकर लाया गया था। उनमें से कुछ को अत्यन्त घृणित क्रूर-कर्मों सहित मार डाला गया। अकबर को अपने तातारी पूर्वजों से पैतृक-रूप में ग्रहीत ऐसी बर्बरताओं की अनुमति देते हुए देखकर अत्यन्त घृणावश जी ऊब जाता है"—स्मिथ ने कहा है।

पृष्ठ ८६ के अनुसार, जब अहमदाबाद के युद्ध में २ सितम्बर, सन् १५७३ को मिर्जा पराजित कर दिया गया था, तब विद्रोहियों के २००० से अधिक सिरों से एक स्तूप बनाया गया था।

बंगाल का शासक दाऊद खाँ जब पराजित कर दिया गया, तब उस समय के बर्बरतापूर्ण रिवाजों का अनुसरण करते हुए (अकबर के सेनानायक मुनीर खाँ ने) बन्दी लोगों को मौत के घाट उतार दिया। उन लोगों के कटे हुए सिरों की संख्या आकाश को छूने वाले आठ ऊँचे-ऊँचे मीनारों को बनाने के लिए पर्याप्त थी (देखिए, अकबरनामा ३, पृष्ठ १८०)। प्यास से व्याकुल होने पर जब दाऊद खाँ ने पीने के लिए पानी माँगा, तब उन लोगों ने 'उसकी जूतियों में पानी भरकर उसके सामने पेश कर दिया।'

ये उदाहरण पाठकों को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त होने चाहिये कि अकबर का शासन ऐसी निर्मम क्रूरताओं की कभी समाप्त न होने वाली कथा है।

स्मिथ द्वारा वर्णित अकबर के शासन में अकबर की धोखेबाजी के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ५७ वें पृष्ठ पर वह लिखता है : "दिल्ली के उत्तर में हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थस्थान थानेश्वर में घटी असाधारण घटना, जबकि शाही खेमा वहाँ लगा हुआ था, अकबर के चरित्र पर अत्यन्त असुखद प्रकाश डालती है।"

"पवित्र कुण्ड पर एकत्र संन्यासी कुरु एवं पुरी वाले दो भागों में बँटे

हुए थे। पुरी वालों ने बादशाह से शिकायत की कि चूँकि कुरु वालों ने, अवैध रूप में, पुरी वालों का बैठने का स्थान हथिया लिया था, इसलिए वे तो जनता से दान ग्रहण करने से वंचित रह गये थे। उन लोगों से (बादशाह द्वारा) कहा गया कि आपस में युद्ध करके निर्णय कर लो। दोनों ओर के लोगों को शस्त्रास्त्रों से लैस कराकर लड़ाया गया। इस लड़ाई में दोनों पक्षों ने तलवारों, तीर-कमानों का खुलकर प्रयोग किया। "यह देखते हुए कि पुरी वालों का पलड़ा भारी था, अकबर ने अपने और भी खूँखार जंगली सेवकों को आदेश दिया कि वे निर्बल पक्ष की ओर मिल जाएँ।" यह तो रोटी के टुकड़े पर झगड़ने वाली दो बिल्लियों तथा उनका हिस्सा बराबर-बराबर बाँटने को आए बन्दर वाली ईसप की कथा से भी बदतर है। हिन्दू-संन्यासी-वर्गों के मध्य हुए इस झगड़े में अकबर यही कार्य करता रहा कि अन्त में दोनों ही वर्गों के लोग अकबर के बर्बर सैनिकों द्वारा पूर्णत: समाप्त कर दिये गए। स्मिथ ने उल्लेख किया है कि : "अकबर के वृत्तलेखक ने चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर लिखा है कि इस खेल से अकबर को अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता हुई थी।"

हल्दीघाटी के युद्ध में, जब समरांगण में राणा प्रताप की विशाल सेना के विरुद्ध अकबर की सेना भी सन्नद्ध खड़ी थी, तब यह वास्तव में राजपूत के विरुद्ध राजपूत का ही युद्ध था, क्योंकि अकबर ने अपने आतंकित करने वाले अत्याचारों से अनेक राजपूत-प्रमुखों को अपने सम्मुख समर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया था, तथा अब उन्हीं के द्वारा उनमें सर्वाधिक स्वाभिमानी महाराणा प्रताप का मस्तक नीचा करना चाहता था। एक अवसर पर जबकि दोनों पक्ष घमासान युद्ध में लगे हुए थे, और यह पहचानना कठिन था कि कौन-सा राजपूत अकबर की सेना का है, और कौन-सा राणा प्रताप का, अकबर की ओर से लड़ रहे बदायूँनी ने अकबर के सेनानायक से पूछा कि वह कहाँ गोली चलाए, जिससे केवल शत्रु ही मर पाए। सेनानायक ने उत्तर दिया कि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह राजपूत फौज पर जहाँ भी गोली चलाएगा, तथा जो भी कोई मरेगा, इस्लाम का ही लाभ होगा। बदायूँनी का कहना है कि यह आश्वासन मिल जाने पर, यह विश्वास मन में जम जाने पर कि कोई सावधानी आवश्यक नहीं है, मैंने प्रसन्न होकर अन्धाधुन्ध गोलियों की बौछार करनी शुरू कर

दी।

कर्नल टाड का कहना है कि चित्तौड़ का अधिग्रहण कर लेने के पश्चात् "पहले विजेताओं द्वारा जितने स्मारक बच पाए थे, अकबर ने उनमें से प्रत्येक को अपरूप किया। बहुत समय तक अकबर की गणना शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन और अन्य मूर्ति-भंजकों के साथ की जाती रही, तथा प्रत्येक न्याय-दावे के साथ तथा इन्हीं के समान, उसने (राजपूतों के पैतृक उपास्य-देव) 'एकलिंग' की देव-मूर्ति को तोड़कर मस्जिद में कुरान पढ़ने के लिए आसन (मिम्बार) बनवाया।" यह तथ्य उस भरसक प्रयत्नपूर्वक प्रचारित धारणा को झूठा सिद्ध करता है, जिसमें कहा जाता है कि अकबर हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त सहिष्णु था एवं उनके देवी-देवताओं का सम्मान करता था।

लगभग १६०३ में या उसके आसपास, एक दिन अकबर, जो दोपहर के समय विश्राम के लिए अपने कमरे में जाने का अभ्यासी था, अनपेक्षित रूप में जल्दी उठ बैठा, और तुरन्त किसी भी सेवक को न देख पाया। जब वह तख्त और पलंग के पास आया तो उसने शाही पलंग के निकट ही एक अभागे मशालची को नींद में लुढ़का हुआ पाया। इस दृश्य से कुपित होकर अकबर ने आदेश दिया कि उस मशालची को मीनार से नीचे जमीन पर पटक दिया जाय। उसकी देह के टुकड़े-टुकड़े हो गये।

पृष्ठ १४५ व १४६ पर स्मिथ पर्यवेक्षण करता है : "पुर्तगालियों के प्रति अकबर की नीति अत्यन्त कुटिल एवं धूर्ततापूर्ण थी। मित्रतापूर्वक आमंत्रित किये जाने पर जब धर्म-प्रचारक उसके दरबार में पहुँचने ही वाले थे, तब उसी क्षण के लिए उसने यूरोपियनों के किलों को हस्तगत करने के लिए अपनी एक पूरी फौज का संगठन कर दिया था। अकबर की दोगली नीति के प्रत्येक लक्षण देखकर ईसाई-धर्म प्रचारक अत्यन्त चिन्तित हुए थे...एक ओर तो अकबर मित्रता की इच्छा का ढोंग करता था, और दूसरी ओर वास्तव में शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयों के आदेश देता था।"

सन् १६०० के अगस्त मास में जब अकबर की फौजों ने असीरगढ़ किले को घेर तो लिया था किन्तु उसको विजित करने की कोई आशा न रही थी, तब, विन्सेण्ट स्मिथ का २०वें पृष्ठ पर कहना है, "अकबर ने अपने दक्ष उपायों—अभिसन्धि तथा धूर्तता—का सहारा लेते हुए विश्वास

किया। इसलिए उसने (असीरगढ़ के) राजा मिरान बहादुर को परस्पर बातचीत के लिए आमंत्रित किया तथा स्वयं अपनी ही कसम खाकर विश्वास दिलाया कि आगन्तुक को शान्तिपूर्वक अपने घर वापस जाने दिया जायगा। तदनुसार मिरान बहादुर समर्पण का भाव प्रदर्शित करते हुए दुपट्टा ओढ़कर बाहर आया...अकबर बुत की भाँति निश्चल बैठा रहा...मिरान बहादुर तीन बार सम्मान प्रदर्शित कर ज्योंही अकबर की ओर बढ़ रहा था कि एक मुगल अधिकारी ने उसको गर्दन से पकड़ लिया और नीचे पटककर भूमि पर साष्टांग प्रणाम करने के लिए विवश कर दिया...यह ऐसी पद्धति थी जिसपर अकबर बहुत बल देता था। उसको बन्दी बना लिया गया और कहा गया कि वह किले के सेनापति को समर्पण करने के लिए लिखित आदेश दे। सेनापति ने समर्पण करना स्वीकार नहीं किया, और राजा की मुक्ति के लिए उसने अपने बेटे को भेज दिया। उस युवक से पूछा गया कि क्या उसका पिता समर्पण के लिए उद्यत था? इस प्रश्न का मुँहतोड़ उत्तर देने पर उसके पेट में छुरा भोंक दिया गया। दुर्ग के सेनानायक को सूचित कर दिया गया कि उसका पुत्र उस समय मार डाला गया था जबकि वह स्वयं तो संधि एवं समर्पण के लिए तत्पर हो गया था किन्तु दुर्गरक्षकों को भाषण कर रहा था कि आखिरी व्यक्ति के रक्त की अन्तिम बूंद तक युद्ध लड़ा जायगा।" यह उदाहरण सिद्ध करेगा कि अकबर की नीचता में सभी बातें न्याय्य थीं और छल-कपट घृण्य सीमाओं से भी बढ़ सकता था।

अकबर की विजयों का प्रमुख उद्देश्य धन-सम्पत्ति, स्त्री, क्षेत्र तथा सत्ता की लोलुपता थी। रणथम्भोर की सन्धि में हम देख चुके हैं कि पराजित लोग सदा ही अपनी महिलायें अकबर को सौंप देने के लिए बाध्य किये जाते रहे हैं। बाजबहादुर के विरुद्ध अकबर की चढ़ाई में हम पहले ही पर्यवेक्षण कर चुके हैं कि स्त्रियों के प्रति अकबर की इन्द्रिय लोलुपता ने ही उसको आगरा से दूर चलकर आदम खाँ के विरुद्ध सशस्त्र सेनाएँ भेजकर, आदम खाँ द्वारा बाजबहादुर की महिला-वर्ग की महिलाओं के अनुचित रूप से हड़प लेने के कारण उपर्युक्त कार्यवाही के लिए बाध्य किया।

बुंदेलखण्ड की रानी दुर्गावती के विरुद्ध अकबर की चढ़ाई के सम्बन्ध में स्मिथ ने (पृष्ठ ५०-५१ पर) विलाप करते हुए कहा है: "इतनी सच्चरित्र

राजकुमारी के ऊपर अकबर का आक्रमण अतिक्रमण के अतिरिक्त और कुछ न था। यह पूर्णरूपेण अन्यायपूर्ण और विजय तथा लूट-खसोट के अतिरिक्त सभी कामनाओं से ही था। पर्याप्त शक्ति से सम्पन्न सामान्य राजोचित महत्त्वाकांक्षा के परिणामस्वरूप ही अकबर की विजय हुई। रानी दुर्गावती की अत्युत्तम सरकार के ऊपर नैतिक न्याय के अभाव का आक्रमण उन सिद्धान्तों को मानकर हुआ था, जिनके फलस्वरूप काश्मीर, अहमदनगर तथा अन्य राज्यों की विजय की गई। किसी भी युद्ध को प्रारम्भ करने में अकबर को कभी भी कोई संकोच, लज्जा का अनुभव नहीं हुआ, और एक बार झगड़ा आरम्भ कर देने के पश्चात् वह शत्रु पर अत्यन्त निर्दयतापूर्वक प्रहार करता था…उसकी गतिविधियाँ अन्य योग्य, महत्त्वाकांक्षी तथा निष्ठुर राजाओं की भाँति थीं।"

मेवाड़ के महाराणा प्रताप के विरुद्ध भीषण निरंकुश आक्रमण का वर्णन करते हुए स्मिथ ने पृष्ठ १०७ पर उल्लेख किया है : "राणा पर आक्रमण करने के लिए किसी विशेष घटना को कारण मानना कोई आवश्यक बात नहीं है। सन् १५७६ की लड़ाई राणा का नाश करने के लिए एवं अकबर के साम्राज्य से बाहर स्वाधीनता को कुचल देने के लिए की गई थी। अकबर ने राणा की मृत्यु तथा उसके क्षेत्र को हड़प लेने की कामना की थी।"

राणा प्रताप और अकबर के मध्य परस्पर संघर्ष की सही समझ ही किसी भी विचारवान प्रेक्षक को परम महान् के रूप में माने जाने वाले अकबर की निन्दा करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। चूँकि दोनों ही परस्पर विरोधी कार्य में लगे हुए थे तथा एक-दूसरे के प्राण लेने के लिए संघर्षरत थे, इतिहास का कोई भी विद्यार्थी उनमें से एक को अन्याय, अत्याचार तथा दमन का प्रतिनिधि मानने का उत्तरदायित्व दूर नहीं कर सकता। चूँकि राणा प्रताप तो अनुत्तेजित आक्रमण के विरुद्ध लड़ाई में संलग्न इस भूमि की सन्तान था, अतः यह निष्कर्ष स्वतः निकलता है कि एक सामन्त-राज्य के पश्चात् दूसरे सामन्त राज्य पर आक्रमण कर निरंकुश-नरसंहार तथा अन्य अपराधों के लिए अकबर पर दोष लगाना ही चाहिए। फिर भी, विचित्रता यह है कि अकबर को देवदूत के रूप में प्रस्तुत करने वाली अनेक स्तुतियों से भारतीय इतिहास बुरी तरह से लदा

पड़ा है।

भारतीय इतिहास में प्रविष्ट अनेक गर्हित तथा कल्पित बातों में से एक यह है कि अकबर का देवदूत-स्तरीय गुण इस बात से सिद्ध होता है कि उसने 'दीन-इलाही' नामक एक लौकिक धर्म की स्थापना की थी। यह सत्य का पूर्ण अपभ्रंश है। अकबर की गरम-मिजाजी और बड़प्पन की भावना इस सीमा तक पहुँच चुकी थी कि वह धर्म के नाम पर जनता द्वारा मुल्लाओं और मौलवियों की अवज्ञा सहन नहीं कर सकता था। अकबर इस बात पर स्वयं बल देता था कि वह स्वयं ही देवांश था...सर्वोच्च लौकिक तथा आध्यात्मिक सत्ता था, तथा अन्य किसी भी व्यक्ति के प्रति सम्मान प्रदर्शन किसी भी कारणवश नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा हठ करना तो समस्त धर्मों का अस्वीकरण था, तथा स्त्री-पुरुषों के भाग्यों पर लम्पट और निरंकुश-सत्ता स्वयं में केन्द्रित करने का यत्न-मात्र था।

उस दिशा में उसने लोगों को बाध्य किया कि वह एक-दूसरे से मिलकर 'अल्लाह-हो-अकबर' कहकर सम्बोधन करें, जिसका एक अर्थ यह है कि 'ईश्वर शक्तिमान है', किन्तु अधिक सूक्ष्मतम विचार करने पर ऐसा अर्थ ज्ञात होता है कि "अकबर स्वयं ही अल्लाह है।"

पृष्ठ १२७ पर स्मिथ ने व्याख्या की है : "अनेकार्थक शब्द 'अल्ला-हो-अकबर' के प्रयोग ने अत्यन्त कटु आलोचनाओं को अवसर दिया। अबुल फजल भी स्वीकार करता है कि इस नये नारे ने उग्र भावनाओं को जन्म दिया। अनेक अवसरों पर वह (अकबर) स्वयं को ऐसा व्यक्ति प्रस्तुत करता था जिसने अन्त और अनन्त के मध्य की खाई पाट दी हो।"

अपने धर्म-प्रचार की असफलता पर दुःखित हृदय हो पादरी मनसरेंट ने (पृष्ठ १४८ पर) वर्णन किया है : "यह सन्देह किया जा सकता है कि ईसाई पादरियों को जलालुद्दीन (अकबर) द्वारा किसी उदार-भावना से प्रेरित होकर नहीं, अपितु उत्सुकता-वश अथवा आत्माओं के सर्वनाश के लिए किसी नयी वस्तु का प्रारम्भ करने के लिए बुलाया गया था।"

स्मिथ ने पृष्ठ १२५ पर वर्णन किया है कि पादरियों द्वारा भेंट में दी गई बाइबल किस प्रकार "अकबर ने बहुत दिनों बाद वापिस लौटा दी थी।"

स्मिथ ने पृष्ठ १५३ पर पर्यवेक्षण किया है : "सत्य यह है कि अकबर

के ढोंगी धर्म का अस्तित्व, क्षणभंगुर तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के तत्त्वों पर अपनी प्रभुसत्ता प्रस्थापित करने में ही है। शहंशाह अकबर के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने की चार श्रेणियाँ सम्पत्ति, जीवन, सम्मान तथा धर्म का बलिदान करने में समझीं जाती थीं।" (पृष्ठ १५४)।

"सामान्य सहनशीलता के सुन्दर वाक्यों के होते हुए भी, जोकि अबुल फजल की रचनाओं तथा अकबर के कथनों में अत्यन्त विपुल मात्रा में उपलब्ध होते हैं, (अकबर द्वारा) अत्यन्त असहनशीलता के अनेक क्रूर-कर्म किये गये थे।" (पृष्ठ १५६)।

अकबर के राजनीतिक धर्माडम्बर के सम्बन्ध में स्मिथ ने (पृष्ठ १६० पर) कहा है: "सम्पूर्ण योजना उपहासास्पद मिथ्याभिमान तथा निरंकुश स्वेच्छाचारिता के विकास का परिणाम थी।"

अकबर के दरबार में उपस्थित ईसाई पादरी जेवियर ने अकबर द्वारा स्वचरणों की धोवन (पगों को धोने के पश्चात् अवशिष्ट मैला जल) जन सामान्य को पिलाने के विशिष्ट उदाहरण का उल्लेख किया है। स्मिथ ने (पृष्ठ १८९ पर) कहा है कि जेवियर ने लिखा है कि "अकबर अपने आपको पैगम्बर की भाँति प्रस्तुत घोषित करता था। इसके लिए जनता को मान लेना होता था कि उसके चरणों की धोवन (जल) पी लेने से रोगी, अकबर के देवदूत-सदृश चमत्कार से ठीक हो जाते हैं।" उसी पृष्ठ पर लिखी हुई पदटीप में तत्कालीन वृत्त-लेखक बदायूँनी के उल्लेखानुसार कहा गया है कि इस विशेष प्रकार का अपमानजनक व्यवहार केवल मात्र हिन्दुओं के लिए ही सुरक्षित था। बदायूँनी कहता है—"यदि हिन्दुओं के अतिरिक्त और लोग आते तथा किसी भी मूल्य पर अकबर की भक्ति की इच्छा प्रकट करते, तो अकबर उनको झिड़क देता था।"

पूर्णरूपेण दुरवस्था तथा अत्यन्त दीना-हीना होने पर सर्वस्व अपहृता महिलाएँ यातना-ग्रस्त हो अन्तिम उपाय के रूप में ही अकबर के चरणों में अपने बच्चों को लिटा देती थीं तथा दया की भीख माँगती थीं। जैसा-कि ऊपर पहले ही देखा जा चुका है, अनेक रूपों में दमन की प्रक्रिया नित्य-प्रति की बात होने के कारण, अकबर के दरबार के द्वार पर महिलाओं और बच्चों की अपार भीड़ हुआ करती थी। किन्तु अकबरी दरबार के धूर्त सरदारों ने उन पादरियों को इसकी व्याख्या में ऐसे

समझाया मानो अकबर को महान् फकीर मानकर वे उसका आशीर्वाद लेने के लिए एकत्र हों। आशीर्वाद के लिए तो वे निश्चय ही प्रार्थना करते थे, किन्तु उस भावना ने नहीं, जिस भावना के साथ इसका छद्म-पूर्वक सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। उन लोगों के ऊपर बीत रहे उत्पीड़न तथा नारकीय-यातना से मुक्ति के लिए वे महिलाएँ एवं बच्चे कुछ छुटकारा चाहते थे।

अकबर द्वारा अनेक राजपूत महिलाओं से विवाह को बहुधा तोड़-मरोड़ कर उसकी तथाकथित सहयोग और सहनशीलता की भावना के भव्य उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह जले पर नमक छिड़कना तथा कामुकता (लम्पटता) को प्रोत्साहन देना ही है। यह भली-भाँति ऊपर दिखाया जा चुका है कि अकबर अपने सम्पूर्ण राज्य को बड़ा भारी हरम समझता था, तथा सभी पराभूत नरेशों की महिलाओं को, उन नरेशों पर जोर-जबरदस्तीकर उन्हें बाध्यकर अपने अधीन कर लेता था। अपने शिकार व्यक्तियों का पूर्ण तिरस्कार करने के लिए यह उसके अनेक उपायों में से एक था। हिन्दू-महिलाओं को बलपूर्वक अपने हरम में ठूँस लेना सभी आक्रमणकारियों की घृण्य अधमाधम परम्परा रही है। अनेक कारणों से अकबर की इस ओर विशेष रुझान थी। अत: इस बात को विशेष गुण कहकर प्रस्तुत करना उस भ्रष्टता, मिथ्यावाद और वाक्छल की पराकाष्ठा है, जिससे भारतीय इतिहास बुरी तरह ग्रस्त है।

क्या अकबर ने अपने घर की एक भी (मुगल) महिला कभी किसी हिन्दू को विवाह में दी?

अकबर के शासन के वर्णनों के सम्बन्ध में जिस सफेद झूठ को बार-बार दुहराया जाता है, वह यह है कि उसने जान-लेवा जिजिया-कर समाप्त करवा दिया था। यह कर भारत के विदेशी-मुस्लिम-शासकों द्वारा यहाँ की बहुसंख्यक हिन्दू-प्रजा पर इस आधार पर लगाया जाता था कि भारत मुस्लिम देश था, तथा चूँकि उदारता एवं सहिष्णुता की भावना से ही शासन ने यहाँ की बहुसंख्या को शासक के धर्म से इतर धर्म को चालू रख सकने की छूट दे रखी थी, इसलिए जनता को उस (शासक) की सहिष्णुता के लिए जैसे भी हो यह कर देना ही चाहिए। इस प्रकार यह धार्मिक-भेद छिपाने के लिए घूस एवं डकैती के अतिरिक्त कुछ नहीं था, जिसे शासक-

वर्ग ने, अपनी असहाय प्रजा पर बलात ठूँस दिया था।

जिजिया से मुक्ति दिलाने वाला तो दूर, अकबर तो स्वयं इसको पूर्ण बदले की भावना से वसूल करता था। रणथम्भोर की सन्धि की एक शर्त में बूँदी के शासक को जिजिया-कर से विशेष छूट देने की व्यवस्था की गई थी। (पृष्ठ १२० पर वर्णित) जैन मुनि हीरविजय सूरि की यात्रा के सम्बन्ध में हम सुनते हैं कि उसने फिर जिजिया-कर से मुक्ति के लिए कहा था। ये बातें सिद्ध करती हैं कि जिजिया-कर से विशेष छूट पाने के लिए प्रार्थना करने को लोग बार-बार बाध्य होते थे। इससे भी बढ़कर बात यह है कि अकबर ने यदा-कदा आए किसी आगन्तुक को कदाचित् यह विश्वास दिलाकर वापस भी भिजवा दिया हो कि उसको जिजिया से विशेष छूट मिल जाएगी, तो भी अब हम अकबर के उन ढंगों को पर्याप्त रूप से जानकर विश्वास करने लगे हैं कि यह वाक्छली धूर्त यजमान द्वारा दिया गया केवल थोथा आश्वासन मात्र था।

भारतीय इतिहास में प्रस्तुत किये जा रहे देवदूत के रूप की तो बात ही क्या, अकबर तो, कदाचित्, विश्व भर में सबसे घृणित व्यक्ति था। उसके प्रति रोष इतना अधिक था कि स्वयं उसके अपने लड़के जहाँगीर सहित असंख्य लोगों ने अकबर की हत्या का प्रयत्न किया था।

स्मिथ ने २२०वें पृष्ठ पर वर्णन किया है : "सन् १६०२ के पूरे वर्ष भर शाहजादा सलीम अपना दरबार इलाहाबाद में लगाता रहा, तथा अपने अधीन किए गए प्रान्तों का स्वयं शाही बादशाह बना रहा। बादशाहत पर अपने दावे का बलपूर्वक प्रदर्शन उसने सोने और ताँबे के सिक्के चलाकर किया; और उसने अपनी धृष्टता का प्रकटीकरण भी उन दोनों सिक्कों के नमूने अकबर के पास भेजकर किया। अकबर के साथ सन्धि-समझौते की बात करने के लिए अपने दूत के रूप में उसने अपने सहायक दोस्त मोहम्मद को काबुल भेजा।" २३७वें पृष्ठ पर स्मिथ हमें बताता है, कि यदि जहाँगीर का विद्रोह सफल हो जाता तो उसके पिता की मृत्यु विद्रोह का निश्चित परिणाम थी। अकबर की मृत्यु से सम्बन्धित पृष्ठ २३२ पर दी गई पदटीप में कहा गया है "कि यह निश्चित है कि जहाँगीर ने अत्यन्त उग्रतापूर्वक अपने पिता की मृत्यु की कामना की थी।"

पृष्ठ १९१ पर पदटीप में कहा है : "सन् १५९१ में ही जब अकबर

पेट-दर्द एवं मरोड़ से पीड़ित था, तब उसने अपना संदेह स्पष्ट किया था कि हो सकता है उसके बड़े लड़के ने जहर दे दिया हो। ताज की इन्तजारी करते रहने से व्यग्र उसके लड़के ने तख्त के लिए अकबर के विरुद्ध की जाने वाली लड़ाई में पुर्तगाली सहायता उपलब्ध करने की कामना की थी।"

स्मिथ पृष्ठ २७६ पर पाठकों को बताता है : "अकबर के सम्मुख प्रायः एक न एक विद्रोह उपस्थित रहता ही था। फौजदारों द्वारा संक्षेप में वर्णित तथा प्रान्तों में अव्यवस्था फैलाने के अलिखित अवसर अवश्य ही असंख्य रहे होंगे।"

अकबर ने अपने समर्थकों में, जिन्होंने एक-एक कर उसके विरुद्ध विद्रोह किया, बैरमखाँ, खान जमन, आसफ खाँ (उसका वित्त मंत्री), शाह मंसूर तथा सभी मिर्जा लोग थे—वे मिर्जा लोग जिनका शाही-परिवार से रक्त-सम्बन्ध था।

२५०वें पृष्ठ पर स्मिथ ने इतिहासकार ह्वीलर के इस कथन का उल्लेख किया है कि अकबर ने सवेतन एक कर्मचारी रखा हुआ था, जिसका कर्तव्य अकबर से अति अप्रसन्न व्यक्ति को जहर खिला देना भर था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार अकबर की मृत्यु जहर की उन गोलियों को भूल से स्वयं खा लेने से हुई थी, जो उसने मानसिंह के लिए रखी हुई थीं।

२४९वें पृष्ठ पर स्मिथ ने उन लोगों की सूची दी है जिनको अकबर ने छद्म रूप में फाँसी अथवा विष द्वारा मौत के घाट उतार दिया था।

(१) सन् १५६५ में ग्वालियर में कामरान के बेटे का वध।

(२) मक्का से वापस आए हुए मख्दुमे-मुल्क और शेख अब्दुरनबी की अत्यन्त संदिग्धावस्था में मृत्यु। इकबालनामा में स्पष्टोक्ति है कि शेख अब्दुर नबी को अकबर के आदेशों के पालन-हेतु अबुल फजल द्वारा मार डाला गया था।

(३) उसी समान रूप में मासूम फरंगुदी की सन्देहास्पद मृत्यु।

(४) मीर मुइज्जुल-मुल्क तथा एक और व्यक्ति की नाव दलदल में फँस जाने के फलस्वरूप मृत्यु।

(५) एक के बाद एक उन सभी मुल्लाओं को अकबर ने मौत के

पास भेज दिया जिनपर उसे शक था (बदायूंनी, भाग २, पृष्ठ २८५)।

(६) रणथम्मोर दुर्ग में हाजी इब्राहीम की रहस्यमय मृत्यु।

ऊपर दी गई सूची में, मैं बैरम खाँ और जयमल की मृत्यु भी सम्मिलित करना चाहूँगा क्योंकि जयमल की पत्नी की ओर आकृष्ट हुए अकबर के इशारे पर ही यह मृत्यु-कांड घटा होगा, क्योंकि दोनों की मृत्यु के समय की परिस्थितियों से ऐसा ही प्रतीत होता है।

अकबर द्वारा दिए गए दण्डों का स्मिथ ने २५०वें पृष्ठ पर 'अत्यन्त भयावह' प्रकार का वर्णन किया है। मृत्यु-दण्ड के साधनों में सम्मिलित प्रकारों में थे—सूली पर चढ़ाना, हाथियों के पैरों तले रौंदवाना, गर्दन उड़ाना, सूली पर लटकाना तथा अन्य प्रकार के मृत्यु-दण्ड। दण्ड के छोटे रूपों में अंगच्छेदन तथा भयानक कोड़ों की मार का आदेश सामान्य रूप में दिया जाता था। नागरिक अथवा अपराधी कार्रवाइयों के कोई अभिलेख नहीं लिखे जाते थे। न्यायाधीशों का कार्य संपन्न करने वाले व्यक्ति कुरान के नियमों का पालन करना पर्याप्त समझते थे। पुराने ढंग से निरपराधिता का निर्णय करने को अकबर ने प्रोत्साहित किया। दक्षिण केनसिंगटन में अकबरनामा के समकालीन उदाहरणों में से एक में वध-स्थल की भयानकता का वास्तविक मूर्त रूप चित्रित किया गया है।

अकबर का समकालीन मनसर्रट कहता है, "अकबर पर्याप्त कृपण तथा धन को बचाए रखने वाला था।" पृष्ठ २४३ पर स्मिथ कहता है : "बादशाह स्वयं को सारी प्रजा के उत्तराधिकारी के रूप में समझता था, तथा मृतक की सम्पूर्ण सम्पत्ति को निष्ठुरतापूर्वक ग्रहण कर लेता था। बादशाह की कृपा पर मृतक के परिवार को फिर से काम-धंधा चालू करना पड़ता था (पृष्ठ २५२)। अकबर व्यापार का क्रियाशील व्यक्ति था, न कि भावुक जनसेवक…तथा उसकी सम्पूर्ण नीतियाँ सत्ता और वैभव के अधिग्रहण के प्रयोजन से निर्दिष्ट होती थीं। जागीर, अश्वपालन आदि की सभी व्यवस्थाएँ इसी प्रयोजन से की जाती थीं…अर्थात् ताज की शक्ति, यश तथा वैभव की अभिवृद्धि।"

यद्यपि अकबर की माता अकबर से केवल वर्ष भर पूर्व ही मरी थी …अर्थात् अकबर जब विजय कर चुका था तथा बहुत अधिक सूदखोरी और दमन-चक्र से विपुल धनराशि संग्रहीत कर चुका था, तब भी वह

उसकी मृत्यु-समय की इच्छा का अवमानन करने एवं उसकी समस्त सम्पत्ति हड़प कर जाने का लोभ संवरण न कर सका। इसका वर्णन करते हुए स्मिथ ने पृष्ठ २३० पर कहा है : "मृता अपने घर में एक बड़ा भारी कोष एवं वसीयतनामा छोड़ गई थी जिसमें आदेश था कि वह कोष उसके पुरुष वंशजों में बाँट दिया जाय। उसकी सम्पत्ति को अधिग्रहण करने की अकबर की धनेच्छा इतनी तीव्र थी कि वह उसकी सम्पत्ति का लोभ संवरण न कर सका, और अपनी मृता माँ की वसीयत की शर्तों का ध्यान किये बिना ही उसने सारी सम्पत्ति स्वयं अधिग्रहीत कर ली।"

मुस्लिम-पूर्व भारतीय शासकों के वर्णनों से ग्रहीत यश-गाथाओं से भारत के अन्य देशी शासकों को विभूषित करने के लिए भारत के अपभ्रंश इतिहास में प्रारम्भ से ही भरसक प्रयत्न किया गया है। ऐसे ही अपभ्रंश कथा का एक उल्लेखनीय उदाहरण अकबर के राज्य के वर्णनों में मिलता है। महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है, उसी की नकल करते हुए भारत के मध्यकालीन इतिहास में जोड़ दिया गया एक भ्रामक तत्त्व यह है कि अकबर के पास भी ऐसे ही विशेष प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों का समूह था, जिनको अकबर के दरबार के 'नवरत्न' कहते थे। अकबर उनको मूर्खों के समूह से अधिक कुछ नहीं समझता था…यह अकबर द्वारा उल्लेख किए गये उस विशिष्ट संदर्भ से स्पष्ट है जिसमें वह (पृष्ठ २५८) पर कहता है : "यह भगवान् की अनुकम्पा ही थी कि मुझे कोई योग्य मन्त्री न मिला था, अन्यथा लोग यही समझते कि मेरे उपाय उन लोगों के द्वारा ही निर्धारित थे।"

इतना ही नहीं, इतने अधिक प्रचारित व्यक्ति भी किसी योग्य न थे। टोड़रमल जनता से धन वसूल करने की उस प्रणाली के निर्माण में लगा हुआ था, जिसमें उनसे धन-वसूली के लिये उनको कोड़े लगाए जाते थे अन्यथा उन्हें अपनी पत्नी तथा बच्चे बेचने पड़ते थे। अबुल फजल 'निर्लज्ज चापलूस' का काला टीका माथे में लगा चुका था और स्वयं शाहजादा सलीम द्वारा मरवा डाला गया था। अकाल-मृत्यु प्राप्त फैजी मामूली-सा कवि था जिसको एक ऐसे दरबार में ढकेल दिया गया था

जहाँ परले दरजे की परान्नभोजी चापलूसी प्रचलित थी। उसके सम्बन्ध में स्मिथ ने पृष्ठ १३०-१३२ पर कहा है : "ब्लोचमन ने कहा है कि दिल्ली के अमीर खुसरो के पश्चात् मुहम्मदी भारत में फैजी से बढ़कर 'कोई अन्य कवि नहीं हुआ है'... ब्लोचमन के निर्णय की न्याय्यता को स्वीकार करते हुए मैं केवल यही कहता हूँ कि मुहम्मदी भारत के अन्य कवियों का स्तर अवश्य ही बहुत निम्न रहा होगा।" बीरबल युद्ध में हत हुआ। विचार किया जाता है कि उसे एक जागीर दी गई थी, जिसका सुखोपयोग उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ। उसके नाम पर सुप्रसिद्ध बुद्धि-चातुर्य, हास्य-व्यंग्य एवं हाजिर-जवाबी की कथाएँ वास्तव में किसी अज्ञात व्यक्ति का कला-कौशल है जो बीरबल के नाम एवं दरबार-संगति के नाम का लाभ उठाता था। तथाकथित वित्तमन्त्री शाह मंसूर का वध तो स्वयं अबुल-फजल ने अकबर के ही आदेश पर किया था। इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक यह एक ऐसी दुःखान्त कथा है कि ये सुप्रचारित नवरत्न ऐसे असहाय व्यक्ति सिद्ध होते हैं जो एक भ्रष्ट एवं दमनकारी प्रशासन के नारकीय यन्त्र में ग्रस्त थे।

अपनी महिलाओं, पुत्रों तथा भाई-भतीजों की प्रमुख संख्या अकबर की सेवा में नियुक्त कर देने के पश्चात् भी बदले में निंद्य व्यवहार प्राप्त होने से अपनी विपन्न स्थिति से क्लान्त हो राजा भगवानदास ने एक बार स्वयं ही अपना छुरा अपने पेट में भोंक लिया था। शराब के नशे में मस्त अकबर द्वारा एक बार मानसिंह का गला दबाया गया था, और फिर जहर भी खिलाया जाना था, किन्तु भूल से अकबर ही स्वयं वे गोलियाँ खा बैठा। मानसिंह की बहन मानबाई, पूर्ण सम्भावना यह है कि, मार डाली गयी थी, क्योंकि जहाँगीर-नामा के एक संस्करण में कहा गया है कि उसने तीन दिन तक अनशन किया था और मर गई, किन्तु दूसरे संस्करण में लिखा है कि उसने विष खा लिया और मर गई। यह भली-भाँति ज्ञात है कि किसी के मरने के लिए तीन दिन का अनशन पर्याप्त नहीं है; इसके साथ ही जहाँगीरनामा स्वयं भी झूठ का पिटारा कुख्यात है। स्वयं जहाँगीर भी अत्यन्त क्रूर तथा कुमन्त्रणाकारी बादशाह माना जाता है जिसने अपने बाप को जहर दिया, नूरजहाँ के प्रथम शौहर शेर अफगन को मरवा डाला तथा जो जीवित व्यक्ति की खाल खिचवाने के

दृश्य को अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक देख सकता था।

अकबर के दरबार के एक चित्रकार दसवन्त ने अपनी हत्या छुरा भोंककर कर ली थी। हिन्दुओं द्वारा ऐसी समस्त आत्महत्याएँ, तत्कालीन मुस्लिम अभिलेखों में, पागलपन के दौरों में की गई वर्णित हैं। यह वर्णन दूसरे रूप में शब्दशः सत्य है'''अर्थात् मुगल दरबारों में स्थिति इतनी असह्य थी कि अपने जीवन, सम्मान, महिलाओं, घर की पवित्रता तथा धार्मिक-मान्यताओं के अपहरण से विक्षुब्ध हिन्दू लोग भग्नाशा, पागलपन तथा मृत्यु को प्राप्त होते थे। प्रजा की खाल उतार लेने वाली कर-व्यवस्था की रचना कर टोडरमल ने यद्यपि अपनी आत्मा को अकबर के हाथों बेच दिया था, तथापि उसके भी उस पूजास्थल को (अकबर द्वारा) हटवा दिया गया, जिसमें वे मूर्तियाँ भी सम्मिलित थीं जिनकी वह पूजा करता था, और हिन्दू के नाते अत्यन्त श्रद्धा रखता था। उन दिनों के रूढ़िगत हिन्दू को, जबकि स्वयं उसके ही घरेलू लोग भी बिना स्नान किये तथा बिना पवित्र परिधान धारण किये उसकी मूर्तियों का स्पर्श नहीं कर सकते, तब मूर्ति-पूजा के विरोधी मुस्लिमों द्वारा बिना आगा-पीछा सोचे उन मूर्तियों को हटा दिया जाना मृत्यु समान अपवित्रीकरण ही था। फिर भी, ऐसे कार्य अकबर द्वारा करवाए जाते थे। इनके शिकार होने से टोडरमल आदि जैसे व्यक्ति भी अछूते न रहे थे, जिन्होंने अकबर की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन, सम्मान गिरवी रख दिया था, तथा उसको गँवा भी बैठे थे। इसी से विक्षुब्ध हो जाने पर टोडरमल ने त्यागपत्र दे दिया था और वह बनारस चला गया था।

५८वें पृष्ठ पर स्मिथ कहता है : "अकबर तब प्रयाग की ओर गया और वहाँ से बनारस'''जिसको उसने पूर्णरूप से ध्वस्त कर दिया क्योंकि लोग इतने उत्तेजित थे कि उन्होंने अपने द्वार बन्द कर लिये थे।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयाग में नदी के घाट तथा पुराने भवन क्यों नहीं हैं। आज प्रयाग (इलाहाबाद) में जो कुछ भी है, वह अधिवक्ताओं के विक्टोरियन बंगले ही हैं। उनके अतिरिक्त, इलाहाबाद पूर्णरूप में उजाड़ दृश्यमान होता है। इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं है कि पुरानी पुण्य नगरी होने के कारण, भव्य किले के साथ प्रवाहित होने वाली यमुना और गंगा के दोनों तटों पर सुन्दरतम और ऊँचे-ऊँचे

घाट थे। बनारस में बने घाटों की छटा को निष्प्रभ करने वाले प्रयाग-स्थित भव्य उच्च घाटों को धूलि-धूसरित कर देने का पूर्ण कलंक अकबर के माथे पर ही लगेगा। यह भी हुआ हो कि प्रचलित विश्वास के विपरीत बनारस-स्थित प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ-मन्दिर सबसे पहले अकबर द्वारा ही भ्रष्ट किया गया हो, जबकि उसने वहाँ की जनता से भीषण बदला लिया। तथ्य रूप में, बदले का भी कोई प्रश्न नहीं उठता। राज-परिवार के प्रति अनन्य भक्ति के लिए भारतीय लोग परम्परागत रूप से विख्यात हैं। यदि अकबर की यात्रा अनिष्ट-शून्य रही होती, तो इसने बनारस निवासियों के हृदयों में गहनतम श्रद्धा के अतिरिक्त अन्य भावनाओं को अवसर ही नहीं दिया होता। किन्तु इसी एक तथ्य से कि अकबर के विरुद्ध उन निवासियों ने अपने-अपने द्वार बन्द कर दिए थे, यह सिद्ध होता है कि बनारस में अकबर का प्रवेश अवश्य लम्पटता तथा सर्वग्राहिता के प्रयोजन से हुआ होगा।

हम पहले देख चुके हैं कि अकबर अपने सम्मुख सभी लोगों के पूर्ण पराभव का आग्रही था। अपने पैरों को धोने के बाद उस जल को अन्य लोगों को पीने के लिए उसने जनता को बाध्य किया। गुप्त प्रार्थना के पश्चात् बचा हुआ जल भी उसने अन्य लोगों को पिलाया। तत्कालीन एक अंग्रेज प्रवासी राल्फफिच ने उल्लेख किया है कि "अकबर के दरबार के अंग्रेजी जौहरी लीड्स को एक मकान और ५ गुलाम दिए गये।" पृष्ठ १४७ पर स्मिथ ने कहा है : "ईसाई पादरी आक्वावीवा को, जबतक वह दरबार की सेवा में रहा, केवल मात्र जीवनाधार खाद्य ही मिला। इसलिए विदा होते समय जो विशेष अनुग्रह उसने अकबर से चाहा, वह था एक रूसी गुलाम-परिवार को अपने साथ ले जाना (जिनमें पिता, माता, दो बच्चे तथा कुछ विशेष व्यक्ति थे जो सदैव मुसलमानों में से ही थे, यद्यपि नाम भर को वे लोग ईसाई होते थे)।"

यह प्रदर्शित करता है कि अकबर ने विभिन्न राष्ट्रियता वाले असंख्य लोग गुलाम बना रखे थे। पृष्ठ १५६ पर, स्मिथ दावे के साथ कहता है कि, "सन् १५८१-८२ के वर्षों में स्पष्ट रूप में नई पद्धति का विरोध करने वाले शेखों और फकीरों की एक भारी संख्या को अधिकतर कांधार की ओर देश निकाला दे दिया गया था, जहाँ वे संभवतः गुलाम बनाकर रखे

गये, और उनके बदले में घोड़े खरीदे गए थे।" स्मिथ ने यह भी वर्णन किया है कि शाही-दल के साथ-साथ चलने वाले हरम की स्त्रियाँ किस प्रकार स्वर्ण-रोपित पिंजरों में बन्द रखी जाती थीं। यह भी सामान्य व्यवहार था कि युद्ध के पश्चात् बन्दी बनाये गए सभी लोगों को गुलाम समझा जाता था।

अकबर द्वारा व्यवहृत तथा जिससे अत्यन्त रोष उत्पन्न हो गया था वह दासता का ऐसा विचित्र प्रकार का था जिसमें प्रत्येक घोड़े के माथे पर फूल लगाना पड़ता था। इस प्रकार जिस भी किसी के पास फूल लगा हुआ घोड़ा होता था, वह स्वतः अकबर की आधीनता में आ जाता था। राज्य भर में जहाँ भी कहीं घोड़े पाए जाते थे वे चिह्नित कर दिए जाते थे। इस प्रकार घोड़ा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख एक ओर गहरा कुआँ और दूसरी ओर भंयकर खाई थी। यदि वह व्यक्ति अकबर की पराधीनता से मुक्त होना चाहता था, तो उसके सम्मुख एक ही मार्ग था कि वह घोड़े को छोड़ दे। ऐसा करने पर उन आतंकमय दिनों में उसे अपने एक-मात्र सहारे और साधन को खो देना पड़ता था। और यदि वह व्यक्ति घोड़ा रखता ही था, तो उसके घोड़े के मस्तक पर लगा निशान उसको सदैव स्मरण दिलाता रहता था कि अत्यन्त क्रूरतापूर्ण धूर्तता के साथ वह व्यावहारिक अर्थदासत्व का शिकार हो चुका था।

अकबर के विधिहीन तथा दमनकारी शासन ने अभूतपूर्व अकाल प्रस्तुत किये। "सन् १५५५-५६ में दिल्ली विध्वंस हो गई थी तथा असंख्य मौतें हुई थीं (पृष्ठ २८८)।" बदायूँनी ने स्वयं अपनी ही आँखों से देखा था कि आदमी-आदमी को ही मार कर खा रहा था, और दुर्भिक्ष-पीड़ितों की आकृतियाँ इतनी घृण्य हो चुकी थीं कि कठिनाई से ही कोई उनकी ओर देख सकता था···सारा देश उजाड़ मरुस्थल बन चुका था, और पृथ्वी को जोतने वाले लोग ही नहीं रहे थे······भारत के समृद्धतम प्रान्तों में से एक तथा दुर्भिक्ष की आशंका से सदैव अछूता रहने के लिए प्रशंसित गुजरात में भी सन् १५७३-७४ के छः मास तक दुर्भिक्ष रहा। सदा की भाँति भुख-मरी के पश्चात् महामारी फैली, जिसके कारण धनी और निर्धन, सभी निवासी प्रदेश छोड़कर भाए गए और इधर-उधर सर्वत्र फैल गये। विशिष्ट अस्पष्टता के साथ अबुल फजल उल्लेख करता है कि सन् १५८३ और

१५८४ में वर्ष-भर सूखा पड़ जाने के कारण चूँकि दाम ऊँचे थे, इसलिये अनेक लोगों का उदर-पोषण कर पाना समाप्ति पर आ गया। (स्मिथ कहता है, कि) सन् १५९५-९८ की अवधि में हुए महान् विपत्तिकाल-का उसके द्वारा हुआ अपरिष्कृत वर्णन यदि हम ठीक से जाँचें, तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सन् १५८३-८४ का दुर्भिक्ष भयंकर था। अन्य वृत्त लेखकों द्वारा इसका उल्लेख अथवा संकेत-मात्र भी किया गया प्रतीत नहीं होता।"

"सन् १५९५ से प्रारम्भ होकर सन् १५९९ तक, तीन-चार वर्ष चलने वाला दुर्भिक्ष अपनी भयंकरता में उस दुर्भिक्ष के समान था, जो सिंहासनारूढ़ होने के वर्ष पड़ा था और अपनी दीर्घावधि के कारण उस दैवदुर्विपाक से भी बदतर था। बाढ़ें और महामारियाँ अकबर के शासन को प्रायः ग्रस्त करते थे।" (पृष्ठ २८९)।

स्मिथ ने अवलोकन किया है कि जब अकबर मरा तब केवल आगरा दुर्ग में ही यह अपने पीछे दो करोड़ स्टर्लिंग की नकद राशि छोड़ गया था। इसी प्रकार की जमा-राशि अन्य छः नगरों में भी थी, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्भिक्ष से छुटकारा दिलाने वाले कोई भी पग अकबर ने नहीं उठाए। अबुल फजल द्वारा प्रस्तुत इनके विपरीत वर्णनों को केवल मात्र चापलूसी कहकर रद्द कर दिया जाता है।

यह बिल्कुल झूठी और गलत बात है कि अकबर की राजपूत राजकुमारियों से शादियाँ साम्प्रदायिक एकता और सौहार्द्र बनाए रखने के महान् उद्देश्य का फल थीं। इस बेईमानीपूर्ण दावे का खंडन यह प्रश्न कर तुरन्त किया जा सकता है कि क्या अकबर ने भी अपनी किसी पुत्री या निकट सम्बन्धी एक भी कन्या का विवाह किसी हिन्दू से किया था?

दूसरी बात यह है कि यह मानना भी बिल्कुल बेहूदगी है कि अत्यन्त मद्यप, लम्पट और कामुक विदेशी व्यक्तियों के हाथों में अपनी महिलाएँ सौंपने के स्थान पर उनको अग्नि की भेंट चढ़ा देने वाले, जीवित ही जौहर की ज्वालाओं में होम देने वाले वीर राजपूतों को अपनी कन्याएँ अकबर और उसके सम्बन्धी लोगों को भेंट देने में किसी भी प्रकार का गर्व अनुभव होता था।

आइये, हम जयपुर राजघराने का उदाहरण लें, जिस परिवार को

अपनी अनेक कन्याएँ मुगल शासकों को सौंप देनी पड़ी थीं।

यह पूर्ण विवरण, किस प्रकार बाध्य होकर जयपुर-नरेशों को अपनी कन्याएँ मुगल बादशाहों के हरमों में भेजनी पड़ती थीं, डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव की 'अकबर महान्' नामक पुस्तक के भाग १ (एक) के पृष्ठ ६१ से ६३ पर उपलब्ध है।

भारतीय इतिहास-विद्वत्ता की मूल विपत्ति सर्वज्ञात तथ्यों से भी सही, युक्तियुक्त निष्कर्ष निकालने में संकोच अथवा अयोग्यता रही है। डा० श्रीवास्तव द्वारा वर्णित अकबर का जयपुर की कन्या को अपने अधीन कर लेना एक विशिष्ट उदाहरण है।

उस सत्य कथा को, कि किस प्रकार अकबर ने जयपुर के राजघराने को अपनी प्रिय पुत्री को मुगलों के दयनीय हरम में बुरका पहिनाकर प्रविष्ट करा देने के लिए आतंकित किया, बड़ी सावधानीपूर्वक तोड़-मरोड़कर अकबर के शयनागार के शाही चिथड़ों में संजोकर रखा गया है। इस ओझल कर दी गई कथा के ताने-बाने को हम एकत्र करेंगे।

शर्फुद्दीन अकबर के सेनापतियों में से एक था। उसने आमेर (प्राचीन जयपुर) के तत्कालीन नरेश-राजा भारमल के विरुद्ध अनेक बार आक्रमण किया। बहुत कुछ छीन-झपट लेने के अतिरिक्त शर्फुद्दीन ने भारमल के तीन भतीजे भी पकड़ लिये। इनके नाम थे—जगन्नाथ, राजसिंह और खंगर। उनको बन्धक के रूप में रखा गया, और साँभर नामक निर्जन स्थान पर क्रूर हत्या कर दिये जाने से उनको डराया-धमकाया गया। डा० श्रीवास्तव ने लिखा है, "ककहरवाहा-प्रमुख भारमल के सम्मुख सर्वनाश उपस्थित था और इसीलिए अत्यन्त असहायावस्था में उसने अकबर द्वारा मध्यस्थता और उसके साथ समझौता चाहा।" यह स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि भारमल के तीनों भतीजों की मुक्ति के लिए अकबर ने एक निर्दोष, असहाय राजकुमारी का उसके सम्मुख समर्पण करने की शर्त लगा दी थी।

इसके अनुसार ही, साँभर नामक स्थान पर राजकुमारी अकबर को सौंप दी गयी, और उसके बदले में तीनों राजकुमारों का छुटकारा संभव हो पाया। वे छूट गये। किन्तु इसके साथ-साथ बहुत बड़ी धनराशि फिर भी देनी पड़ी थी। स्पष्ट ही है कि जयपुर राजघराने की ओर से इस अपमानजनक कथा को विवाह के रूप में प्रस्तुत करना पड़ा और दण्डस्वरूप दिये

गये विशाल धन को छद्मरूप में दहेज का नाम दिया गया। किन्तु ऐसा कोई भी कारण नहीं है कि आज के विद्वान् भी उसी भ्रमजाल में फँसे रहें।

डा० श्रीवास्तव ने आगे चलकर कहा है, "सांभर में एक दिन रुकने के बाद अकबर तेजी से आगरा चला गया।" "रणथम्भोर नामक स्थान पर भारमल के पुत्रों, पौत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों का अकबर से परिचय कराया गया।" इन अस्वाभाविक विवरणों ने समस्त कथा का भंडाफोड़ कर दिया। यह तो सुविदित ही है कि १६वीं शताब्दी में राजघराने का विवाह ऐसा चहल-पहलपूर्ण कार्य था जो महीनों तक चला करता था। और फिर भी अकबर को केवल मात्र एक दिनभर रुकने के और समय ही नहीं मिला कि इस छद्म-विवाह को सुशोभित कर पाता। और यह भी स्पष्ट है कि भारमल का कोई भी सम्बन्धी उस राजकुमारी के सम्मान और कौमार्य-अपहरण के अपमानजनक समर्पण के अवसर पर सम्मिलित नहीं हुआ, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि रणथम्भोर नामक स्थान पर ही भारमल के पुत्रों, पौत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों का अकबर से परिचय कराया गया था।

यही प्रारम्भिक विवाह-विवशता थी, जिससे बाधित होकर जयपुर राजघराने को भविष्य में माँग होने पर भी अपनी कन्यायें मुगलों को सौंप देनी पड़ी थीं।

ज्यूँ ही भारमल द्वारा अपनी कन्या अकबर के सुपुर्द कर दी गयी, त्यूँ ही अकबर ने अपने सेनापति शर्फुद्दीन को इस प्रकार के दूसरे कार्य अर्थात् मेड़ता की रियासत को धूलि में मिला देने के लिए भेज दिया।

दूसरे राजपूत शासकों के घरानों से विवाह-सम्बन्ध भी इसी प्रकार की समान विवशता का परिणाम थे। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जहाँ अकबर के अनुचर मानसिंह तथा अन्य लोगों ने असहाय तथा संकोची माता-पिता की आँखों के सामने ही उनकी असहाय तथा संकोची पुत्रियों को बलात् छीन लिया था। इन अपहरणों और बलात्कारों को इतिहास में चार चाँद लगाकर वर्णन किया गया है कि ये तो शान्ति, सौहार्द्र और एकता स्थापित करने के महान् उद्देश्य से प्रेरित, अकबर द्वारा अन्तर्जातीय विवाह थे।

: ६ :

जहाँगीर

अपने पिता अकबर की भाँति, जहाँगीर भी दुराचारी शासक था। यह कथन कि अपने शासन के विषय में अपने संस्मरण लिखे, भावी पीढ़ियों को गुमराह करना है। इसपर विशेष बल देते हुए ब्रिटिश इतिहासकार स्व० सर एच० एम० इलियट का कथन है कि जहाँगीर के इस दावे के बावजूद—"यह बिना सोचे-समझे स्वीकार कर लिया गया है कि इन संस्मरणों को जहाँगीर ने स्वयं लिखा। वह ऐसा व्यक्ति न था कि इतने बड़े श्रम करने की कठिनाई उठाता।"(पृष्ठ १५५ भाग VI, इलियट एण्ड डाउसन)।

'संस्मरण' के मेजर प्राइस के संस्करण (जो कई मनगढ़न्त और काल्पनिक पाठों में से एक है) के विषय में विचार करते हुए सर एच० एम० इलियट का कथन है कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी जौहरी द्वारा, न कि किसी बादशाह द्वारा लिखा गया है, और चाँदी, सोने, बहुमूल्य पत्थरों आदि के वर्णन में मूल्यों की सूक्ष्मता एवं सत्यता तथा राशियों के अंकन में आर्मस एवं इड के कोषों को भी लज्जित करने वाला अतिरंजित वर्णन इस प्रकार की जालसाजी का अंतः प्रमाण है।

सर एच० एम० इलियट ने कई उदाहरणों के आधार पर जहाँगीर के झूठे दावे का प्रदर्शन किया है। एक स्थान पर जहाँगीर ने कहा है कि उसने राजा मानसिंह द्वारा निर्मित एक मन्दिर को ध्वस्त कर उसी स्थान पर एक मस्जिद का निर्माण करवाया, जिसमें ५,४०,००,००० रुपये की लागत लगी। एक अन्य पाठ के अनुसार यह राशि ८,००,००० मात्र थी। वास्तविकता यह थी जिसे कि सर एच० एम० इलियट भी देखने में असमर्थ रहे, कि जहाँगीर ने एक पैसा भी खर्च नहीं किया। उसने

पुरोहितों की सामूहिक हत्या कर दी, मंदिर की गायों को मार डाला, मूर्त्ति को बाहर फिकवा दिया और आदेश दिया कि मन्दिर को मस्जिद के रूप में प्रयोग में लाया जाय। इसी प्रकार का सत्य मध्यकालीन सभी मस्जिदों के साथ जुड़ा हुआ है। व्यय केवल मूर्त्तियों को उखाड़ने एवं विकृत करने में किया गया, और उसकी भी क्षतिपूर्ति भयभीत हिन्दुओं पर कर लगाकर की गई थी।

जहाँगीर के इस दावे का कि सोने की जंजीर लटकती रहती थी, जिसको खींचकर प्रार्थी न्याय प्राप्त कर सकता था, खण्डन करते हुए सर इलियट ने लिखा है, "व्यर्थ की न्याय की जंजीर जिसके विषय में बादशाह ने लिखा है कि यमुना तट पर आगरे में एक पाषाण स्तम्भ में लटकी रहती थी कभी भी नहीं खींची गयी और सम्भवतः दिखावे के अतिरिक्त उसका अन्य कोई उद्देश्य नहीं था। यह प्रथा दिल्ली के राजा अनंगपाल का अनुकरण मात्र थी।" (पृष्ठ २६२)। इससे प्रतीत होता है कि मुगलों ने अपने दुराचारों पर पर्दा डालने के लिए श्रेष्ठ राजपूतों की प्रथा को लिया और राजपूत वैभव का अनुचित प्रयोग किया।

इस प्रकार विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न अंग्रेज इतिहासकार ने जो जहाँगीर के निर्लज्जतापूर्ण लेखों तथा इतिहासकारों का भण्डा-फोड़ किया है, जिन्होंने इन दुःखदायी दुर्व्यवहारों एवं हत्याओं से पूर्ण इस राज्यकाल के विषय में आने वाली पीढ़ी को गुमराह करने का प्रयत्न किया है।

राजकुमार सलीम जो अकबर की मृत्यु के पश्चात् बादशाह जहाँगीर के नाम से जाना जाता है, फतहपुर सीकरी में ३० अगस्त, १५५६ को पैदा हुआ। उसका जन्म फतहपुर सीकरी में हुआ, यही इस बात का प्रमाण है कि इसे अकबर ने बाद में नहीं बनवाया। इसमें पहले से ही शाही भवन थे, जिसमें अकबर की बेगमें अन्तःवास कर सकती थीं और शाही सुविधायें उपलब्ध थीं। यह उस व्यक्ति का जन्मस्थल था, जो कि शराबी एवं स्त्रीरत हुआ।

सर एच० एम० इलियट ने बताया है कि जहाँगीर के 'संस्मरण' के एक अन्य पाठ के अनुसार कोई इस प्रकार का वर्णन हो जिससे उसका शराबी होना लग सके और अपने भाई दीनदयाल की इस अभद्र आदत (शराब पीना) का उल्लेख करते हुए धर्म की दुहाई भी दी गई है, जबकि

वास्तविक 'संस्मरण' से पता लगता है कि जहाँगीर अपने पितामह बाबर की ही भाँति शराबी था। इसे स्वीकार करने में संभवतः वह लज्जित हो गया। पृष्ठ २६०, इससे पता लगता है कि बाबर एक असाधारण पियक्कड़ था और जहाँगीर ने तो अपने पितामह को भी मात कर दिया था।

जहाँगीर बचपन से ही हत्यारा था। उसके पिता अकबर का एक घृणित व्यक्ति होना इस बात से प्रमाणित होता है कि उसके निकट सम्बन्धी (मिर्जा परिवार), संभवतः उसके सभी सेनापति तथा उसका अपना पुत्र जहाँगीर बार-बार उसके विरुद्ध विद्रोह करते रहे। जहाँगीर अकबर से इतनी घृणा करता था कि १५८१ में जबकि 'वह' मात्र २२ वर्ष का था उसने अकबर को विष दे दिया। अकबर अत्यन्त दर्द से तड़प रहा था और पागलपन की स्थिति में कहा, "ओ, शेकू बाबा, आपने मुझे विष क्यों दिया ? अगर आपको राजगद्दी चाहिए थी तो मुझसे कहते।"

शुक्रवार, १२ अगस्त, १६०२ को सलीम उर्फ जहाँगीर ने अकबर के दरबार के तथाकथित रत्न अब्बुलफजल की हत्या कर दी। इस हत्या के प्रसंग में जहाँगीर ने कहा है, "शेख अब्बुलफजल ने अपने को स्वामिभक्ति के रत्न से बाह्य रूप से सज्जित कर रखा था, जिसे वह मेरे पिता के हाथ ऊँची कीमत पर बेचता था। उसको दक्खन से बुलाया गया; और चूँकि भावनायें मेरे प्रति दुर्भावनापूर्ण थीं अतः यह आवश्यक हो गया कि उसे दरबार तक पहुँचने से रोका जाय। रास्ते में वीरसिंह देव का राज्य पड़ता था अतः उनको मैंने एक संदेश में कहा कि अच्छा होगा कि वह उसको रोक कर उसकी हत्या कर दे और पुरस्कार के रूप में मैं उन पर हर प्रकार से मेहरबान रहूँगा। भगवान की कृपा से जब अब्बुलफजल राजा वीरसिंह देव के राज्य से होकर जा रहा था, राजा ने उसका रास्ता रोक दिया और बहुत थोड़ी लड़ाई के पश्चात् उसके आदमियों को मार भगाया और उसको मार डाला। उसके सिर को मेरे पास इलाहाबाद भेज दिया। मैंने इसे अजीब प्रसन्नता से स्वीकार किया और हर प्रकार से लज्जाजनक अपमान किया।" (क्रिसेण्ट इन इण्डिया, एस०आर० शर्मा, पृ० ३८३)।

एक या दो वर्ष बाद जहाँगीर ने एक अन्य हत्या की। इस हत्या की शिकार एक हिन्दू स्त्री मानबाई थी, जो मानसिंह की बहन और जयपुर शाही परिवार की कन्या थी। 'जहाँगीरनामा' के एक पाठ में कहा गया

है कि वह तीन दिन के अनशन के उपरान्त मर गयी। यह तथ्य है कि कोई स्त्री या पुरुष तीन दिन के अनशन से नहीं मर सकता है। एक अन्य पाठ के अनुसार उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली। समकालीन इतिवृत्त में इसको विविध रूप से बताया गया है और उसकी मृत्यु राजमहल की एक सहेली से अथवा जहाँगीर स्वयं से झगड़े ही के परिणामस्वरूप हुई। जहाँगीर से झगड़े की बात अधिक विश्वसनीय है क्योंकि वह अपने पिता की भाँति दिन दहाड़े बलात्कार पूर्ण हत्याएँ किया करता था। यदि मानबाई की हत्या न की गयी होती तो उसकी मृत्यु की जाँच-पड़ताल भी अवश्य की जाती। किन्तु न अकबर और न ही जहाँगीर ने इस प्रकार का प्रयत्न किया, जिससे पता लगता है कि मानबाई की मृत्यु अकबर और जहाँगीर के संयुक्त षड्यंत्र के परिणामस्वरूप हुई अथवा जहाँगीर ने अकेले ही यह कार्य किया। इसी हत्या का परिणाम था कि अकबर की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व मानसिंह ने अपने बहनोई का पक्ष न लेकर शाहजादे खुसरो (जहाँगीर का मानबाई से पुत्र) को गद्दी पर बिठाने का यत्न किया।

गुप्तरूप से अकबर को विष देकर मारने और तानाशाही दुर्व्यवहारों के हेतु राजसत्ता हथियाने में असफल होकर जहाँगीर ने अकबर का खुल्लम-खुल्ला विद्रोह किया। १५९८ के प्रारम्भ में अकबर ने उसे ट्रांसोक्सियाना पर चढ़ाई के लिए कहा परन्तु जहाँगीर ने जाने से इंकार कर दिया। कुछ ही समय पश्चात् जहाँगीर को दक्खन में शाही दरबार का कार्य भार सँभालने का आदेश हुआ किन्तु प्रस्थान के समय वह अनुपस्थित रहा और अपनी नियुक्ति कराने में सफल रहा।

डा० श्रीवास्तव लिखते हैं, "मई, १५८९-१५९८ के बीच अकबर शाहजादे सलीम से दूर रहा और विद्रोह के बीज शाहजादे के मस्तिष्क में उगने लगे। आयु में बड़ा होने के साथ-साथ वह भोगप्रियता, मदिरा तथा युवावस्था सम्बन्धी अन्य बुराइयों में पड़ने लगा। यद्यपि उसका हरम बहुत बड़ा था फिर भी वह १५९६ में जैनखान कोका की लड़की पर बुरी तरह आसक्त हो गया। ऐसा सम्भव है कि शाहजादे की मेहरुन्निसा (भावी नूरजहाँ) और अनारकली सम्बन्धी कहानियाँ बे सिर-पैर की नहीं थीं। कुसंगति, मदिरापान तथा आत्मश्लाघा से बचाने के लिए उसे मेवाड़ के राणा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया तो उसने अपना बहुत समय

अजमेर में बिताया। अकबर की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर सलीम ने खुल्लमखुल्ला विद्रोह का निश्चय किया। उसने शीघ्र ही अजमेर से आगरे की ओर कूच किया और एक करोड़ की नकद समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली।" (पृ० ४६२, अकबर, दि ग्रेट)।

प्रो० एस०आर० शर्मा लिखते हैं, "१६०० में उस्मान खाँ नामक एक अफगान सरदार ने बंगाल में बगावत कर दी और सलीम को पूर्वी प्रान्तों की ओर जाने को कहा गया पर उसने इलाहाबाद में रहना अधिक पसंद किया और बिहार की बहुत अधिक भूमिकर की राशि (जोकि ३० लाख से कम नहीं थी) इधर-उधर कर दी तथा अपने कुछ समर्थकों को जागीरें दे दीं। सलीम के इस दुर्व्यवहार के परिणामस्वरूप अकबर को असीरगढ़ की विजय के अभियान को समाप्त कर शीघ्र उत्तर की ओर बढ़ना पड़ा। अकबर मई, १६०१ में आगरे पहुँचा, और सलीम के तीस हजार घोड़ों के साथ दरबार में आने का समाचार सुना और वास्तव में वह राजधानी से केवल ७३ मील दूर इटावा तक पहुँच आया था। इसपर अकबर ने उसे इलाहाबाद लौटने का आदेश दिया, और बंगाल और उड़ीसा का शासक बना दिया। सलीम इलाहाबाद में ही रहता रहा, अपने नाम के सिक्के चलाये और उनके नमूने अकबर के पास भेजने की भी धृष्टता की।" (पृ० ३८२, क्रिसेण्ट इन इण्डिया)।

डा० श्रीवास्तव का कहना है, "इलाहाबाद लौटने पर सलीम फिर अपनी आत्मश्लाघा तथा मदिरा-पान जैसी पुरानी प्रिय आदतों में खो गया। अयोग्य साथियों से घिरे होने के कारण वह अत्यधिक चाटुकारिक भी हो गया था। वह वर्षों तक इन बुराइयों से परिचित रहा था। किन्तु अब वह सीमा से अधिक बढ़ गया। वह शराब का इतना आदी हो गया कि उससे उसे नशा नहीं होता था, अतः उसने शराब के साथ अफीम का भी सेवन प्रारम्भ कर दिया। उसने १८ वर्ष की अवस्था से मदिरापान प्रारम्भ किया और इस समय तक वह मदिरा के बीस प्याले पी लेता था। अफीम और शराब के दोहरे नशे में वह कभी-कभी साधारण अपराधों के लिए भी प्राणदण्ड दे देता था। एक दिन शराब के नशे में अपने सामने एक समाचार लेखक को जिन्दा ही आग में फिंकवा दिया। उसने एक भृत्य का नपुंसकीकरण करवा दिया और एक घरेलू नौकर को डण्डे से

पिटवाकर हत्या कर दी।"

अप्रैल, १६०३ के आसपास अकबर ने सलीम को मनाने का प्रयत्न किया। अकबर ने अपनी पगड़ी उतारकर शाहज़ादे सलीम के सिर पर रख दी जिसका सांकेतिक अर्थ सलीम को भावी बादशाह स्वीकार करना था, किन्तु इसका भी कोई लाभ नहीं हुआ। जब उसे राणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह के विरुद्ध जाने का आदेश दिया गया तो वह विलास एवं भोग-प्रिय जीवन व्यतीत करने के लिए इलाहाबाद चला गया और अकबर के विरुद्ध विद्रोह करता रहा। दोनों एक-दूसरे के दरबार में अपने-अपने राजदूत रखते थे। अपने विद्रोही पुत्र को शान्त करने के लिए अकबर १६०४ में आगरे से इलाहाबाद के लिए रवाना हुआ पर माँ की मृत्यु का समाचार पाकर उसे आधे रास्ते से ही लौटना पड़ा। अपनी दादी की मृत्यु के शोक को प्रकट करने के लिए सलीम आगरे आया। जब सलीम ने अभिवादन करने से आनाकानी की तो तब अकबर ने उसे एक कमरे में ले जाकर उसकी क्रूरता, विद्रोह एवं अवज्ञा के लिए पितृदण्ड के रूप में कई चाँटे लगाये, जिनकी प्रतिध्वनि भी सुनाई पड़ी।

अकबर अब स्वयं बीमार रहने लगा। यह भी हो सकता है कि जहाँगीर ने उसे फिर विष दिला दिया हो, किन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि अकबर स्वयं एक घातक विष देने वाला था और उसने कुछ विषैली गोलियाँ मानसिंह को मारने के लिए तैयार करायी थीं पर भूल से मानसिंह की विषैली गोलियों को वह स्वयं खा गया और अपने लिए तैयार की गई विषहीन गोलियों को मानसिंह को दे दिया।

मानसिंह तथा कुछ अन्य सरदारों ने जहाँगीर को बन्दी बनाने की योजना बनायी, जिससे वह राजगद्दी पर बैठ न सके। इसके अतिरिक्त वे जहाँगीर के पुत्र खुसरो को बादशाह बनाना चाहते थे। खुसरो और जहाँगीर एक-दूसरे के प्रति गाली-गलौज भी करते रहते थे। इससे प्रतीत होता है कि जहाँगीर से उसके पिता तथा पुत्र कितनी घृणा करते थे। अपने अपहरण की योजना के विषय में अपने समर्थकों से सूचना पाकर जहाँगीर अपने पिता से उसकी मृत्यु के समय भी दूर रहा।

आगरा से ६ मील दूर सिकन्दरा में एक हड़पे गये हिन्दू महल में अक्तूबर, १६०५ में उसका देहान्त हो गया और वहीं इसे दफना दिया

गया। इसका अन्तिम संस्कार गुप्त रूप एवं निरुत्साह से किया गया, ऐसा डा० वी० स्मिथ का मत है। इसका अर्थ है कि अकबर उसी महल में, जहाँ उसकी मृत्यु शय्या थी, दफनाया गया। इस तथ्य को छिपाने के लिए मुस्लिम इतिवृत्तों ने कहानी गढ़ ली है कि अकबर ने अपनी मृत्यु का पूर्वानुमान करके अपनी कब्र बनवाई थी, जबकि जहाँगीर ने झूठा दावा किया है कि उसने अपने पिता की कब्र बनवायी। दोनों के बीच स्पष्ट विरोधाभास इस बात का प्रतीक है कि अकबर भी अन्य मुसलमान शासकों की तरह हड़पे हुए हिन्दू महल में दफनाया गया।

जहाँगीर ३६ वर्ष की आयु में बृहस्पतिवार, २४ अक्तूबर १६०५ को आगरे के प्राचीन हिन्दू-लालकिले में गद्दी पर बैठा। यह तिथि लगभग ही है क्योंकि मुस्लिम इतिहास में सम्भवतः ही कोई तिथि हो जो विवादास्पद न हो। चूँकि मुस्लिम इतिवृत्त अधिकतर युद्धप्रिय, कट्टरपंथी एवं प्रशंसन-शील वर्णनों से पुरित हैं अतः इनमें उल्लिखित कथन एवं तिथियाँ विश्वस-नीय नहीं हो सकतीं।

जहाँगीर के विषय में अनेक झूठी बातें कही जाती हैं कि वह अपने पिता की स्मृति से बड़ा स्नेह रखता था, सन्तों का सम्मान करता था, प्रशासन के उच्च सिद्धान्तों को ध्यान में रखता था, मद्यपान से बहुत घृणा करता था, आदि-आदि।

सर एच० एम० इलियट इसे गलत बताते हैं कि जहाँगीर का शासन किन्हीं उच्च सिद्धान्तों पर आधृत था। इलियट जहाँगीर के इस दावे का, कि बिना वैधानिक ढंग के वह किसी की कोई वस्तु नहीं लेता था, खण्डन करते हुए कहते हैं कि जब शाहजादे परवेज को निवास-स्थान की आवश्यकता पड़ी तो महावत खाँ, जो काबुल में जहाँगीर के साम्राज्य की रक्षा कर रहा था, के बाल-बच्चों को घर से बाहर निकाल दिया। इस विशेष अपमान के लिए महावत खाँ को इसलिए चुना गया था कि वह कुछ दिन पूर्व हिन्दू था। वह राणा प्रताप का भतीजा था। जहाँगीर भी मध्यकालीन यवन धर्मान्धों से किसी प्रकार कम नहीं था जो धर्मपरिवर्तनकारी हिन्दुओं को ही अपमान, घोर अपमान एवं वस्तुओं के हड़पने के लिए चुनता था।

शाही मुगल परम्परानुसार जहाँगीर का अपना पुत्र खुसरु उसके प्रति ठीक उसी प्रकार विद्रोह कर उठा, जिस प्रकार उसने अकबर के विरुद्ध

किया था। सबसे बड़ा पुत्र खुसरु हिन्दू माँ (जयपुर की राजकुमारी मानबाई जिसकी जहाँगीर ने हत्या कर दी थी) का पुत्र था। शाही चाटुकारों की यह बहुत बड़ी धोखेबाजी है कि वह शिक्षित तथा सुसंस्कृत था। डा० बेनी प्रसाद उसे "क्रोधी स्वभाव तथा दुर्बल निर्णय का अपरिपक्व युवक" बताते हैं। वह सबके सामने जहाँगीर को गालियाँ देता। अतः बादशाह हो जाने पर जहाँगीर ने खुसरु को दास बना दिया। अप्रैल, १६, १६०६ को वह अकबर का मकबरा देखने के बहाने भाग गया।

इस प्रकार अपने शासन के प्रथम वर्ष में ही उसका सबसे बड़ा शत्रु राज्य का उत्तराधिकारी युवराज खुसरु बन गया। जहाँगीर ने उसे वही गालियाँ दीं, जो प्रत्येक यवन शासक अपने हठी पुत्रों को देता था। वह कहता है कि खुसरु "यौवन के संगी घमंड एवं दुर्विनीता तथा दुष्ट साथियों की प्रेरणा से कुछ गलत ढंग से सोचता था। यह सोचकर मुझे दुःख होता कि मेरा पुत्र मेरा शत्रु बन गया है और यदि मैं उसे न पकड़ूँ तो असन्तुष्ट तथा शैतान लोग उस का समर्थन करेंगे और इस प्रकार मेरा सिंहासन अपमानित होगा।"

खुसरु पंजाब भाग गया। कुछ मुस्लिम सेनापति उसके साथ हो लिये। लाहौर के शासक ने उसके नगर-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। तीन सप्ताह के भीतर (अप्रैल २७, १६०६ को) वह पकड़ा गया। उसे जंजीरों से बाँधकर जहाँगीर के समक्ष लाया गया। वीर हिन्दू शिष्य सेना, शिष्यों (जिन्हें आज गलती से सिक्ख कहकर हिन्दुओं से अलग किया जाता है) के नेता गुरु अर्जुनदेव इस बहाने से पकड़ लिये गये कि उन्होंने ५,००० रुपये देकर खुसरु के विद्रोह को उभारा है। गुरु की सम्पत्ति तथा कुटीर छीनकर उन पर २,००,००० रुपये जुर्माना कर दिया गया। उन्हें आदेश दिया गया कि पवित्र ग्रन्थ से, जिसमें अनेक हिन्दू सन्तों के श्लोक हैं, कुछ भजनों को निकाल दें। हिन्दुत्व की रक्षार्थ वचन-बद्ध गुरु अर्जुनदेव ने जुर्माना देने अथवा ग्रन्थ साहब में तनिक भी परिवर्तन करने से इंकार कर दिया। जून, १६०६ में वीर गुरु अर्जुनदेव पर लाहौर में रावी के तट पर क्रूरतापूर्वक भरी दोपहरी में तेज रेत तथा उबलता पानी डालकर उनकी हत्या कर दी गयी।

ये क्रूरताएँ थीं जिन्हें 'महान एवं श्रेष्ठ अकबर' के उतने ही 'श्रेष्ठ'

पुत्र जहाँगीर ने हिन्दुस्तान पर ढाया। खुसरु की सहायता करने के सन्देह मात्र में कितनों को निर्दयतापूर्वक दण्ड दिया, इस सम्बन्ध में जहाँगीर लिखता है, "(लाहौर दुर्ग के) मण्डप में बैठकर, रावी के तल में मैंने नुकीली सूलियाँ गाड़ने की आज्ञा देकर ७०० द्रोहियों को, जिन्होंने मेरे विरुद्ध खुसरु का साथ दिया था, उनपर जीवित ही चढ़वा दिया। इससे अधिक यंत्रणादायक दण्ड और कुछ नहीं हो सकता क्योंकि इससे पूर्व कि मृत्यु इन्हें त्राण दे, वे दुष्ट बहुधा बहुत काल तक इस दुःखद यंत्रणा में छटपटाते रहते थे, यह भयानक दृश्य दूसरों को रोकने के लिए उचित उदाहरण का कार्य करता था।" (पृष्ठ २७३, भाग VI) जहाँगीर जो यंत्रणाओं के कार्यों के लिए कुख्यात है, मुस्लिम कहानियों में भावुकतापूर्ण गप्पों द्वारा वर्णित है कि वह इतना न्यायप्रिय था कि किसी छोटे से दोष के लिए उसने अपनी महबूबा नूरजहाँ तक को दण्डित किया। सहस्र-रजनी-चरित्र जैसी प्रवंचनापूर्ण कहानियों द्वारा भारत के यवन शासन के रक्तपूर्ण इतिहास को वास्तविक ढंग से प्रस्तुत न कर भारतीयों को धोखे में रखा गया है।

खुसरु को एक तार द्वारा अन्धा बनाकर बन्दी बना दिया गया। "जब उसकी आँखों में तार घुसते समय उसे इतना कष्ट हुआ कि किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सकता।" (इन्तखाब-ए-जहाँगीरशाही, पृष्ठ ४४८, भाग VI) इसके साथ एक और राज-विद्रोह हुआ। कहानी गढ़ी गई कि काबुल में जब जहाँगीर शिकार कर रहा था, उसकी हत्या कर दी जाये और सिंहासन पर खुसरु को बिठा दिया जाय।

जहाँगीर ने भी हिन्दू राज्यों पर चढ़ाई करने की यवन परम्परा जारी रखी। "सिंहासन पर बैठने पर जहाँगीर ने शाहजादे परवेज तथा जफ़रबेग की अधीनता में मेवाड़ के विरुद्ध सेना भेजी। देवली के स्थान पर युद्ध हुआ, जिसमें मुस्लिम सेना बहुत बुरी तरह से हार गयी और लज्जापूर्वक वस्तुतः खुसरु के विद्रोह के कारण, वापिस बुला ली गयी।"

दो वर्ष पश्चात् (१६०८ में) राजपूत से हुए मुस्लिम महावत खाँ की अधीनता में राजपूत को राजपूत से भिड़ाने के लिए सेना भेजी गयी। मेवाड़ की शूर सेना ने इसे भी बुरी तरह हरा दिया। १६०९ में महावत खाँ का स्थान अत्यन्त ही क्रूर मुसलमान अब्दुल्ला खाँ को दे दिया गया।

उसने राणाप्रताप के पुत्र अमरसिंह पर भीषण धावा बोला, जिसमें अमरसिंह बाल-बाल बचे। हिन्दू प्रतिरोध की रीढ़ मेवाड़ को अब्दुल्ला भी नहीं तोड़ पाया। तब एक हिन्दू राजा बसु को यवन सेना की बागडोर सौंपी गयी ताकि वह मेवाड़ शासक को किसी प्रकार फुसलाकर या धोखा देकर वश में कर ले। पर उसने स्वयं को क्षमा कर लिया। १६१३ में जहाँगीर ने आजम कोका को मेवाड़ भ्रष्ट करने का आदेश दिया। जहाँगीर उसे "इस राज्य का पाखण्डी तथा पुराना भेड़िया" कहता था। जब जहाँगीर स्वयं कोका को भेड़िया बताता है तो यह सहज ही कल्पनीय है कि उसने हिन्दू मेवाड़ में कितनी क्रूरताएँ की होंगी। पर आजम कोका ही सेनानायक नहीं था। शाहजादा खुर्रम (भावी दुष्ट तथा क्रूर शाहजहाँ) भी सेना के साथ था। दोनों में अनबन हो गयी तथा आजम कोका को अप्रैल, १६१४ में बन्दी बनाकर ग्वालियर दुर्ग भेज दिया गया। खुर्रम उपनाम शाहजहाँ बहुत बड़ा हिन्दू-घाती तथा हिन्दुओं से घृणा करने वाला था अतः उसने पूर्ण शक्ति एवं क्रूरता के साथ युद्ध लड़ा। श्री शर्मा लिखते हैं, "प्रदेश को उजाड़कर उसने राणा को संकट में डाल दिया। अमरसिंह वस्तुतः उसी दयनीय अवस्था में हो गये, जिस अवस्था में १५७९-८० में उनके पिता थे।" (पृष्ठ ४५२, क्रिसेण्ट इन इण्डिया)।

जहाँगीर का दावा है, "निस्सहाय हो उसने झुकने तथा राजभक्ति का इरादा कर लिया। उसने अपने मामा शुभकर्ण तथा एक अत्यन्त ही विश्वस्त एवं मेधावी सेवक हरदास झाला को भेजा।" अपने न झुकने वाले शूर पिता राणा प्रताप की ही भाँति अमरसिंह ने मुगल दरबार में जाने से साफ इंकार कर दिया। जहाँगीर ने चित्तौड़ को राणाओं को यह कहकर वापिस कर दिया कि इसकी न तो मरम्मत करनी है, न किलेबन्दी।

मेवाड़ की स्वतन्त्रता न बनाए रखने पर अमरसिंह ने अपने सबसे बड़े पुत्र कर्णसिंह के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। औरंगजेब के क्रूर शासन में राणा राजसिंह ने मुगल संरक्षण को हिलाकर रख दिया।

जहाँगीर ने राणाओं की समस्त सम्पत्तियाँ छिनवा ली थीं, उसके संस्मरणों में विस्तार के साथ, पर झूठा, वर्णन है कि उसने सम्पत्ति राणाओं को दी। इतिहासकारों के लिए यह अच्छा है कि वे जहाँगीर के अधिकांश कथनों के विरुद्ध दावों को सत्य मानें। महान् इतिहासकार

सर एच० एम० इलियट ने अनेक बार कहा है कि जहाँगीर के अधिकांश इतिवृत्त झूठ से भरे हुए हैं।

दक्षिण अभियान के समय मुगल बादशाहों की सेनाओं का बुरहानपुर प्रधान कार्यालय रहता था जहाँ मुगल शाहजादों तथा यवन सेनापतियों के बीच षड्यन्त्र चलते रहते थे। वहाँ शाहजादा परवेज अपना साधारण दरबार लगाता था पर १६०८ से १६१० तक सच्ची शक्ति खानखाना के हाथ में थी। आगामी दो वर्षों तक खाँ जमान मानसिंह तथा अब्दुल्ला (मेवाड़ का भ्रष्टकर्ता) की सहायता से खाँ जहाँ लोदी के हाथ नायकत्व रहा। १६१२ में प्रभुत्व पुनः खानखाना के हाथ चला गया। १६१६ में शाहजादे खुर्रम उर्फ शाहजहाँ से उसका स्थान लेने को कहा गया।

अक्तूबर, १६१६ के अन्त में खुर्रम ने अजमेर छोड़ दक्षिण को प्रयाण किया। उसके आधिपत्य में मुगल सेना मांडू और मार्च, १६१७ में बुरहानपुर पहुँची। इन समस्त वर्षों में अहमदनगर के मुस्लिम शासन के साथ यह युद्ध अनियमित रूप से खिचता चला गया। अहमदनगर राज्य के जो भूखण्ड अकबर की ओर चले गये थे उन्हें अहमदनगर का एबीसीनिया का राजनीतिज्ञ मलिक आमेर पुनः प्राप्त करने के प्रयत्न में था। उसने बड़ी सफलता के साथ असंगठित तथा झगड़ते हुए मुगलों को दूर ही रखा।

यह देखकर कि शक्तिशाली तथा भयानक मुगल सेना उसके राज्य को नष्ट कर देगी मलिक आमेर ने मुगलों के साथ सन्धि कर ली। उसने नये जीते हुए बालाघाट भू-प्रदेश को छोड़ दिया। दक्षिण में अब्दुर रहीम खानखाना को शासक तथा बालाघाट में उसके पुत्र शाहनवाज को आयुधनायक बना दिया। ज्यों ही शाहजहाँ की पीठ फिरी, मलिक आमेर ने १६२० तक मुगलों को दिए हुए समस्त भू-भाग को जीत लिया। शाहजहाँ को उसके विरुद्ध एक बार पुनः भेजा गया। वैसी ही सन्धि फिर हुई। १६२३ में दक्षिण के बीजापुर तथा अहमदनगर दो मुस्लिम राज्यों ने एक-दूसरे के विरुद्ध मुगलों की सहायता माँगी। १६२६ में ८० वर्ष की अवस्था में मलिक आमेर मर गया फिर भी दक्षिण के राज्य अविजित रहे।

हिन्दुओं का वह अभागा राज्य कांगड़ा, जहाँ मुसलमानों ने प्रत्येक पीढ़ी में अकथनीय पीड़ायें दीं और फिर भी उसने अपना गौरवपूर्ण हिन्दू

मस्तक ऊँचा रखा, एक बार पुनः खुर्रम उर्फ शाहजहाँ की सेना द्वारा आक्रमित हुआ। जहाँगीर के अनुसार, "उसकी प्रथम योजना इस दुर्ग पर आधिपत्य करना था।" इसके विरुद्ध पंजाब के शासक मुर्तजा खाँ को भेजा पर काँगड़े पर अधिकार कर सकने से पूर्व ही वह चल बसा। राजा बसु के पुत्र चौपदमल को काँगड़ा के विरुद्ध भेजा गया पर देश-भक्त हिन्दू होने के नाते उसने इस पवित्र नगर पर आक्रमण करने से इंकार कर दिया। इसके स्थान पर देश-भक्त हिन्दू शक्तियों के साथ मिल उसने विदेशी मुगलों को चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया। निदान वह पकड़ा गया और यन्त्रणायें देकर मार दिया गया। फिर खुर्रम को भेजा गया। वह अपनी क्रूरताओं के लिए कुख्यात था। उसकी क्रूरता ने घिरे हुए हिन्दुओं को "चार मास तक सूखे चारे पर" जीवित रहने पर बाध्य कर दिया। निदान यवन सेनायें नवम्बर १६, १६२० को रक्षा करने वाले हिन्दुओं की लाश पर पैर धर काँगड़ा में घसे।

अफगानों के कन्धार पर पारसियों तथा मुगलों दोनों की लोलुप दृष्टि थी। १५२२ में इसे बाबर ने जीता था, जो उसके पुत्रों हुमायूँ, तथा कामरान के साथ रहा। १५५८ में यह मुगलों के हाथ से निकल गया पर अकबर ने १५६४ में फिर हथिया लिया। जब खुसरु ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया, पारसियों ने पड़ोसी सरदारों को कन्धार पर आक्रमण करने के लिए उकसाया पर कन्धार मुगलों के हाथ ही रहा। पारसीक बादशाह शाह अब्बास ने दिखावटी मैत्री जारी रखी तथा जहाँगीर के दरबार में दूतों के हाथ अनेक भेंटें १६११, १६१५, १६१६ तथा १६२० में भेजीं। जहाँगीर को भेजे गये अपने चाटुकारितापूर्ण पत्रों में पारसी शासक ने उसे शनि के समान महान् बताया। हिन्दुस्तान के इन सभी शासकों में शनि के चिह्न पाये जाते रहे हैं।

१६२१ में पारसियों ने कंधार को घेर लिया और दूसरे वर्ष ही ले लिया। इस हानि से क्रोधित हो जहाँगीर ने योजना बनाई कि संघर्ष पारसियों की राजधानी के द्वार तक किया जाये, पर सन्तति-विद्रोह की मुस्लिम परम्परा के कारण उसकी योजनायें अपूर्ण ही रह गयीं। अपनी शक्ति से परिचित मक्कार शाहजादे खुर्रम उर्फ शाहजहाँ ने मुगल सिंहासन के लिए अपने ही पिता जहाँगीर को चुनौती दे दी।

१६१० में शाहजादे खुसरू के नाम से एक मुस्लिम युवक कुतुबुद्दीन ने एक विद्रोह का संगठन किया। वह पकड़ा गया और यातनाएँ देकर मार डाला गया।

बंगाल में छाये हुए अफगानों ने जहाँगीर के विरुद्ध अपना सिर उठाया। अप्रैल १, १६१२ को युद्ध हुआ पर अपने एक पक्षीय दावों के सर्वथा प्रतिकूल जहाँगीर को सन्धि करनी पड़ी तथा कुछ अफगानों को अपने दरबार तथा सेना में उच्च स्थान देने पड़े।

१६११ में जहाँगीर की सेनाओं ने प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर जगन्नाथपुरी पर आक्रमण किया। विदेशी दुष्टों की क्रूरताओं से बाध्य हो राजा पुरुषोत्तम दास को समर्पण करना पड़ा। समूचे देश को बलात्कार से बचाने के लिए हिन्दू राजा ने अपनी कन्या को जहाँगीर के हरम में दे देने के लिए स्वीकृति दे दी। टोडरमल का पुत्र राजा कल्याण ऐसे ही टूट पड़ा, जैसे उसके पिता तथा मानसिंह अकबर के लिए टूट पड़ते थे, पुनः वह असहाय दुःखी राजकुमारी को मुस्लिम हरम में ले आया।

१६१५ में बिहार में खोखरा इसके हिन्दू शासक दुर्जनसाल से हथिया लिया गया। समृद्ध हिन्दू राज्य होने के अतिरिक्त हीरों की खानें यहाँ का अतिरिक्त आकर्षण था। अपना राज्य छिन जाने तथा कन्या के अपहृत हो जाने के कारण अपमान अनुभव करता हुआ जगन्नाथपुरी का शासक पुरुषोत्तमदास १६१७ ई० में मुगल शक्ति की अवज्ञा कर उठा। फलस्वरूप उसका प्रदेश मिला लिया गया, अब मुगलों की दक्षिण-पूर्व की सीमा गोलकुण्डा के राज्य को छूने लगी।

जहाँगीर के अधीन हिन्दू राजा विक्रमाजीत ने उसकी सेनाओं का कूच में संचालन कर जाम तथा भार नामक गुजराती सरदारों को अपने वश में कर लिया।

१६२० में सुस्वादु फलों तथा केशर के लिए प्रसिद्ध, कश्मीर के दक्षिण में स्थित किश्तवार नामक हिन्दू राज्य पर आक्रमण कर अधिकार में कर लिया गया। दो वर्ष पश्चात् राजा ने मुगलों के इस जुए को उतार फेंकने के लिए पुनः प्रयास किया किन्तु वह शक्तिहीन था।

कश्मीर में झेलम नदी के उद्गम पर ही स्थित वेरीनाग के प्राचीन हिन्दू मन्दिर को जहाँगीर तथा अकबर ने नष्ट कर डाला। वहाँ इस मन्दिर

के ध्वंशावशेष अब भी देखे जा सकते हैं। घाव पर नमक छिड़कने के लिए, एक धोखा देने वाले पत्थर को वहाँ और लगा दिया गया है, जिसपर उर्दू में लिखा है कि इस इमारत का मुगलों ने निर्माण किया। अतः मध्यकालीन इतिहास में जहाँ कहीं भी किसी प्राचीन इमारत के साथ किसी यवन शासक का नाम संलग्न हो वहाँ उसका अर्थ उसे उन इमारतों का निर्माता न मान भ्रष्टकर्ता मानना चाहिये। इस सामान्य नियम को भारतीय इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी तथा पंडित को ध्यान में रखना चाहिये अन्यथा मुस्लिम इतिहासों के झूठे दावों से वह धोखा खा जायेगा।

बहुधा जहाँगीर तथा नूरजहाँ के महान् रोमांस की बात कही जाती है। यह सिवाय इस भयानक कथा के, कि जहाँगीर ने अपनी समस्त शाही शक्ति से अपने एक दरबारी को कुत्ते की भाँति पीछा करके तथा मारकर, उसकी सुन्दर पत्नी का अपहरण कर अपने हरम में डाल दिया, और कुछ नहीं। मुहम्मद खाँ के इकबालनामा-ए-जहाँगीरी तथा अन्य अनेक इतिहासों में इस क्रूर घटना का उल्लेख है। मुस्लिम शासन-काल में हिन्दुस्तान पश्चिमी एशिया के सभी विदेशियों के लिए चरागाह बन गया था। मिर्जा गयास बेग फतहपुर सीकरी में अकबर से मिला और सेवा में ले लिया गया। धीरे-धीरे वह शाही परिवार का अधीक्षक हो गया। उसकी सबसे छोटी लड़की, जो बाद में नूरजहाँ नाम से विख्यात हुई, युवक ईराकी आव्रजक, अकबर के नौकर, अली कुली बेग इस्ताइलू से ब्याही थी। जब शाहजादा था तभी से जहाँगीर की कामुक दृष्टि ईराकी से ब्याही इस सुन्दरी पर लगी हुई थी। जहाँगीर ज्योंही सिंहासन पर आया अली कुली बेग इस्ताइलू की हत्या करने तथा उसकी पत्नी को हड़पकर अपने हरम में डालने की योजना बनाने लगा। इस्ताइलू को भुलावे में डालने के लिए शेर अफगन की उपाधि दे सुदूर बंगाल भेज दिया गया।

१६०६ ई० में अर्थात् जहाँगीर के सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही महीनों पश्चात् कुतुबुद्दीन खाँ नामक शाही भृत्य को शेर अफगन को परेशान करने तथा झगड़ने के लिए उद्दीप्त करने बंगाल भेजा गया। शाही हत्यारा शेर अफगन के पीछे दूर बर्दवान तक चला गया। कुतुबुद्दीन द्वारा जान-बूझकर किये गये अपमानों एवं अवज्ञाओं से दुःखी हो शेर अफगन ने उसे मार डाला। यह जान-बूझकर किया गया झगड़ा था जबकि दूरस्थ शेर अफगन

के समीप कोई सहायता करने वाला भी नहीं था। दूसरा भृत्य पीर खाँ कश्मीरी शेर अफगन की ओर दौड़ा पर उसे भी काट दिया गया। शाही हत्यारी-सेना के अन्य सदस्य आगे बढ़े जिन्होंने शेर अफगन को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। इसके पश्चात् ही बस शेर अफगन की रोती-बिलखती सुन्दर पत्नी मेहरुन्निसा को उठाकर आगरा ले जाया गया। कुत्ते के समान अपने पति की हत्या की भयानक स्मृतियों के कारण उसके हरम में रहते हुए भी उसने पाँच वर्षों तक जहाँगीर के कामुकतापूर्ण निवेदनों तथा धमकियों की कोई परवाह नहीं की। अन्त में, उसे जहाँगीर की काम-बुभुक्षा के समक्ष अपने वैधव्य की पवित्रता को समर्पित करना पड़ा तथा १६११ से बड़ी हिचकिचाहट के साथ दूसरे पति, बादशाह जहाँगीर, की पत्नि बनना पड़ा। यह बड़ी व्यंग्यपूर्ण पदोन्नति थी कि वह पीछा किये गये तथा मारे गये दरबारी के पलंग से स्वयं शाही हत्यारे के पलंग पर पहुँच गयी।

क्योंकि जहाँगीर की महरुन्निसा यानी नूरजहाँ के प्रति बड़ी ललक थी, और वह बड़ी धूर्त थी, अतः वह अपना प्रभाव एवं शक्ति प्रदर्शित करने लगी। उसने अपने भाइयों तथा पिता को शक्ति के ओहदों पर पहुँचा दिया। उसकी भतीजी अर्जुमन्द बानो बेगम का विवाह शाहजहाँ से हो गया। कहा जाता है कि उसका पिता एतमाद-उद्-दौला आगरे में हड़पे गये एक सुन्दर हिन्दू भवन में दफनाया पड़ा है, जिसे प्रवंचित दर्शक को उसका मकबरा बता दिया जाता है। मुस्लिम इतिहासों के झूठे जाल में फँसने से पूर्व हम सामान्य दर्शक, इतिहास पंडित तथा पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों से यह सोचने के लिए कहते हैं कि जब जीवित एतमाद-उद्-दौला को रहने तक को जगह नहीं थी, मृतक एतमाद-उद्-दौला के लिए यह भव्य भवन कहाँ से आ गया ! हमारे अनुसार वह उसी इमारत में ठहरा करता था, जिसे आज उसका मकबरा बताया जाता है। प्रत्येक मध्यकालीन मुसलमान हड़पे गये उसी हिन्दू महल में दफनाया पड़ा है, जिसमें उसने अपना जीवन व्यतीत किया।

कुछ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् ही जहाँगीर असाध्य एवं अनवरत मद्यप हो गया। वह लिखता है : "मैंने मद्यपान प्रारम्भ किया तथा दिन-ब-दिन और भी अधिक पीता गया, फिर तो अंगूरी मदिरा का मुझ पर कोई प्रभाव ही न होता, फिर मैंने स्प्रिट पीना प्रारम्भ कर दिया। नौ वर्षों

के काल में मैं स्प्रिट के २० प्यालें पी लिया करता था। १४ दिन में तथा शेष ६ रात में। इनका भार ६ सेर था। किसी को मुझसे कुछ भी कहने का साहस न होता और मामला यहाँ तक बढ़ गया कि मदिरामत्त होने पर काँपने के कारण मैं अपना प्याला भी नहीं सँभाल सकता था। दूसरे मेरा प्याला पकड़े रहते, तब मैं पीता।" जहाँगीर के दरबार में आये पश्चिमी यात्रियों ने लिखा है कि जहाँगीर सबके सामने बेहोश होकर गिर पड़ता और कभी-कभी तो बड़ी दयनीय अवस्था में रो पड़ता तथा उसके मुँह के किनारों से लोट गिरने लगती। जहाँगीर बताता है कि हकीमों की सम्मति के कारण जब उसे शराब का परिमाण कम करना पड़ा उसने 'भलुआ' की मात्रा बढ़ा दी, "मैंने आदेश दिया कि मेरी स्प्रिट में अंगूर की शराब मिला दी जाये, दो भाग शराब तथा एक भाग स्प्रिट।"

असाधारण मद्यपान से जहाँगीर का स्वास्थ्य गिर गया। अब वास्तविक शक्ति नूरजहाँ के हाथ में थी। जहाँगीर को निर्बल पा खुर्रम उपनाम शाहजहाँ ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह की तैयारी कर दी। १६२१ में उसने अफगानों के विरुद्ध चढ़ाई करने से इन्कार कर दिया। दक्षिण जाते समय अपने साथ उसने अपने बड़े भाई अंधे खुसरु को साथ ले जाने की हठ की तथा सिंहासन के उस भावी दावेदार की हत्या कर दी।

शाहजहाँ का विवाह यद्यपि नूरजहाँ के भाई की पुत्री से हुआ था फिर भी वह उसे राज्य-प्राप्ति के खेल में सबसे सबल शत्रु समझता था। शाहजहाँ की क्रूर आकांक्षा से सतर्क हो नूरजहाँ शाहजादे शहरयार की, जिसे शेर अफगान से उत्पन्न उसकी सगी पुत्री ब्याही थी, रक्षिका बन गयी। उसने अन्य शाहजादे परवेज को भी बिहार से अपने पास बुला लिया। समाचार फैल गया कि शाहजहाँ ने उसकी तथा शहरयार की सम्पदाएँ अधिकार में ले ली हैं। उसने शहंशाह जहाँगीर को बड़े धृष्ट पत्र लिखे तथा उसके लौटने सम्बन्धी आदेशों की अवज्ञा करता रहा।

शाहजहाँ की बढ़ती शक्ति, आकांक्षाओं तथा धृष्टता से भयभीत हो जहाँगीर ने उसे प्रदत्त भूमि-सम्पदा से ही सन्तुष्ट रहने तथा अधिकांश सैनिकों को अफगान युद्ध के लिए भेजने के आदेश दिये। जहाँगीर लिखता है : "खुर्रम अपने कुटिल मार्ग पर दृढ़ रहा। मैं उसे दण्ड देने चला। मैंने

आदेश दिये कि अबसे आगे उसे 'नराधम' कहा जाया करे।" शाहजहाँ जल्दी से आगरे पर अधिकार करने बढ़ा पर अपनी विजय में विश्वस्त न हो, फतहपुर सीकरी में डेरा डाला। ७० वर्षीय खानखाना भी उससे वहाँ जा मिला। अनेक दरबारियों की सम्पत्ति पर शाहजहाँ ने अधिकार कर लिया था। शाहजहाँ के समर्थक दिल्ली के समीप ब्लोचपुर में हार गये और वह मालवा तथा वहाँ से दक्षिण चला गया। वहाँ से आन्ध्र तथा बंगाल होते हुए उसने बिहार में रोहतास दुर्ग पर अधिकार कर लिया पर इलाहाबाद में उसे मुँह की खानी पड़ी। शाहजहाँ के समूचे विद्रोही जीवन में उसका गिरोह हिन्दू-भूमि को गिद्ध की भाँति खाता रहा तथा हिन्दुओं की सम्पत्ति लूटता तथा अग्नि की भेंट करता रहा। मन्दिरों को मस्जिद बना दिया गया। अनेक मध्ययुगीन मन्दिर तथा भवन जो आज मकबरों तथा मस्जिदों के रूप में खड़े हैं, ये अपने सम्राट पिता के विरुद्ध तलवार तथा मशाल लेकर खड़े होने वाले शाहजादे खुर्रम उर्फ शाहजहाँ के दानवी नृत्य का परिणाम हैं।

विशेष कुछ हाथ न लगने पर शाहजहाँ ने सन्धि की बात चलाई। उसे रोहतास दुर्ग देना पड़ा। अपने पुत्रों दारा तथा औरंगजेब को अपने पिता के अच्छे व्यवहारों के लिए अपने ही बाबा के यहाँ धरोहर के रूप में जाना पड़ा। इस प्रकार तीन वर्ष की खून-खराबी तथा भयानक गड़बड़ के उपरान्त शाहजहाँ को उदासीन बना दिया गया। पर इस भिड़न्त में महावत खाँ तथा परवेज शक्तिशाली हो गये। उनकी ओर से भय देख नूरजहाँ महावत खाँ को पाठ पढ़ाने चल दी। उसने महावत खाँ को आज्ञा दी कि शाहजादे परवेज को खाँजहाँ के संरक्षण में दक्षिण में ही छोड़ वहाँ से बंगाल चला जाय। राजकुमार नें अपने विश्वस्त महावत खाँ से अलग होना अस्वीकार कर दिया। महावत ने भी आज्ञा का पालन करने से इन्कार कर दिया। तब उसे दरबार में बुलाया गया। ४,००० चुने हुए राजपूतों को ले वह राजधानी आया। जिस नूरजहाँ को अपने शराबी तथा कामुक द्वितीय पति जहाँगीर के साथ मुस्लिम मनगढ़न्ती इतिहासों में बड़ा भारी न्यायप्रिय कहा गया है, उस मक्कार नूरजहाँ ने महावत खाँ के विरुद्ध अनेक बनावटी दोष आरोपित किये।

निराश महावत खाँ ने १६२६ में बादशाह के कश्मीर से काबुल

लौटने पर जहाँगीर को घेरकर बन्दी बना लिया। बादशाह से बिछुड़कर नूरजहाँ ने अपने भाई एवं अन्य दरबारियों को महावत खाँ को दबाने के लिए प्रेरित किया। आक्रमण का पर्यवसान महान् विपत्ति में हुआ। शाही सेनायें मुस्लिम बने राजपूत, महावत खाँ, के समक्ष न ठहर सकीं। राजपूत सेनाओं ने तो अटक दुर्ग तक पर अधिकार कर लिया। शाही दरबार के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अब महावत खाँ के घेरे में थे।

वह बड़ी सरलता से जहाँगीर तथा उसके दरबारियों को उनके नर-संहार तथा नारी-दुर्व्यवहार के फलस्वरूप मृत्युदण्ड दे सकता था पर उस की प्रच्छन्न हिन्दू कोमलता तथा मूर्खता ने उससे उन बन्दियों के प्रति विनम्रता का व्यवहार करवाया। इस प्रकार वह एक ही वीर शस्त्र उठाकर हिन्दुस्तान को म्लेच्छ शासन से मुक्त कर अपने वास्तविक धर्म की ओर लौट सकता था। पर यह मूर्ख महावत खाँ विजय के तट पर पहुँच नेत्र निमीलन करता रहा। एस० आर० शर्मा के अनुसार, "वह बादशाह को देश से निकालने तथा अपना राज्य स्थापित करने वाला दूसरा शेर (खाँ) शाह नहीं था। अपने युद्ध-कौशल द्वारा सम्राट को प्रभावित करने वाला वह सच्चा स्वामि-भक्त था।" मध्यकाल में ईश्वर से डरने वाला हिन्दू एवं विदेशी राक्षस मुसलमान में यही अन्तर था।

इसी बीच इस गृहयुद्ध का लाभ उठाने के लिए शाहजादा शाहजहाँ सिन्ध के थट्टा तथा वहाँ से ईरान जाने के इरादे से बढ़ा ताकि ईरानी सहायता से वह अपने पिता-बादशाह की हत्या कर सके। पर बीमारी एवं अन्य कारणवश वह दक्षिण लौट आया। परवेज अक्टूबर २८, १६२६ को मर गया। गोदावरी के मुहाने पर स्थित प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर त्र्यम्बक पर शाहजहाँ जा पहुँचा। इसके समीप के अनेक मस्जिद तथा मकबरे शाहजहाँ द्वारा हड़पे हुए हिन्दू मन्दिर हैं। बाद के यवन आक्रमणों में और भी अनेक हिन्दू मन्दिरों का अस्तित्व समाप्त कर दिया गया।

महावत खाँ को विदेशी कुशासक में मूर्खतापूर्ण राज्यभक्ति प्रदर्शित करते देख जहाँगीर तथा नूरजहाँ ने उसे विद्रोही शाहजहाँ के विरुद्ध बढ़ने के लिए कहा। यह पग महावत खाँ की क्रूर उपस्थिति से छुटकारा पाने के लिए भी था।

उनकी मिली-जुली शक्ति से भयभीत होकर जहाँगीर के बीमार हो

जाने पर, इसके प्रतिरोध करने की योजना बनायी। कश्मीर में ही इससे घोड़े पर नहीं बैठा जाता था, फलतः पालकी में ले जाया जा रहा था। अक्बतूर २८, १६२७ को उसकी भूख मारी गयी तथा जिस अफीम को वह ४० वर्षों से आसाधारण रुचि से लेता आ रहा था, अब खाने से मना कर दिया। कुछ प्याले अंगूरी शराब के अतिरिक्त वह कुछ नहीं खाता था। लाहौर के मार्ग में उसके सूखे गले ने अपनी रुचिपूर्ण मदिरा के लिए पुनः पुकारा। जब उसे उसके होंठों तक ले जाया जा रहा था, वे हिले तक नहीं और उसकी पुतलियाँ भी अल्लाह की मूर्खतापूर्ण खोज में एक बिन्दु पर ही जम गयीं। इस प्रकार अत्यन्त मद्यप एवं बलात्कार बादशाह के जीवन का अन्त हुआ। वह एक प्राचीन हिन्दू भवन में जो अब पाकिस्तान में है, दफन पड़ा है।

अकबर और उसका पुत्र दोनों ही महिलाओं का अपहरण करने वाले थे। ये निरक्षर घमण्डी राजपूत महिलाओं के अनिंद्य एवं पावन सौन्दर्य को निगल जाना चाहते थे। उधर राजपूत लोग भारतीय ललना के पवित्र सौन्दर्य एवं सम्मान की किसी भी प्रकार रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। विदेशियों द्वारा अपहरण कर सतीत्व लूटे जाने की अपेक्षा ये अपनी स्त्रियों को अग्नि को समर्पित कर देना श्रेष्ठ समझते थे। फिर भी अनेक बार उन्होंने अपनी महिलाओं को इन दुष्ट पशुओं द्वारा ले जाते देखा। जहाँगीर ने जिन हिन्दू राजकुमारियों का अपहरण किया उनमें रायसिंह की कन्या भी थी। जहाँगीर का विवाह यद्यपि मानसिंह की बहन से हुआ था फिर भी उसने मानसिंह के पुत्र जगतसिंह अपनी कन्या को शाही हरम में पहुँचाने के लिए बाध्य कर दिया। अपनी कामुकता में वह इतना अन्धा था कि मानबाई एवं उसकी नातिन दोनों से विवाह करने में उसे कोई अनौचित्य नहीं दिखाई दिया। विदेशी मुगलों की इस बेशर्मी तथा अपमान करते हुए हिन्दू ललनाओं के अपहरण का ही परिणाम था कि राजा भगवान दास ने आत्महत्या कर ली, प्रतिवाद करने वाले मानसिंह को अकबर द्वारा विष दे दिया गया तथा मानसिंह के पुत्र जगतसिंह ने इतना मद्यपान किया कि मर ही गया।

: ७ :

शाहजहाँ

सहस्रों वर्षों से विदेशी राजदण्ड से भयभीत होकर तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के भूत से ग्रस्त हो भारतीय इतिहास का अध्यापक-लेखक अज्ञानवश इतिहास के वास्तविक तथ्यों को दबाकर निरी मनगढ़न्त बातें लिखने के जाल में फँस गया है। इतिहास की ऐसी जालसाजियों की भारत में शाही विदेशी परम्परा है।

भारत में मुगल सिंहासन का पाँचवाँ उत्तराधिकारी शाहजहाँ स्वयं बहुत बड़ा जालसाज था। उसे कामगार खाँ के रूप में अपने पिता के सम्पूर्ण इतिहास को मनमाने ढंग से लिखने के लिए एक चारण मिल गया था, जिसका कार्य वास्तविक जहाँगीरनामा के स्थान पर दूसरा लिखना था क्योंकि उसने (जहाँगीर ने) शाहजहाँ का दुष्ट, नराधम, द्रोही तथा विश्वासघाती के रूप में वर्णन किया था। दूसरी विख्यात जालसाजी, 'तारीख-ए-ताजमहल' नामक एक अभिलेख है जो आगरे के विख्यात ताजमहल के मकबरों के रखवालों को इस नाम का दिया हुआ दस्तावेज कहा जाता है। अंग्रेज विद्वान् कीन (Keene) इस अभिलेख को निरी जालसाजी मानता है।

यद्यपि इस बात पर बल दिये जाने के पीछे अच्छा उद्देश्य ही था कि सभी पाठ्य-विषयों में अकेले इतिहास में ही सत्य को मायावी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के आधीन कर दिया जाए पर इससे वाक्छल को ही बढ़ावा मिला।

स्वतन्त्र भारत में भारतीय इतिहास लेखक को यह कहने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए कि वह सम्प्रदायवादी एवं राजनीतिज्ञ से भारतीय इतिहास से दूर रहने को कह सके। राजनीतिज्ञ वस्तुतः भारतीय इतिहास से वे तथ्य निकाल सकता है, जिससे साम्प्रदायिक मैत्री में सहायता मिले पर

यदि वह ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है तो इससे सत्य एवं ज्ञान की देवियों की कुसेवा ही होती है।

इस दृष्टि से हमें देखना चाहिए कि शाहजहाँ का शासन कथनानुसार स्वर्ण युग था अथवा ऐसा था, जिसमें उसने अपनी प्रजा को अधिकतम क्लेश एवं सन्ताप दिया तथा दण्डस्वरूप उनका सम्पूर्ण अर्थ छीन लिया।

शाहजहाँ (शाहजादा खुर्रम) का जन्म लाहौर में जनवरी ५, १५९२ को हुआ। उसकी माँ १५८६ में बलपूर्वक छीनकर मुगल हरम में डाल ली गयी एक हिन्दू राजकुमारी थी। वह मेवाड़ के राजा उदयसिंह की कन्या जोधाबाई उपनाम भानमती थी।

स्वभाव से ही आततायी होने के उसके इस स्वभाव को सुधारने के लिए समय-समय पर नियुक्त किये गये अनेकानेक शिक्षकों से उसने कुछ भी सीखने से साफ इंकार कर दिया। अपने बादशाह पिता जहाँगीर के जीवन काल में ही विद्रोह स्वरूप उसने समूचे भारत में डकैतियों तथा लूटखसोट के कुकृत्य करने प्रारम्भ कर दिये थे, जिसके फलस्वरूप उसके पिता ने अतीव निराश एवं दुःखी हो उसका लेखा नीच एवं नराधम के रूप में किया है। इतिहासकार का कैसे साहस हुआ है कि उसके विषय में उसके पिता की सम्मति पर ध्यान न देकर उस शरारती के शासन को भारतीय इतिहास में स्वर्णकाल कहा है।

अंग्रेज इतिहासकार कीन लिखता है कि शाहजहाँ प्रथम मुगल बादशाह था, जिसने अपने सभी विरोधियों का प्राणान्त कर दिया था। उसने अपने अन्धे किए अग्रज खुसरु को आधी रात के समय मार डाला। उस समय खुसरु शाहजहाँ का संरक्षित बन्दी था। उसने तीन वर्ष तक अपने ही पिता जहाँगीर के विरुद्ध युद्ध किया और यदि वह उसके हाथ लग जाता तो वह उसे भी मार देता।

छः वर्ष की अवस्था में शाहजहाँ को चेचक हो गयी थी जिससे उसके चेहरे पर चेचक के दाग हो गये थे। १६०७ में उसकी अर्जुमन्द बानू बेगम से सगाई हुई, जिसके विषय में कहा जाता है वह आगरे के ताजमहल में दफनायी गयी थी। दो वर्ष पश्चात् उसकी ईरान की राजकुमारी से सगाई हुई। क्योंकि अर्जुमन्द बानू बेगम सामान्या थी, अतः ईरान की राजकुमारी से सगाई बाद में हुई पर उसका विवाह शाहजहाँ से १६१० में हो

हो गया था जबकि अर्जुमन्द बानू से १६१२ में हुआ। शाहजहाँ ने बहरामखाँ की नातिन से भी विवाह किया। इसके अतिरिक्त उसके हरम में हजारों स्त्रियाँ थीं।

इतिहास में उल्लिखित उसकी संतान अर्जुमन्द बानू से थी। वे थे १६१४ में अजमेर में उत्पन्न जहाँनारा, अगले वर्ष उसी नगर में उत्पन्न पुत्र दाराशिकोह, १६१६ में हुआ अजमेर में ही शाहशुजा पैदा; १६१७ में बुरहानपुर में उत्पन्न दूसरी कन्या, रोशनआरा बेगम; अक्तूबर २४, १६१८ में दोहद में उत्पन्न औरंगजेब, १६२५ में रोहतास में उत्पन्न मुराद बख्श तथा १६३० या १६३१ में उत्पन्न गौहरा बेगम नामक कन्या; अन्तिम संतानोत्पत्ति के समय बेचारी अर्जुमन्द बानू, जिसने वर्ष के विवाहित जीवन में १५ बच्चों को जन्म दिया, चल बसी। यह नहीं पता चलता कि वह १६३० में मरी या १६३१ में। इसी प्रकार यह भी निश्चित नहीं कि उसे बुरहानपुर में दफनाया गया या आगरे में। यह भी निश्चित नहीं कि वह ताजमहल के गुम्बद के नीचे दफनायी गयी। फिर भी इतिहास में निर्लज्जतापूर्वक स्वीकार किया जाता है कि निर्दय शाहजहाँ ने अपनी हजारों पत्नियों में से एक के लिए इस विशाल स्वप्निल महल का निर्माण किया।

किसी भी इतिहासकार ने ताज के निर्माता के रूप में प्रसिद्ध शाहजहाँ के इस निरर्थक कथन की जाँच करने की आवश्यकता नहीं समझी कि शाहजहाँ ने जीवित मुमताज के लिए ही कितने महल बनवाये जो उसके शव के लिए बनवाया; सिंहासन प्राप्त किए उसे दो ही वर्ष हुए थे कि उसने ताजमहल जैसा विशाल एवं महान् भवन का निर्माण कराया, इस विषय में किसीभी इतिहासकार की अन्तरात्मा को सन्देह नहीं हुआ। यदि यह जिरह पहले ही हो लेती, तो हमारे द्वारा "ताजमहल हिन्दू मन्दिर है" पुस्तक में शाहजहाँ द्वारा निर्मित ताजमहल का उखाड़ा गया मिथक बहुत पहले ही पकड़ में आ जाता तथा इस गप्प की कलई बहुत पहले ही खुल जाती कि शाहजहाँ का शासन काल स्वर्ण युग था।

शाहजहाँ इतना दुष्ट स्त्री-लोलुप था कि अनेक इतिहासकारों ने यह आरोप लगाया है कि अपनी ही कुमारी कन्या जहाँआरा से उसने मैथुन किया। इस कुकृत्य के सम्बन्ध में उसकी निर्लज्ज दलील थी कि माली को

अपने द्वारा लगाये गये बाग का फल स्वयं खाना चाहिए। सुन्दरी कुमारियों के साथ यह मैथुन स्वयं शाहजहाँ के लिए तो स्वर्ण अवश्य था किन्तु उसकी दुःखी जनता के लिए तनिक भी नहीं।

शाहजहाँ जब कुमार खुर्रम था तब उसकी क्रूर चालों ने परमात्मा से डरने वाले हिन्दू शासकों पर बहुत विजय प्राप्त करा दी।

शाहजहाँ का मुगल सिंहासन पर आरोहण हिंसा के नाटक द्वारा ही हुआ। जहाँगीर के मरण-काल के समय वह राजधानी से दूर था। उसके ससुर आसफखाँ ने देवर बख्श (खुसरु के पुत्र तथा शाहजहाँ के भतीजे) को एवज के रूप में बादशाह घोषित कर किया। लाहौर में महत्त्वाकांक्षिणी नूरजहाँ ने अपने हितैषी शहरयार को बादशाह घोषित कर दिया। इन दो विरोधी दावेदारों की सेनाएँ लाहौर से छह मील आमने-सामने हुईं। पराजित शहरयार को भरे हरम से खींचकर तीन दिन बाद अन्धा बना दिया गया। राजकुमार दानियाल के दो युवक पुत्र ताहिमुरस तथा होशंग को भी बन्दीगृह में डाल दिया गया। शाहजहाँ ने अपने ससुर को आज्ञा दी कि एवजी देवर बख्श समेत सभी विरोधियों का कत्ल कर दिया जाय। इन वधों के पश्चात् शाहजहाँ आगरे में फरवरी ६, १६२८ को अबू-ए-मुजफ्फर शाहबूद्दीन मोहम्मद साहिब किरन-ए सानी पदवी धारण कर रक्तरंजित शाही मुगल सिंहासन पर आसीन हुआ।

जैसे उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे, उसके तीस वर्षीय शासन काल में भी ४८ लड़ाइयों के दाग हैं अर्थात् प्रतिवर्ष उसने डेढ़ लड़ाई से भी अधिक लड़ी। जिस शासनकाल में अनवरत युद्ध होते रहे उसे किसी भी प्रकार शान्त अथवा स्वर्णिम युग तो नहीं कहा जा सकता। यह तथ्य भारतीय इतिहास के उस झूठ को उघाड़ देता है कि शाहजहाँ का शासन भारत में स्वर्णयुग लाया।

शाहजहाँ के शासनकाल के प्रथम वर्ष में ही उसे वीर वीरसिंह देव के पुत्र शूर शासक झुज्जरसिंह से गम्भीर चुनौती मिली। उसने अबुल फजल को मार गिराया। इतिहास में अबुलफजल 'निर्लज्ज चापलूस', लोलुप तथा स्त्री-प्रेमी कहा गया है।

शाहजहाँ की सेना द्वारा की गयी क्रूरता इस लड़ाई से स्पष्ट है। शाहजहाँ का निजी इतिहासकार, मुल्ला अब्दुल हमीद, लिखता है : "बुरी तरह पीछा

किये जाने पर झज्जरसिंह तथा(उसके पुत्र)विक्रमाजीत ने उन अनेक स्त्रियों को मार डाला जिनके घोड़े थक गये थे। रात-दिन पीछा किये जाने के कारण विद्रोहियों को जौहर करने का अवसर नहीं मिला। निराश हो उन्होंने कटार से राजा वीरसिंह देव की पटरानी रानी पार्वती के दो घाव किये तथा अन्य स्त्रियों-बच्चों को भी मारकर भागने ही वाले थे कि अनुधावकों ने आकर उनमें से अनेक को तलवार के घाट उतार दिया। रानी पार्वती एवं अन्य घायल स्त्रियों को उठाकर फरोज जंग के समीप ले जाया गया। इस भयानक युद्ध से बचकर पलायन कर जाने वाले झज्जर तथा विक्रमा-जीत जंगल में गौंडों द्वारा बहुत बुरी तरह मार डाले गये। खान दौरन उनके शरीरों की खोज में चला तथा प्राप्त कर उनके सिरों को काट दरबार में भेज दिया। बादशाह की आज्ञानुसार उन्हें सेहुर के द्वार पर टाँग दिया गया। शेधान खाँ फौरन चाँदा से आया तथा बादशाह के आदेशानुसार उन्हें मुसलमान बनाकर इस्लाम कुली तथा अलीकुली नाम दे दिये गये। बुरी तरह घायल रानी पार्वती को छोड़ दिया गया। अन्य स्त्रियाँ शाही महल की (यवन) स्त्रियों की सेवा करने भेज दी गयीं। झज्जर का पुत्र उदयमान तथा उसका अनुज श्यामदेव, जो गोलकुण्डा भाग गये थे, बन्दी बनाकर बादशाह के पास भेज दिये गये। दोनों ने मुसलमान बनने की अपेक्षा मृत्यु को उत्तम समझा अतः उन्हें समाप्त कर दिया गया।"

यह घृणोत्पादक कहानी भारत में हजारों वर्षों के विदेशी शासन का स्मरण दिलाती है। पीछा करने वाले तथा पीछा किये जाने वालों के केवल नाम बदल गये हैं अन्यथा कार्य तो समान ही थे। परिवर्तित हिन्दुओं के नाम बलपूर्वक इस्लाम कुली जैसे रख दिये गये पर वे वास्तव में इस्लाम के ही कुली बना दिये गये। घायल हिन्दू स्त्रियाँ, जो मुस्लिम हरमों के लिए अनुपयोगी सिद्ध हुईं सड़क के किनारे घावों के दर्द से कराहती भूखी-प्यासी मरने के लिए छोड़ दी गयीं। जीवित पकड़ी गयीं स्वस्थ स्त्रियों का निर्दयतापूर्वक शील भंग करके वेश्या बना दिया गया। इस्लाम में परि-वर्तित हिन्दुओं के मस्तिष्कों को इस तरह बदल दिया गया कि वे अपनी मातृभूमि एवं कल तक के अपने सगे-सम्बन्धियों से घृणा कर अपने को अरब तथा तर्क कहने में गर्व का अनभव करने लगे।

हाँ, इन विदेशी म्लेच्छों से वीर बुन्देले भयभीत नहीं हुए। महोबा का शासक चम्पतराय भी बहुत बड़ा वीर था। गाँवों में छाये हुए मुसलमानों पर उसने साहसपूर्ण आक्रमण किये तथा मुस्लिम गुण्डों के गिरोहों के दक्षिण जाने के मार्ग को असुरक्षित कर दिया। वह अविजित रहा। बाद में उसके पुत्र छत्रसाल ने भी औरंगजेब की शक्ति को तुच्छ समझा।

इसी वर्ष (६३६) गऊ नरपुर के शासक जगतसिंह और उनके उत्साही पुत्र राजरूप ने भी मुगल साम्राज्यवाद को हीन समझा।

खाँ जहाँ लोदी नामक एक मुस्लिम सामन्त ने भी मुगलों के संरक्षण से दुःखी हो खुला विद्रोह घोषित कर दिया। खाँ जहाँ का हर जगह पीछा किया गया। उसके पुत्रों को या तो मार डाला गया अथवा बन्दी बना लिया गया। खाँ जहाँ तथा उसके परम प्रिय पुत्र अजीज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये तथा उनके सिर मुगल राजधानी भेज दिये गये, जहाँ उन्हें दुर्ग के द्वार पर प्रदर्शित किया गया।

शाहजहाँ के दुःखदायी शासन के अन्य युद्ध इस प्रकार थे—

१. शासन के तीसरे वर्ष नासिक तथा हिन्दू तीर्थस्थल त्र्यम्बकेश्वर जीतने सेना भेजी गयी।

२. जदुराय तथा उनके दो पुत्र उजला तथा रघु एवं पौत्र बसन्त को घेरकर मार डाला गया।

३. निजामशाह के विरुद्ध देवलगाँव, बागलान, संगमनेर, चगदोर दुर्ग, भीर, शेरगाँव, धारणगाँव, चालीस गाँव तथा मंजीरा दुर्ग के चारों ओर युद्ध छेड़ा गया।

४. धारूर दुर्ग, परेन्दा, सितुन्दा तथा नान्देर के विरुद्ध दक्षिण में अनेक वर्षों चलने वाला युद्ध किया गया।

५. शासन के पाँचवें वर्ष बीजापुर के मुहम्मद आदिल शाह के विरुद्ध सेना भेजी गयी।

६. क्योंकि उसका सेनापति आजम खाँ दक्षिण में मुगल-शत्रुओं की कमर नहीं तोड़ सका था अतः बहुत दिनों तक बुरहानपुर में ठहरकर थका हुआ बादशाह क्रोध करता हुआ अपनी राजधानी आगरे लौटा।

७. हुगली दुर्ग को हथिया लिया गया।

८. अब की बार गालना दुर्ग पर युद्ध हुआ।

९. शासन के छठे वर्ष भील सरदार भागीरथी ने मुगल शासन के विरुद्ध मालवा में विद्रोह प्रारम्भ कर दिया।

१०. इसी वर्ष मुगल साम्राज्य में तथा जहाँ कहीं उनकी विनाशकारी सेना जा सकती थी, सभी हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया गया। ये सभी उन्हें हथियाने में मारे जाने वाले यवनों के मकबरे तथा मस्जिदें बना दिये गये।

११. दौलताबाद दुर्ग को आक्रमण करके अधिकार में कर लिया गया।

१२. दो क्रूर मुसलमान सेनापतियों, कासिम खाँ तथा कम्बू खाँ ने ४०० ईसाइयों को, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, घेर लिया। उन्हें भयानक धमकियाँ देकर अपने को मुसलमान कहने के लिए बाध्य किया गया। शाहजहाँ का इतिहासकार कहता है: "(यवन) धर्म-रक्षक बादशाह ने आज्ञा दी कि इस्लाम धर्म के सिद्धान्त उन्हें समझा दिये जायें तथा उन्हें इन्हें स्वीकारने के लिए कहा जाय। कुछ ने यह धर्म स्वीकार कर लिया, किन्तु अधिकांश ने इस प्रस्ताव को हठपूर्वक ठुकरा दिया। उन्हें अमीरों को बाँटकर यह कह दिया गया कि इन घृणित हतभाग्यों को सख्त कैद में रखा जाय। ऐसा हुआ कि उनमें से न जाने कितने जेल से नरक पहुँच गये। उनकी जो मूर्तियाँ मोहम्मद के समान थीं उन्हें तो यमुना में फेंक दिया गया, शेष को खंडित कर दिया गया।" इस घटना से ज्ञात होता है कि इस्लाम के अनुयायी किस प्रकार प्रत्येक पीढ़ी में हिन्दुओं तथा ईसाइयों को आतंकित कर संख्यावृद्ध होते रहे।

१३. शासन के दसवें वर्ष दक्षिण में शिवाजी के पिता शाहजी भौंसले के विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया। उनका माहुली एवं मुरंजन के पार तक पीछा किया गया तथा अनेक दुर्ग जीत लिये गये।

१४. कश्मीर के शासक जफर खाँ को तिब्बत के विरुद्ध अभियान करने का आदेश दिया गया।

१५. ग्यारहवें वर्ष सिन्धु के पार के कन्धार एवं अन्य दुर्ग हथिया लिये गये।

१६. परीक्षित द्वारा शासित कूच हाजू एवं लक्ष्मीनारायण द्वारा शासित कूच बिहार विद्रोह कर उठे।

१७. नौ दुर्गों, ३४ परगनों तथा १,००१ गाँवों वाले बगलान (Baglan) क्षेत्र के विरुद्ध भी युद्ध छेड़ दिया गया।

१८. शासन के १२वें वर्ष चेतगाँव के राजा माणिकराय के विरुद्ध अभियान कर उसे पराजित किया गया।

१९. विशाल तिब्बत के शासक साँगी बेमुखल द्वारा लघु तिब्बत के बुराग जीत लिये जाने पर उससे जुर्माना वसूल करने सेना भेजी गयी।

२०. शासन के १३वें वर्ष कन्धार के विरुद्ध सिस्तान (Sistan) से आक्रमणकारी दल भेजा गया। बस्त के समीप खाँसी दुर्ग को पहले तो ले लिया गया पर बाद में त्याग दिया गया।

२१. शासन के १४वें वर्ष गुजरात के विद्रोही कोलियों तथा कठियों एवं काठियावाड़ के जाम साहब के विरुद्ध सेना भेजी गयी।

२२. काँगड़ा के राजा बसु के सुपुत्र जगतसिंह ने बादशाह शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

२३. शासन के १७वें वर्ष पालामऊ के राजा के विरुद्ध शाही सेना भेजनी पड़ी।

२४. शासन के १७वें वर्ष बलख तथा बदख्शाँ के विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया। ये दोनों समरकन्द की प्राप्ति की कुंजी थे। बादशाह को स्वयं काबुल जाना पड़ा। काहमर्द के दुर्ग को प्राप्त कर लिया गया तथा कुंदज एवं बल्ख जीत लिये गये।

२५. विजित प्रदेशों के विद्रोहियों को जीतने का कार्य सादुल्ला खाँ को सौंपा गया।

२६. शासन के २२वें वर्ष कन्धार के विरुद्ध फारसियों की सेनाएँ बढ़ीं। बड़े लम्बे रक्तपूर्ण युद्ध के पश्चात् बस्त एवं कन्धार का समर्पण कर उनसे लड़ने वाली शाही सेना बहुत बुरी तरह हारकर प्रत्यावर्तन कर गयी।

२७. शाहजहाँ की सेनाओं द्वारा अपनी फसल को सम्पूर्णतः नष्ट किए जाने तथा सम्पत्ति को लूटे जाने के कारण क्रोधित हो गजनी-क्षेत्र के निवासी २३वें शासन-वर्ष में विद्रोह कर उठे।

२८. २८वें वर्ष अल्लामी को आज्ञा दी गयी कि वह चित्तौड़ को ढहाकर राणा को दण्ड दे।

२९. शासन के २९वें वर्ष गोलकुण्डा तथा हैदराबाद जीतने का अभियान छेड़ा गया।

३०. शासन के ३०वें वर्ष शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगजेब को बीजापुर के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने की आज्ञा दी।

३१. शाहजहाँ के दुःखपूर्ण शासन के अन्त की ओर राजा जसवन्त सिंह भी उसका अजेय शत्रु उठ खड़ा हुआ था।

उपर्युक्त अत्यन्त संक्षिप्त सर्वेक्षण से भारतीय इतिहासों में आँख मूँदकर बार-बार दोहराए जाने वाली उन बातों का झूठ स्पष्ट हो जाता है कि शाहजहाँ का शासन-काल अतीव शान्ति एवं उन्नति का काल था।

भारत के मध्यकालीन इतिहास के परीक्षकों तथा प्रश्नपत्र बनाने वालों को शाहजहाँ के तथाकथित स्वर्णकाल के वर्णन के लिए कहकर मानवीय मेधा का अपमान नहीं करना चाहिए। यदि स्वर्णिम काल से उनका अभिप्राय शाहजहाँ द्वारा आतंक, भय, हत्या तथा लूटमार द्वारा अभूतपूर्व सम्पत्ति एकत्र करने से हो तब तो उचित ही है कि विद्यार्थियों से उसके विषय में सविस्तार लिखने के लिए कहा जाय।

बे सोचे, समझे अनेक दावों को तोते की भाँति रटने पर ही स्वर्णिम युग की यह भावना आधृत है। इनमें एक यह है कि शाहजहाँ ने ताजमहल बनाया। किन्तु शाहजहाँ का अपना सरकारी इतिहास, बादशाहनामा, के प्रथम भाग के ४०३वें पृष्ठ पर अंकित है कि ताजमहल मानसिंह का महल था, जिसे मुमताज के दफनाये जाने के लिए मानसिंह के पौत्र जयसिंह से ले लिया गया था।

शाहजहाँ के तथाकथित निर्माण सम्बन्धी ब्यौरों की असत्यता से भी प्रमाणित हो जाता कि ताजमहल हड़पा हुआ हिन्दू भवन है। इसके व्यय के आकलन भी भिन्न-भिन्न हैं—४० लाख रुपयों से लेकर ९ करोड़ १७ लाख तक। निर्माण-काल भी १० से २२ वर्ष तक बताया जाता है। इसके रचनाकार का नाम भी विभिन्न नामों से वर्णित है—कहीं रहस्यपूर्ण ऐसा एफेण्डी (Essa Effendi) तो कहीं मायावी अहमद मेलेन्डीस, कहीं फ्रांसीसी आस्टिन द बार्दो (Austin-de-Bordeaux) तो कहीं इतालवी जेरीनिमो वेरोनियो (Geronimo Veroneo) तो कहीं स्वयं शाहजहाँ। यह भी कहा जाता है कि इसका डिजायन उनमें से छाँटा गया है, जो विश्व

निविदा के रूप में, संसार भर से आए थे। अथवा शाहजहाँ के अपने दरबार में ही बने थे। इतना ही नहीं विभिन्न आलेखों में मुमताज की मृत्यु-तिथि में भी अन्तर पाया जाता है। यह नहीं पता कि उसकी मृत्यु १६३० में हुई अथवा १६३१ में। और फिर भी यह कहना कि निराश शाहजहाँ ने मानसिक सन्तुलन प्राप्तकर उसके आलेखन के लिए विश्व से निविदाएँ माँगीं, उसका चयन किया, हजारों चित्र बनाये, इसका काष्ठ का नमूना बनाया, धन की स्वीकृति दी, ईंट, संगमरमर एवं अन्य मूल्यवान पत्थरों के लिए आदेश दिया, निर्माण तक प्रारम्भ कर दिया और यह सब १६३१ तक—शाहजहाँ का इतना सरदर्द मोल लेना 'सहस्र रजनी चरित्र' की झूठों से भी बड़ा झूठ है।

इसी के साथ प्रो०बी०पी० सक्सेना का वह शोध है, जिसके अनुसार ताज के निर्माण का कोई प्रामाणिक अभिलेखन नहीं। यह प्रमाण के बावजूद भी जो ताज को देखकर विश्वस्त हो जाते हैं कि यह वास्तविक एवं मूल रूप में मुस्लिम निर्माण है वे उस सीधेसादे भूगोल के विद्यार्थी के समान हैं, जो यह कहता है कि व्यक्तिगत निरीक्षण से उसे पृथिवी गोल न मालूम होकर सिक्के जैसी चपटी लगती है।

ताजमहल के सम्बन्ध में यह मानने का प्रमाण है कि इसपर एक पाई भी खर्च करने के स्थान पर शाहजहाँ ने इस हिन्दू प्रासाद को हड़पकर अभूत धन कमाया। वह इसके रजत द्वार, स्वर्ण कटघरे (Railings), रत्न-जटित संगमरमर के पर्दों से रत्न तथा बहुमूल्य मयूर सिंहासन ले गया। शाहजहाँ के दरबार में अनेक वर्ष ठहरने वाला फ्रांसीसी यात्री टेवर्नियर तक अपने 'भारत यात्रा' (Travels in India, अंग्रेजी अनुवाद) के पृष्ठ १११ पर लिखता है कि "शाहजहाँ ने मुमताज को तास-ए-मकाँ (यानी ताजमहल) के समीप सोद्देश्य दफनाया था, जहाँ विदेशी आते थे ताकि संसार उसकी प्रशंसा करे।" (उसने 'समीप' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि प्रथमतः मुमताज कब्र के नीचे न दफनायी जाकर मुसलमानों के कथनानुसार बाहर बाग में दफनायी गयी थी)। शहाजहाँ सिंहासन पर १६२० में बैठा और मुमताज १६३० या १६३१ में मरी, वह इतनी मूल्यवान् योजना नहीं प्रारंभ कर सकता था, जबकि अपने शासन के प्रारंभ में ही समूचे राज्य में उठे हुए अनेक उपद्रवों के अतिरिक्त उसे बुन्देला

सरदार तथा खाँ जहाँ लोदी के विकट विद्रोह का सामना करना पड़ा था।

यदि उसके 'स्वर्ण युग' को समृद्धि तथा प्रचुर सामग्री के आधार पर उचित ठहराया जाता है तब भी यह सब झूठ एवं अविश्वसनीय है। उसकी लूट-खसोट के कारण शाहजहाँ के शासनकाल में हिन्दुस्तान में अनेक बार बड़े भयानक दुर्भिक्ष पड़े। उस युग में समृद्धि का तो कहना ही क्या, लोग सहस्रों की संख्या में भूख तथा रोग से काल-कवलित हो गये। यह शाहजहाँ के निजी सरकारी इतिहास से प्रमाणित है। दक्षिण एवं गुजरात के दुर्भिक्ष का वर्णन करते हुए अब्दुल हमीद लिखता है : "जीवन एक रोटी में बिक रहा था पर कोई खरीदने वाला नहीं था। कुत्ते का मांस बकरे के मांस के नाम पर बिकता था तथा मृतकों की पिसी हुई हड्डियाँ आटे के साथ मिलाकर बेची जाती थीं। अन्त में ऐसी दशा हो गयी कि आदमी आदमी को खाने लगा तथा पुत्र का गोश्त उसके प्रेम से अधिक मूल्यवान् हो गया। मृतकों की अत्यधिक संख्या से मार्ग अवरुद्ध हो गये।" आश्चर्य की बात नहीं कि शाहजहाँ के पाशविक शासन ने हिन्दुस्तान के निवासियों की ऐसी पाशविक दशा बना दी कि वे एक-दूसरे को इसी प्रकार खाने लगे जैसे जंगल के निवासी। कैसी विडम्बना है कि ऐसे शासन को स्वर्ण युग कहा जाता है।

यदि शाहजहाँ के शासन को यह कहकर भी उचित ठहराया जाता है कि वह स्वर्ण युग था कि उसकी सन्तान तथा उसमें प्रगाढ़ स्नेह था तथा उसने उन्हें समृद्ध एवं शान्त राज्य प्रदान किया तब भी यह दावा झूठा है। मोहम्मद काजिम के आलमगीरनामा में लिखा है, "आठवीं सितम्बर, १६५७ को बादशाह शाहजहाँ बीमार पड़े। प्रशासन में हर प्रकार की अनियमितताएँ आ गयीं तथा हिन्दुस्तान के विशाल भूभाग में अनेक झगड़े उठ खड़े हुए। चारों ओर विद्रोही लोगों ने विद्रोह के सिर उठा लिये। परेशान जनता ने कर देने से इन्कार कर दिया। विद्रोह की हवा चारों ओर फैल गयी थी तथा धीरे-धीरे यह बुराई इतनी बढ़ गई थी कि गुजरात में मुराद बख्श सिंहासन पर बैठ गया, खुतबा पढ़वाने लगा, अपने नाम के सिक्के चलाने लगा तथा राजा की उपाधि ग्रहण कर ली। बंगाल में यही कार्य शुजा ने किया, पटना पर चढ़ाई कर दी तथा वहाँ से बनारस को ओर बढ़ा।"

शाहजहाँ को मूत्रकृच्छ्र रोग था। उसके सबसे बड़े बेटे दारा शिकोह ने

अपने को नियमतः तथा शाहजहाँ के जीवन काल में ही राजधानी में सभी शाही काम करने के कारण अपने को वास्तविक उत्तराधिकारी समझा। शाहजहाँ के बीमार हो जाने पर दारा ने समस्त राजकीय कार्य अपने हाथ में ले लिये तथा मन्त्रियों को राजधानी की किसी भी बात का बाहर भेद न खोलने की शपथ दिलाकर दक्षिण, बंगाल तथा गुजरात से आने वाले सभी मार्गों को अवरुद्ध कर दिया ताकि उसके तीन भाई, जो मुगलों के दुर्दमनीय शत्रुओं के विरुद्ध राजकीय सेना का संचालन कर रहे थे, राजधानी में न घुस आयें।

दरबार के ऐसे वातावरण में जहाँ धोखेबाजी एवं कृतघ्नता का बोल-बाला था वहाँ शाहजहाँ की शारीरिक अक्षमता का समाचार गोपनीय न रह सका। शाहजहाँ के महत्त्वाकांक्षी तथा हत्यारे पुत्रों के बीच गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। प्रत्येक यह आकांक्षा करता था कि वह सर्वप्रथम अपने पिता को बन्दी बनाकर अन्य तीन की हत्या कर दे।

दारा जानता था कि सभी भाइयों में औरंगजेब सबसे मक्कार है। औरंगजेब को निर्बल बनाने के लिए दारा ने अपने पिता शाहजहाँ के नाम से औरंगजेब के साथ सभी सामन्तों तथा सेनापतियों को कचहरी में हाजिर होने का आदेश भेजा। इसे आशा थी कि इस प्रकार यह औरंगजेब को उन सैन्य टुकड़ियों से रहित कर देगा तथा सिंहासन हथियाने के लिए उनका लाभ स्वयं उठाएगा।

औरंगजेब ने बीजापुर का घेरा डाल रखा था परन्तु वहाँ के शासक सिकन्दर आशिकशाह से शीघ्र ही सन्धि करके घेरा उठा लिया तथा औरंगाबाद की ओर प्रस्थान कर दिया। इसी समय उसे सूचना मिली कि दारा ने आगरा दुर्ग के शाही कोष पर अधिकार करने के लिए दिल्ली से प्रस्थान कर दिया है।

दारा ने शुजा के विरुद्ध बंगाल में सेना भेजी। दिसम्बर, १६५७ की एक प्रातः शुजा नशे में चूर हो सोया हुआ था कि इस्लाम की तलवार चलाता हुआ एक हिन्दू नीच गफार राजपूत जयसिंह दारा की सेना लेकर जा धमका। उसका सामान तथा धन सभी लूट लिये गये और वह अपने कुछ साथियों को लेकर पलायन कर गया। आगरा लाये गये उन बन्दियों को दारा शिकोह ने सबके समक्ष प्रदर्शित किया और बहुतों को बुरी तरह

मार दिया। अनेक के हाथों को काटकर छोड़ दिया गया।

गुजरात में मुराद के सेनापति ख्वाजा शाहबज ने सूरत की सम्पन्न बन्दरगाह का घेरा डाल दिया तथा नगर-बुर्जों को बारूद से उड़ाकर नगर पर अधिकार कर लिया। तब उसने वहाँ के सभी व्यापारियों को बुलाकर बलपूर्वक उनसे ६ लाख रुपये ले लिये। उस लुटेरे ने तो १५ लाख की माँग की थी परन्तु नागरिकों ने बड़ी मुश्किल से इस दण्ड को कम करवाया था। इसी समय अक्षम होने से पूर्व ही शाहजहाँ द्वारा भेजी गयी सैन्य सहायता ले मीर जुलमा दक्षिण पहुँच गया। औरंगजेब ने उन टुकड़ियों को ले मीर जुमला को बन्दी बना लिया क्योंकि उसे मीर जुमला के इरादों पर सन्देह था।

मक्कार औरंगजेब ने झूठी लोमड़ी का नाटक रचा। उसने अपने भाई मुराद को अत्यन्त ही स्नेह-भरे पत्र में लिखा कि उसकी इच्छा मुराद को राजगद्दी पर बिठा स्वयं संन्यासी बन जाने की है। इस धोखे में फँसकर मुराद बख्श औरंगजेब द्वारा कहे गये ढंग से संयुक्त रूप से युद्ध करने के लिए सहमत हो गया। दोनों भाइयों की सेनाओं ने दारा शिकोह द्वारा भेजी सेना को घेर लिया। शाही सेना का सेनाध्यक्ष जसवन्तसिंह था। हिन्दू होने के नाते औरंगजेब ने उससे घृणा की। अप्रैल २०, १६५८ को उज्जैन के समीप युद्ध हुआ, जिसमें हड़बड़ी में दारा की सेना भाग खड़ी हुई। औरंगजेब ने शाही शिविर को लूट लिया। इस विजय के पश्चात् औरंगजेब उत्तर की ओर बढ़ा। औरंगजेब के बढ़ते हुए भयानक सैन्य-दल से घबराकर दारा सेना एकत्र कर औरंगजेब की प्रगति रोकने दक्षिण की ओर बढ़ा। अबतक शाहजहाँ अपने सबसे बड़े पुत्र के कार्य-कलापों का शान्त एवं तटस्थ दर्शक था। उसके हाथ से राज्य-नियंत्रण पहले ही खिसक गया था। हिन्दुस्तान चार शराबी विदेशी शाहजादों द्वारा हत्याओं के खेल का मैदान बना दिया गया था। शाहजहाँ ने अपने पुत्रों की मध्यस्थता करनी चाही थी पर औरंगजेब के मामा खाँ जहाँ ने इस कार्य से बादशाह को यह कहकर विरत कर दिया कि औरंगजेब स्नेहभरा भरोसे का आदमी है, जब शाहजहाँ ने दारा की सेनाओं की पराजय सुनी तो उसने क्रोधित हो अपना डण्डा खाँ जहाँ के सीने में दे मारा और उसे तीन दिन दरबार न आने के लिए आदेश दिया।

दारा की सेना धौलपुर होकर शामूगढ़ गयी। औरंगजेब एवं दारा की सेनाएँ एक-दूसरे से केवल एक मील की ही दूरी पर पड़ी थीं। मई, १६५८ में भयानक युद्ध हुआ। प्रारम्भ में तो औरंगजेब की सेनाओं की हार हुई पर शत्रुसेना से फेंके गये हवाई गोलों ने दारा के उन हाथियों को समाप्त कर दिया जिन पर स्वयं दारा तथा उसके सेनापति सवार थे। तत्पश्चात् मजबूरन उन्हें घोड़ों पर सवार होना पड़ा। घोड़ों पर सवार होने के कारण सैन्य टुकड़ियों को वह नहीं दिखाई पड़े। भरे युद्ध में नेताओं को न देख सकने के कारण दारा की सैन्य टुकड़ियाँ निराश हो भाग खड़ी हुईं।

पराजित दारा शिकोह घबराकर आगरे की ओर भागा। उसके पास दो सहस्र अश्वारोही थे जिनमें से अधिकांश घायल थे। बिना किसी सामग्री के दारा ने एक सन्ध्या को सिर नीचा किये, बिना किसी घोषणा के, आगरे में प्रवेश किया। शाहजहाँ ने ढाढस देने के लिए दारा को बुलाया तो उसने मना कर अपने स्त्री-बच्चों समेत लाहौर की ओर बढ़ने के लिए दिल्ली की राह ली। दारा के तीसरे दिन दारा की सुरक्षा के लिए शाहजहाँ ने ५,००० सैनिक भेज दिये।

अपनी विजय के पश्चात् थोड़े समय आराम करने के बाद औरंगजेब ने अपने पिता बादशाह शाहजहाँ को फरेब से भरा एक पत्र भेजा जिसमें उससे क्षमा माँगते हुए इस संघर्ष का कारण कोई व्यक्तिगत लाभ न मानते हुए अल्लाह की इच्छा मानी। अनेक राजदरबारी यह देखकर कि औरंगजेब बहुत बड़े विजयी के रूप में उभर रहा है, सामूगढ़ में जाकर उससे मिल गये। उनको साथ ले औरंगजेब उत्तर की ओर बढ़ा और आगरे के बाहर डेरा डाल दिया। भवितव्यता के समक्ष नत हो शाहजहाँ ने औरंगजेब को एक अत्यन्त संरक्षण भरा पत्र एवं एक तलवार भेजी जिस पर प्रमुख 'आलमगीर' अर्थात् विश्व-विजेता लिखा था। यह शुभ शकुन ही नहीं समझा गया अपितु यह शान्तिपूर्वक आगरे पर अधिकार कर लेने का भी निमंत्रण था। ठीक इसके बाद ही औरंगजेब ने अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान को वहाँ के निवासियों को लूटने तथा आतंकित करने के लिए आगरे भेजा। इस प्रकार वहाँ श्मशान की शान्ति छा गयी।

एक बार सत्ता पा जाने पर औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को जून ८, १६५८ में आगरा-दुर्ग के एक भाग में बन्दी बना दिया तथा बाह्य

जगत् से उसका सम्बन्ध पूर्णतया विच्छेद कर दिया। औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद सुलतान को अपने बाबा को बन्दी बनाए रखने का काम सौंपा गया।

औरंगजेब ने अब बड़ी हृदयहीनता के साथ अपनी सैन्य टुकड़ी अपने अग्रज दारा के पीछे इस आदेश के साथ भेजी कि उसे युद्ध में मार दिया जाय या बन्दी बना लिया जाय।

दारा अब निराश्रित तथा भगोड़ा था अतः तलवार के बल पर उसने दिल्ली निवासियों से उनकी समस्त सम्पत्ति लूटना प्रारंभ किया। मुसलमानों के हजार वर्ष के भ्रातृ-वधों, आक्रमणों, परस्पर विनाशकारी युद्धों के बीच हिन्दुस्तान के अधिकांश नगरों को कितने ही इस प्रकार के बलात्कार तथा लूट सहने पड़े थे। हर यवन शाहजादा या दरबारी शाही लूट से कुछ-न-कुछ अवश्य पाता। "अमीरों के घरों अथवा शाही कोषों में दारा को जो कुछ मिला उसे ही उसने हथिया लिया।"

औरंगजेब ने अपने बन्दी पिता से मिलना सर्वथा व्यर्थ समझा। इतना ही नहीं, वह अपने अग्रज दारा के पीछे, जिसने दिल्ली छोड़ लाहौर की राह पकड़ ली थी, रवाना हो गया। शाहजहाँ ने गुप्त रूप से काबुल के महावत खाँ को दारा की सहायता करने, लाहौर में उससे मिलने, इसकी सम्पत्ति लूटने तथा संघर्ष में औरंगजेब को हराने के लिए लिखा। दिल्ली जाते समय मथुरा में औरंगजेब ने अचानक ही, बड़ी क्रूरता से, अपने साथी भाई मुरादबख्श को बन्दी बना लिया। अब तक औरंगजेब उसे बड़ी आकर्षक भेंटों तथा चापलूसी भरी बातों से प्रसन्न करता रहा था, अतः मुराद ने अपने रक्षकों को समीप रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। उसी रात चार हाथी तैयार किये गये, जिनके हौदों में बिठाकर चार बन्दियों को चार दिशाओं में, सख्त पहरे में, भेज दिया गया। आगरे की ओर भेजा जाने वाला मुरादबख्श था। यह चाल मुराद के संभाव्य सहानुभूतिकर्ताओं को विभ्रम में डालने के लिए चली गई थी कि ऐसा न हो कि वे सब मिलकर उसके पलायन में सहायक हों।

ज्यों ही दारा लाहौर पहुँचा अपने चोरों-गुण्डों के साथ उसने लाहौर को लूटकर एक करोड़ का सामान इकट्ठा कर लिया। सुलेमान शिकोह बंगाल से आगरे की ओर बढ़ा। पर ज्यों ही वह हरिद्वार पहुँचा उसने

सुना कि उसका सामना करने कोई सेना बढ़ी आ रही है। अतः वह मार्ग बदलकर काश्मीर की पहाड़ियों में भाग गया।

दारा की सेना ने धीरे-धीरे उसका साथ छोड़ दिया जिससे वह इतना निराश हो गया कि औरंगजेब के अबाध गति से बढ़ते आने का समाचार सुन वह मुल्तान और बाद में थट्टा भाग गया। प्रत्येक नदी पार करने पर वह वहाँ के नाविकों की सभी नौकाओं को जला देता। इस प्रकार यवन शासन के हजार वर्ष में हिन्दुस्तान की जनता का प्रत्येक वर्ग इतना अभावग्रस्त हो गया कि आज हमारा अर्थतंत्र बालू पर टिक गया है।

श्रीनगर के मार्ग में सुलेमान शिकोह के लोगों ने शाहजादी कुदसिया से दो लाख रुपये छिनवा लिये तथा उसके प्रबन्धक को ले जाकर मौत के घाट उतार दिया। इसके कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि इन शाही लुटरों ने कुदसिया से बलात्कार भी किया।

श्रीनगर के प्रधान ने बाह्यतः सुलेमान शिकोह का ससम्मान स्वागत किया। पर एक बार दुर्ग में प्रलोभित कर उसने सुलेमान को बन्दी बना, उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति छिनवा आगरा के दुर्ग में ले जाए जाने के लिए औरंगजेब के सेनापतियों को सौंप दिया। आगरे के दुर्ग में औरंगजेब का पुत्र मुहम्मद सुलतान पकड़े गये सभी शाही बन्दियों को एकत्र कर रहा था।

जब औरंगजेब ने अपना डेरा मुल्तान में डाला तथा दारा भक्कर (संस्कृत शब्द 'भास्कर' का अपभ्रंश) भाग गया तो समाचार आया कि शाहजादा शुजा शाही राजधानी, आगरा पर अधिकार करने बंगाल से चल दिया है। इसे भयानक दुर्भाग्य मान औरंगजेब दिल्ली की ओर लौट पड़ा। वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि प्रयाग, चीतपुर तथा बनारस के दुर्ग अधिकारी आत्म-समर्पण कर शुजा से मिल गये हैं। शुजा ने इन सभी नगरों एवं समीपस्थ प्रदेश को मुगल-सिंहासन की प्राप्ति के लिए युद्ध करने के लिए लूटा।

मीर जुमला (मुअज्जम खाँ) ने जिसे बन्दी बना, दौलताबाद छोड़ दिया गया था अपनी भक्ति की सौगंध खाकर दया की भीख माँगी, छोड़ दिया गया। उसने सभी म्लेच्छ आवाराओं को एकत्र किया, कुछ हिन्दुओं को मुस्लिम बनने के लिए बाध्य किया तथा पूरे मार्ग लूटता-खसोटता क्रों

की विशाल वाहिनी ले, औरंगजेब से जा मिला। औरंगजेब की विशाल सेना अब शुजा की सेना का सामना करने पूर्व की ओर बढ़ी। युद्ध में शुजा की सेना ने मुंह की खायी और वह युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। औरंगजेब के सेनानायक अब शत्रुओं की सफाई करने के लिए नियत किये गये। एक टुकड़ी दारा तथा दूसरी शुजा का पीछा कर रही थी। भूखा, प्यासा, निराश दारा भक्कर में था। कूच में होकर मार्ग के सभी नगरों को विनष्ट करता हुआ दारा अहमदाबाद की ओर चला। अहमदाबाद में उसने लोगों से १० लाख रुपये की मूल्यवान् धातुएँ एवं अन्य सामग्री एकत्र की। उसकी टुकड़ियाँ सूरत, खम्बायत तथा भड़ोंच लूटने चलीं। औरंगजेब दारा से मिलने अजमेर रवाना हुआ। दारा ने जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह से सहायता की प्रार्थना की जिन्होंने नम्रतापूर्वक इंकार कर दिया। किंकर्तव्य विमूढ़ दारा औरंगजेब की सैन्य-टुकड़ियों को परेशान करने अजमेर की पार्श्ववर्ती पहाड़ियों में जा छिपा। उसे वहाँ से भी घेरकर खदेड़ दिया गया। तब वह अहमदाबाद की ओर भागा।

पूर्व की ओर शुजा का ढाका तक पीछा किया गया। वह भी औरंगजेब की सेना से अनुधावित होता हुआ हड़बड़ी में भागता ही रहा। अन्त में उसने बर्मा की सीमा से लगे हुए अराकान पहाड़ियों के राखन के हिन्दू राजा से सहायता माँगी। पर तभी मुगल लुटेरों ने उसपर झपटा मार १६६० ई० में उसे समाप्त कर दिया।

अहमदाबाद में कोई सहायता न पा दारा कूच के रास्ते पुनः भक्कर भागा। स्थानीय सरदारों के यहाँ शरण ले दारा को अब भी मुगल सिंहासन की प्राप्ति की आशा थी। जब वह मलिक जीवन नामक एक सरदार का अतिथि था उसकी पत्नी, नादिरा बेगम की अतिसार से मृत्यु हो गई। इसके ठीक पश्चात् मलिक जीवन ने दारा और उसके पुत्र सिफिर शिकोह को बन्दी बना औरंगजेब के सेनानायकों को सौंप दिया। दोनों को जंजीरों में बाँध नंगे हाथियों पर दिल्ली चाँदनी चौक तथा अन्य भीड़भाड़ युक्त मुख्य मार्गों पर घुमाया गया। सितम्बर, १६५६ की एक अँधेरी रात में दारा शिकोह, औरंगजेब के बड़े भाई तथा अभागे बन्दी, को यंत्रणा दे-देकर मार दिया गया। दूसरे दिन इसकी लाश को दिल्ली में घुमाकर उस हिन्दू महल में दफना के शेष किया गया जहाँ कहा जाता है [illegible]

हुमायूँ दफन पड़ा है।

यह देख-देखकर कि उसकी सन्तानें तथा उसके अब तक के साथी उसके हत्यारे तथा मक्कार पुत्र औरंगजेब द्वारा धीरे-धीरे समाप्त किये जा रहे थे, शाहजहाँ अपना भाग्य कोसता रहा।

कभी-कभी अपने एकाकीपन तथा असम्मान के विषय में वह अपने पुत्र औरंगजेब को बड़े लम्बे पत्र लिखता। यह मुसीबतें तथा नीचा दिखाना सब भाग्य का फल था जिसे अल्लाह एक दुष्ट पुत्र द्वारा दुष्ट पिता को दे रहा था। औरंगजेब पैतृक स्नेह का प्रदर्शन करता हुआ उसे छलपूर्ण पत्र लिखता रहा तथा साथ ही अपने पिता के प्रति क्रूरता एवं असम्मान में वृद्धि करता रहा। शाहजहाँ को पता चला कि ग्वालियर दुर्ग की कोठरी से पलायन करता हुआ उसका पुत्र मुराद पकड़ा गया तथा उसका क्रूरतापूर्वक बध कर दिया गया।

जिस सम्पत्ति को शाहजहाँ ने छिपा रखा था उसे औरंगजेब के क्रूर आदेशों के अनुसार उसने अनिच्छापूर्वक बता दिया। दारा शिकोह जल्दी में आगरे के दुर्ग से पलायन करते समय अपने हरम की स्त्रियों और २७ लाख रुपये के जवाहरात छोड़ गया था, जिन्हें सौंपने के लिए शाहजहाँ को मजबूर कर दिया गया।

इस प्रकार अपने पुत्र से पीड़ा तथा अपमान पा, शाहजहाँ औरंगजेब के शासन के आठवें वर्ष, जनवरी २२, १६६६ को मर गया। गर्वीला विलासी बादशाह लड़के द्वारा बन्दी बनाया जाकर मरा। शाहजहाँ का शासन फरवरी ६, १६२८ से सितम्बर ८, १६५७ तक रहा। १६५८ में औरंगजेब ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया। अन्तिम आठ वर्ष के बन्दी जीवन के अपमान से मृत्यु ने उसे त्राण दिया। अनेक क्रूरकृत्यों का दोषी शाहजहाँ खामोशी से, बिना किसी के याद किए, मर गया। अन्य यवन दरबारियों तथा सरदारों की भाँति शाहजहाँ ने भी अपने लिए कोई मकबरा नहीं बनवाया। कहा जाता है कि वह उस सर्वश्रेष्ठ हिन्दू भवन, ताजमहल, में दफनाया हुआ है जिसे उसने अपनी पत्नी मुमताज को दफनाने के लिए हिन्दू राजा से लिया था। इसमें पूर्ण सन्देह है कि मुमताज वहाँ दफनायी गयी है। आगरे के दर्शक को मूर्ख बनाकर विश्वास दिलाया जाता है कि आगरे के दुर्ग की दीर्घा में लगे हुए नन्हें से शीशे में वह शाह-

जहाँ ताजमहल की परछाईं देखा करता था तथा इसमें दफन अपनी मृतक पत्नी का स्मरण कर उच्छ्वास भरा करता था। अब इस बात का पता लगा है कि इस शीशे को ५० वर्ष पूर्व पुरातत्त्व विभाग के एक चपरासी, इंशा अल्लाखाँ ने लगाया था। आगरा दुर्ग तथा ताजमहल की दीर्घाओं की अनेक गुफाएँ इस तथ्य की मौन गवाह हैं कि शाहजहाँ समेत अनेक विदेशी यवन आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान की लूट के हजार वर्षों में प्रभायुक्त रत्नों को निकाल लिया।

: ८ :

औरंगजेब

औरंगजेब का नाम भारतीय इतिहास में अभिशाप के रूप में है क्योंकि यह पाप, द्वेष, दुष्टता, क्रूरता, आतंक तथा निर्दयता की पराकाष्ठा का द्योतक है।

औरंगजेब का कोई भी क्रूर कार्य धर्म-निरपेक्ष नहीं था। वे सब के सब विशेष ढंग से निर्दयतापूर्वक तथा मुसलमानों की शान के लिए इस्लाम के नाम पर अत्यन्त हृदयहीनता के साथ किये गये थे।

भारत में ७५० वर्षों के विदेशी शासन के शीर्ष पर राजगद्दी पर आसीन होने वाला औरंगजेब, छठा मुगल बादशाह, कुशासन तथा दुष्कृत्यों को पराकाष्ठा पर पहुँचा देने वाले का ही दूसरा नाम बन गया है।

उसके पश्चात् विदेशी शासक के विषदन्त उभरते हिन्दुत्व ने समाप्त कर दिये तथा जो क्रूर पशु हजार वर्षों तक मनमानी करता रहा था उसे अच्छी प्रकार घेरकर नियंत्रित कर लिया गया, नपुंसक बना दिया गया तथा पिंजरे में बन्द कर दिया गया।

औरंगजेब की धूर्तता उसकी अपनी थी। उसके अहंकेन्द्रित धक्के ने उसके पिता शाहजहाँ को शाही मुगल सिंहासन से धकेल कर आगरे के लाल किले के एक एकान्त कक्ष में बन्द कर दिया तथा तीन भाइयों का शिरच्छेद किया। सभी विरोधियों को समाप्त कर औरंगजेब ने सभी मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करने, अपनी प्रजा को लूटने तथा संहार करने का कुत्सित जीवन प्रारम्भ किया।

औरंगजेब अपने कुकृत्यों से स्वयं इतना लज्जित हुआ कि उसने "अपने अनुवादों के अभिलेखों पर प्रभावशाली ढंग से विराम लगा दिया।" उसके शासन की घटनाएँ "अतः किसी कार्य के निमित्त लिखे गये पत्रों तथा ग्रन

धिकारी (अराजकीय, प्राइवेट) व्यक्तियों द्वारा चुपचाप लिखी गई टिप्पणियों द्वारा ही जानी जा सकती हैं।" (पृ० १७४, भाग VII, इलियट एण्ड डाउसन)। वस्तुतः औरंगजेब के कार्यकलाप इतने नीचतापूर्ण थे कि कितना भी स्तुतिगान उन पर कीर्ति का आवरण नहीं चढ़ा सकता था, अतः (अपने शासन के प्रथम दशकोपरान्त ही) उसने अपने घोर चाटुकारों तक से उसके शासन का कोई भी लेखा रखने के लिए मना कर दिया।

प्रो० जॉन डाउसन द्वारा सम्पादित सर एच० एम० इलियट का मध्यकालीन यवन इतिहास का अष्ट-खण्डीय अध्ययन पाठक को सभी यवन इतिहासों की अविश्वसनीयता के प्रति बार-बार चेतावनी देता है। मुहम्मद काजिम के आलमगीरनामा के विषय में विद्वान् इतिहासकार का कथन है: "उस कृति के प्राक्कथन से यही स्पष्ट नहीं है कि लेखक को उस कृति के सम्पादन में प्रोत्साहन मिलता अपितु यह भी कि जहाँ भी बादशाह के व्यक्तिगत चरित्र को प्रभावित करने वाली घटना हो उसके वर्णन पर तो तनिक भी विश्वास न किया जाय। यही बात लगभग सभी समकालीन इतिहासकारों पर लागू होती है जो उबाने वाली प्रशंसा तथा चाटूक्ति युक्त शीर्षकों से भरे होते हैं। इतिहासकार को स्वयं बादशाह द्वारा छानबीन करने के लिए पृष्ठों को जमा करना पड़ता था। तथा सन्देहास्पद स्थलों पर स्वयं बादशाह द्वारा निर्देशित होना पड़ता था कि क्या रखा जाय और क्या निकाल दिया जाये। शाही श्रोता से स्वयं अपराधी बनने की आशा नहीं की जा सकती। अतः हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे सभी इतिहास एकपक्षीय वृत्तान्त हैं जिनपर किसी भी दशा में भरोसा नहीं किया जा सकता।" (पृ० १७४-१७५, भाग VII)।

विख्यात एवं श्रम करने वाले अंग्रेज विद्वान् द्वारा अपने आठ खण्डों में अनेकत्र दी जाने वाली ऐसी योग्य सम्मतियों से हमारी सरकार तथा जनता की आँखें खुल जानी चाहिए कि यवन शासन का '१,००० वर्ष का इतिहास बिल्कुल धोखेधड़ी से भरे विवरणों का संग्रह है, जिसमें अकबर तथा शेरशाह, फिरोजशाह तथा मुहम्मदशाह जैसे शरारती राजाओं को आगामी पीढ़ियों के विश्वास के लिए मानवता के बहुत बड़े उपकरण के रूप में उठाया जाकर प्रामाणिक सिद्ध किया गया है। जब समुचित

भारतीय इतिहास के अध्यापक तथा प्राध्यापक बड़े गर्व से कहते हैं कि अबुल फजल ने अपनी सभी लिखित सामग्री अकबर द्वारा जँचवायी तथा ठीक करायी जाती थी तो वे अज्ञानतापूर्वक दोहरे झूठ को बताते हैं— प्रथम चाटुकार इतिहासकार द्वारा, द्वितीय लुटेरे राजा द्वारा।

सर एच० एम० इलियट जिस अविश्वसनीयता की बात यवन राजाओं के समकालीन इतिहासकारों के विषय में बताते हैं वह उतनी ही बाद के यवन इतिहासकारों के सम्बन्ध में सही है। यवन इतिहासकार पिछले शासनकाल के विषय में लिखते हुए यद्यपि मृतक राजा से भयभीत नहीं होते थे फिर भी वे इतने धर्मान्ध थे कि हिन्दुओं के प्रति की गयी भयानकतम क्रूरताओं को उन्होंने श्रेष्ठतम व्यवहार में परिवर्तित कर दिया। अतः जब कोई यवन इतिहासकार समसामयिक राजा के विषय में नहीं लिख रहा होता फिर भी उसकी लेखनी सदैव गन्दे-से-गन्दे साम्प्रदायिक विष में डूबी होती है। फलतः वह हिन्दुस्तान तथा हिन्दुत्व की बदनामी करने तथा इस्लाम और यवन कार्यों की प्रशंसा करने में उल्लसित होती है। औरंगजेब की लम्पटता में सहायता देने वाले ऐसे एकपक्षीय वर्णनों के होते हुए भी जो बातें हम तक छन आयी हैं उन्हें पढ़ने पर लगता है कि जैसे हम किसी राक्षस की भयावह कहानी पढ़ रहे हों।

पाँचवें मुगल बादशाह शाहजहाँ के चार जायज कहे जाने वाले पुत्रों में औरंगजेब तीसरा था। उसका जन्म गुजरात के दोहद नामक स्थान पर १६१६ ई० में हुआ था।

जब उसका पिता शाहजहाँ शासन करता था, सेना में औरंगजेब ने विभिन्न स्थान ग्रहण किये तथा अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। महत्त्वाकांक्षी, दुष्ट तथा विश्वासघाती होने के कारण औरंगजेब के लिए अपने बादशाह पिता के अधीन रहना कष्टकारक था। उसके किसी भाई द्वारा शाही सिंहासन पर अधिकार कर लेने की सूचना भी असहनीय थी। वह पहले ही ३६ वर्ष का था फिर भी उसके पिता का शासन लगता था, मानो कभी समाप्त ही नहीं होगा।। अन्त में अवसर आ ही गया।

उस समय औरंगजेब उस मुगल सेना का सेनानायक था, जिसने मुस्लिम आदिलशाही साम्राज्य की राजधानी बीजापुर का घेरा डाल

दिया था। मुहम्मद काजिम के 'आलमगीर नामा' के अनुसार, "८ सितम्बर, १६५७ को बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया।...प्रशासन में प्रत्येक प्रकार की अव्यवस्था फैल गई तथा हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण भू-प्रदेश में अशान्ति फैल गई।...असन्तुष्ट तथा विद्रोही लोगों ने चारों ओर संघर्ष तथा विप्लव में सिर उठा लिया।...अशान्त प्रजा ने कर देने से इन्कार कर दिया।...विद्रोह का बीज प्रत्येक दिशा में अंकुरित हो गया था और क्रमशः यह बुराई इतनी अधिक हो गयी थी कि गुजरात में मुराद बख्श सिंहासन पर बैठ गया, खुतबा पढ़वा लिया तथा अपने नाम के सिक्के ढलवाकर बादशाह की पदवी ग्रहण कर ली। बंगाल में शुजा ने वही कार्य किया, पटना के विरुद्ध सैन्य संचालन किया। तथा वहाँ से बनारस की ओर बढ़ा।" यदि शाहजहाँ के शासनकाल का कोई अन्य लेखा-जोखा न होता तब भी उपर्युक्त अंश इस तथ्य के लिए पर्याप्त प्रमाण था कि शाहजहाँ का शासनकाल निश्चय ही निस्सीम क्रूरता तथा दुष्टता का रहा होगा। नहीं तो उसकी बीमारी की सुनकर उसके सभी पुत्र तथा प्रजाजन एक-दूसरे का गला काटने कैसे दौड़ सकते थे? सबसे बड़े पुत्र दाराशिकोह को अन्य तीन भाइयों की अपेक्षा एक लाभ यह था कि राजधानी में था जबकि अन्य तीनों बहुत दूर के प्रान्तों में नियुक्त थे। यह देख कर कि अब तो उसका पिता असहाय है, दाराशिकोह ने सत्ता अपने हाथ में ले ली तथा जिन आदेशों पर चाहा, अपने रोगी तथा दुर्बल पिता से हस्ताक्षर करा लिये।

दारा ने समस्त महत्त्वपूर्ण सेनानायकों को भाइयों के साथ दूर पड़ी सैन्य टुकड़ियों को लेकर राजधानी आ जाने के आदेश दिये। उसका आशय था कि उन सबको बिना सैन्य टुकड़ियों के जिनकी सहायता से वे सिंहासन हड़पना चाहते थे, दूर छोड़ दिया जाये। बादशाह की अक्षमता के समाचार को दबा दिया गया तथा दूरस्थ चौकियों को आदेश दे दिया गया कि तीनों में से कोई भाई आगरे की दिशा की ओर न बढ़े।

मध्यकालीन मुस्लिम दरबार के गन्दे वातावरण में कोई भी बात गुप्त नहीं रह सकती थी। शाहजहाँ की बीमारी का समाचार उसके तीनों पुत्रों तक किसी प्रकार पहुँच गया। प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से अन्य तीनों को मारने की तथा अपने पिता को बन्दी बनाने की योजना

बनायी। दुष्ट तथा नीच औरंगजेब अन्य सबको भ्रमित करने में सफल हुआ। उसने बहुत शीघ्र बीजापुर के शासक से सन्धि की और उत्तर की ओर बढ़ा।

औरंगजेब ने सर्वप्रथम छोटे भाई मुराद से यह घोषणा करते हुए सन्धि की कि उसे न तो धन की आवश्यकता है न ख्याति की। औरंगजेब ने कहा कि उसकी एकमात्र आकांक्षा यही है कि शाही सिंहासन पर मुराद बैठे तथा वह फकीर बनकर मक्का चला जाय। इस प्रकार अपनी तथा मुराद की सेनाएँ सम्मिलित करके औरंगजेब ने आगरे का मार्ग पकड़ा और बाद में मूर्ख तथा संदेहहीन मुराद को बन्दी बनाकर ग्वालियर की एक अंधेरी कोठरी में डाल दिया।

दारा तथा शुजा, उसके दो बड़े भाई भगोड़े के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागते रहे तथा उन्हें औरंगजेब की सेनाएँ बुरी तरह खदेड़ती रहीं। शाहजहाँ आगरे के लालकिले में बन्दी था ही तथा दारा उत्तर में लाहौर से आगे भाग गया था फलतः औरंगजेब ने जुलाई २२, १६५८ को उस समय स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया, जिस समय दिल्ली के हिन्दू से हड़पे हुए महल तथा बाग में, जिसका नाम उसने आगराबाद उपनाम शालामार रख लिया था, डेरा डाले पड़ा था। उस समय उसका जो शानदार नाम तथा पदवी घोषित की गई वह थी अबुल मुजफ्फर मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आलमगीर बादशाह ए-गाजी।

औरंगजेब के शासन के प्रारंभिक कुछ वर्षों का प्रमुख कार्य अपने दो बड़े भाइयों को जो अब भी दूर थे, पीछा करना था। एक-दूसरे के विरुद्ध अपना युद्ध जारी रखने के लिए तीनों भाई हिन्दुस्तान को लूटते तथा हिन्दुत्व का विनाश करते रहे।

सितम्बर, १६५९ में सबसे बड़ा भाई दारा शिकोह को, जिसने शाहजहाँ की बीमारी के काल में कुछ महीनों तक वास्तविक प्रभुसत्ता भोगी, अपने पुत्र के साथ बड़े अपमानपूर्वक दिल्ली की मुख्य सड़कों में घुमाया जाकर अन्त में यातनाएँ देकर मार दिया गया। यह सब कार्य औरंगजेब के आदेश पर खिज्राबाद नामक हिन्दू उद्यान में शाह नजर चेला द्वारा हुआ। बाद में उसका मृतक शरीर एक बार फिर दिल्ली की सड़कों पर

घुमाया गया। वह हुमायूँ का मकबरा नाम से विख्यात हिन्दू भवन में दफना दिया गया जो, फुतुहात-ए-आलमगीरी इतिहास (पृ० १६८, भाग VII) के अनुसार "इस घराने के सभी मारे गये राजकुमारों का कब्रिस्तान है।" यद्यपि दारा भी ऐसा ही धर्मान्ध यवन था जैसे अन्य परन्तु उस पर यह दोष लगाया गया कि उसे हिन्दुओं एवं उनके धार्मिक ग्रन्थों से सहानुभूति है। जिन दिनों भारत में यवन धर्मान्धता का बोलबाला था, बड़े-बड़े धर्मान्ध दुष्ट मुसलमान को हिन्दू अथवा उनसे सहानुभूति रखने वाला कहकर यातना दी जाती थी तथा प्राण भी ले लिये जाते थे। राज्य के उत्तराधिकारी दारा की हत्या को भी औरंगजेब ने इसी तरकीब से अनुमोदित किया था। औरंगजेब के चाटुकारों की इन झूठी टिप्पणियों के जाल में फँसकर इतिहासकार दारा को बड़ा भारी संस्कृतज्ञ तथा हिन्दू धर्मग्रन्थों का प्रेमी बताते हैं। ऐसे ही नितान्त असत्य दावे अब्दुल रहीम खानखाना, खुसरु तथा अनेक अन्यों के विषय में किये गये हैं। ये बातें ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा दरबार में कही जानी शुरू कर दी जाती हैं ताकि उसके विरुद्ध वातावरण बनाया जाकर उसके प्राण ले लिए जायें। संस्कृत का वास्तविक पण्डित उसके समान धर्मान्ध, दुष्ट, हत्यारा, कातिल, मद्यप, क्रोधी, लुटेरा तथा अपहरणकर्ता नहीं रह सकता।

मुन्तकबल लुबाब का लेखक खफी खाँ लिखता है: "औरंगजेब के शासनकाल के प्रथम दो वर्षों में देश में, मुख्यतः पूर्वी एवं उत्तरी अंचलों में, विशाल (म्लेच्छ) सेना के गतिशील होने से अन्न महँगा हो गया था।" यह परोक्षतः स्वीकृत उस भयानक दुर्भिक्ष का स्वीकरण है जो यवन शासन के सहस्र वर्षों तक की लूटपाट के कारण उत्तर भारत में फैला रहा।

खुली लूट, रिश्वत तथा अन्य ऐसी ही अवैधानिक अर्थ-स्वीकृति के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के करों के नाम पर जनता निर्दयता के साथ लूटी जाती थी। इनमें से कुछ थे "हर मार्ग, देश के छोटे तथा नावों में चलने वालों से राहदारी कर, प्रत्येक व्यापारी, दुकानदार, कसाई, कुम्हार, काक्षी, रंगरेज, जौहरी, बैंकर के घर या भूमि पर लगाया गया पंडापी नामक कर, बाजार की भूमि, दुकान तथा स्टाल पर कर। अन्य भी अनेक

वैधानिक कर थे; यथा सरशुमारी, बजशुमारी (बकरियों पर कर), बर गदी (Bar-Gadi), बंजर की चराई, तुवाना (मेलों में सभी यात्रियों से लिया गया कर), शराब, जुआघरों, वेश्यालयों से वसूला गया कर, अर्थ-दण्ड, नजराने, ऋणदाताओं द्वारा प्राप्त धन का चतुर्थांश—ये तथा ऐसे ही अन्य ८० करों से शाही कोष में करोड़ों रुपये प्राप्त होते थे।" खफी खाँ का यह कथन (पृष्ठ २४७, भाग VII) कि दुर्भिक्ष के कारण ये सभी समाप्त कर दिये गये थे, वैसा ही फरेब है जैसा प्रत्येक यवन इतिहासकार ने अपने शाही संरक्षक के पक्ष में किया है। परोक्षतः उसके इस असत्य-कथन की स्वीकारोक्ति भी इस टिप्पणी में पायी जाती है : "यद्यपि दयालु बादशाह ने कड़े आदेश दिये थे कि इन करों को वसूल न किया जाय, पर लोगों में इतना अधिक लोभ था कि इस राजकीय निषेध का कोई फल नहीं निकला।" यवन कर कितने घृण्य थे, इस विषय में खफी खाँ कहता है, "ईमानदार एवं उचित लोगों (अर्थात् यवनों) द्वारा विशेषतः राहदारी को बहुत बुरा कर बताया जाता है···पर इससे बहुत पैसा एकत्र होता है। शाही भूभाग के अधिकांश भाग में फौजदार तथा जागीरदार, बल-पूर्वक तथा यातनापूर्वक, व्यापारियों एवं दीन यात्रियों से पहले से कहीं अधिक धन एकत्र करते हैं। जमींदार भी जानते हैं कि कोई पूछताछ तो होती नहीं अतः अपने क्षेत्र के मार्गों से राजकीय अधिकारियों की अपेक्षा अधिक धन एकत्र करते हैं। धीरे-धीरे मामला यहाँ तक बढ़ गया है कि फैक्टरी से अपने गन्तव्य स्थल तक पहुँचने तक माल के मूल्य से दुगुना कर वसूल कर लिया जाता है। कर एकत्र करने वालों एवं जमींदारों की क्रूरता एवं दुष्टता के कारण सहस्रों यात्रियों तथा शांतिप्रिय बटोहियों की सम्पत्ति, सम्मान एवं जीवन विनष्ट हो गये।"

यह संकेत कि "बटोहियों का सम्मान विनष्ट कर दिया जाता" स्पष्ट है कि मार्गों पर बलात्कार की घटनाएँ होती थीं।

औरंगजेब के शासन के तीसरे वर्ष उसका पुत्र मुहम्मद सुलतान, जिससे कहा गया था कि बंगाल को अधिकार में किए हुए तथा दिल्ली सिंहासन पर आँख लगाये शुजा का पीछा करे, शराब तथा रमणियों के प्रलोभन द्वारा शुजा पकड़ लिया गया। शुजा ने मुहम्मद सुलतान के साथ अपनी पुत्री का निकाह करना चाहा। यवन शाहजादे को फाँसने के लिए

इससे अधिक और क्या आवश्यकता थी ! हिन्दू जनों से लूटी गई समस्त सम्पत्ति को लेकर शुजा के शिविर में चला गया। मुहम्मद सुलतान के आदेश पर शाही सेना का सेनापति मुअज्जम खाँ बड़ी कठिनाई में पड़ गया। उसे भय था कि शाहजादा के पक्ष बदलने के कारण औरंगजेब उसपर भयानक क्रोध करेगा तथा बदला लेगा। औरंगजेब के पुत्र को अपनी ओर कर लेने से शुजा का सम्मान बढ़ गया था, अतः उसने शाही सेना को मुअज्जम खाँ के आधीन कर कहर ढाना शुरू किया। वर्षा ऋतु ने इस कार्य में बाधा पहुँचायी। इसी बीच मुहम्मद सुलतान अपना हक माँगने लगा। जब शुजा की पुत्री उसे दे दी गयी तब वह शान्त हुआ।

वर्षा के पश्चात्, यह देखकर कि उसका सेनापति मुअज्जम खाँ शुजा को नहीं हरा सकता, नवीन सेना लेकर औरंगजेब स्वयं बंगाल पहुँचा। शुजा भाग खड़ा हुआ। अपने क्रूर पिता के भयानक बदले से भयभीत होकर मुहम्मद खाँ ने मुअज्जम खाँ के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। जब वह दुबारा शाही सेना की ओर जा रहा था उसके नये ससुर शुजा ने उसपर गोली चलायी। किसी प्रकार शाहजादा बच गया तथा जिस कोष को वह शुजा के पास ले गया था उसका बहुत कम अंश शुजा से वापिस ले सका।

औरंगजेब का आदेश था कि शाहजादा तथा उसके संगी-साथी विभिन्न दुर्गों में बन्दी बना दिये जायें। प्रत्येक मुस्लिम क्रूर की भाँति औरंगजेब ने अपने पिता से घृणा की और उसके पुत्रों ने उससे घृणा की।

शाहजहाँ की अनवरत चिन्तापूर्ण प्रार्थनाओं के बावजूद भी औरंगजेब ने मूत्रकृच्छ्र से पीड़ित अपने बन्दी पिता से मिलना नहीं स्वीकारा, शाहजहाँ को अपनी एकान्तता, परेशानी, दुःख, उपेक्षा, अपमान आदि के विषय में औरंगजेब को पत्र लिख-लिखकर ही सन्तोष करना पड़ा। उत्तर में औरंगजेब ने बड़ी मीठी भाषा के आवरण में धमकी भरे पत्र लिखे कि यदि वह उन हीरों, वस्त्रों, अन्य धन एवं कोष को, जिसे उसने तथा दारा ने एकत्र किया है, समर्पित नहीं करेगा तो उसे और भी अधिक प्रतिबंध लगाकर अपमानित किया जायेगा। इतिहास के शीघ्र विश्वास कर लेने वाले विद्यार्थी, मध्यकालीन यवनों की प्रवंचक वाक्यावली से सु-परिचित नहीं, बड़ी जल्दी पाखण्डी बनावट के जाल में फँस जाते हैं; जैसे जहाँगीर द्वारा अकबर को अथवा औरंगजेब द्वारा शाहजहाँ को प्रदर्शित किया गया अपूर्व

सम्मान एवं श्रद्धा। इन सभी स्थलों पर यह ध्यातव्य है कि चाटुकारिता-पूर्ण लच्छेदार भाषा उस म्यान के समान थी, जिसके अन्दर हत्या की भावनाओं की वह कटार थी जिसे प्रत्येक पुत्र अपने यवन पिता के प्रति रखता था।

मजबूर किये गये शाहजहाँ को इच्छा-अनिच्छापूर्वक अपने हृदयहीन पुत्र औरंगजेब को २७ लाख रुपये के मूल्य के वे सभी रत्न सौंप देने पड़े, जिन्हें उसने और उसके पुत्र दारा ने वर्षों की लूट के फलस्वरूप छिपाकर रख लिये थे।

१६६० में औरंगजेब की सेना द्वारा पीछा किए जाने पर शुजा को बंगाल से भागकर अराकान पर्वतमालाओं में शरण लेनी पड़ी थी। वहाँ हिन्दू भू-भाग में उसने वह इस्लामी लूट-खसोट की कि शखांग के राजा ने क्रोधित हो शुजा को पकड़कर जान से मार दिया। इससे औरंगजेब के दूसरे पैतृक प्रतिद्वन्द्वी का अन्त हो गया।

इसी समय 'दक्षिण में' उभरते हिन्दुत्व के शिखर पर परमवीर दैवी शिवाजी थे—विश्व के महानम सिपाहियों, लड़ाकों, युद्धकुशलों, प्रशासकों तथा राजाओं में से एक। उसे मानो परमात्मा ने औरंगजेब की बदमाशी अपने शौर्य से, विश्वासघात अपने नीति-नैपुण से तथा लूटखसोट बदला लेकर समाप्त करने के लिए भेजा था। जिस भारतीय सपूत ने अपने जीवन और सम्मान की बाजी देश तथा देशवासियों के सम्मानार्थ लगा दी, उसे खफी खाँ जैसे औरंगजेब के विदेशी गुण्डे चाटुकार ने 'राक्षस-पुत्र तथा सर-ताज धोखेबाज' (पृष्ठ २५५, भाग VII) कहा है—यह भी तब जब हिन्दू दौर्बल्य के अनुसार शिवाजी ने प्रत्येक इस्लामी वस्तु के प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित किया। बेचारे खफी खाँ को, अनचाहे ही सही, स्वीकार करना पड़ा कि शिवाजी "अपनी जाति में शौर्य एवं बुद्धिमत्ता के लिए विख्यात था।"

हिन्दुस्तान में छाये हुए विदेशी यवन शासकों द्वारा किये गये अनवरत अपहरणों की सूचनाओं से शिवाजी का हृदय हूक उठता था। सर्वत्र बलात्कार, लूट, हत्या, धर्म-परिवर्तन तथा गबन का बोलबाला था।

पूना तथा सुपे के दो जिलों में, जो शिवाजी के पिताजी की जागीर के अंश थे तथा जिसका प्रबन्ध वे करते थे, समीपस्थ क्षेत्रों के लूट-खसोट करने वाले यवन प्रशासन से इतना भिन्न था कि विदेशी खफी खाँ को

भी विवश होकर प्रमाणित करना पड़ा "शिवाजी उनकी बहुत देखभाल करते थे।"

अपमानित, दुखियारे तथा दबाये गये हिन्दुओं को अपने ही तथा एकमात्र देश हिन्दुस्तान में पुनर्वासित करने का दृढ़ इरादा कर शिवाजी चारों के पहाड़ी प्रान्त में "पत्थर तथा मिट्टी के दुर्ग बनाने" चल दिये। बीजापुर एक मुस्लिम राज्य में हो रही गड़बड़ का पूर्ण लाभ उठाते हुए उस विदेशी मुस्लिम राज्य से हिन्दुओं के लिए वे एक प्रदेश के पश्चात् दूसरा प्रदेश जीतते चले गये।

शिवाजी महाराज कूटनीति तथा व्यूहरचना में इतने निपुण थे कि वह भारत में फैली हुई विदेशी इस्लामी बाढ़ के बीच केवल पैर टिकाने भर की भूमि के अधिपति थे फिर भी उन्होंने सफलतापूर्वक एक मुस्लिम शक्ति को दूसरे से भिड़ा दिया तथा हिन्दू राज्य का विस्तार किया। उसकी प्रशंसा में और जो बात योग देती है वह यह है कि अस्तित्व भर बचाये रखने की अनेक चिन्ताओं के बावजूद उन्होंने ऐसी स्वच्छ तथा लोकोपकारक प्रशासन के संयोजन में सफलता पायी कि उनके भयानकतम यवन शत्रु सोच भी नहीं सकते थे। यद्यपि जीवनपर्यन्त वे दुष्ट यवन शत्रुओं से घिरे रहे फिर भी युद्ध तथा प्रशासन के क्षेत्रों की उनकी उपलब्धियों के गौरव की समानता के लिए विश्व के इतिहास में कोई उदाहरण नहीं। हिन्दू पुनर्जागरण के लिए उनके द्वारा जमाई गयी नींव इतनी दृढ़ थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् समाप्तप्राय: मराठा शक्ति देश भक्ति में इतनी महान् सिद्ध हुई कि उसे एक के बाद एक सफलता मिलती ही रही और अन्त में दक्षिण में तंजौर से लेकर उत्तर में सिन्ध के तटवर्ती विदेशी यवन शक्ति को मुँह की खानी पड़ी।

शिवाजी के आदर्श शासन के पक्षपाती प्रतिकूल मुस्लिम खफी खाँ लिखता है कि यवन प्रशासित समीपवर्ती भू प्रदेश "हलचलों तथा विद्रोहों से कभी मुक्त नहीं रहा एवं राज्य के अधिकारी, प्रजा तथा सैनिक लोभी, मूर्ख तथा छिछोरे थे। उन अधिकारियों का लालच तब और बढ़ जाता था जब शासकों की सत्ता में व्यवधान समाप्त हो जाता अथवा उनका ध्यान दिग्परिवर्तित होता।"

यह मानते हुए भी कि शिवाजी का प्रशासन आदर्श था तथा यवन

प्रशासन गड़बड़ी से भरे हुए थे, धर्मान्ध, इस्लामी प्रशासक, साम्प्रदायिक खफी खाँ शिवाजी के विषय में लिखता है: "समस्त विद्रोहियों में सर्वाधिक शैतान (जिसने) मराठा चोरों, डाकुओं को एकत्र कर दुर्गों पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया।" इससे हमें ज्ञात हो जाता है कि वास्तविक भारतीय कौन है, जिसका प्रमुख उपदेश हिन्दुस्तान तथा हिन्दुत्व की भर्त्सना करना एवं उसकी संस्कृति को विनष्ट करना है, वह भारतीय नहीं है। उसकी वाणी तथा शब्दों से ही उसकी भारत-शत्रुता स्पष्ट हो जाती है। खफी खाँ ऐसा ही है। वह लिखता है: "बीजापुर के विरुद्ध औरंगजेब की चढ़ाइयों से देश मुसीबत में फँस गया। जिससे अन्य परेशानियाँ भी उठ खड़ी हुईं।"

शिवाजी ने एक-एक कर बीजापुर एवं मुगल सेनाओं पर आक्रमण करके ४० दुर्गों पर अधिकार कर लिया, जीतकर अथवा स्वयं निर्माण कर; साथ ही उनके भू-प्रदेशों को भी ले लिया।

एक जारज पुत्र सिकन्दर अली आदिल, जो बीजापुर का शासक था, यह देखकर बड़ा चिन्तित हुआ कि शिवाजी के देश-भक्तिपूर्ण धावों से उसका राज्य धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है। खुले रूप में उसने हिन्दुओं के विरुद्ध परम्परागत यवन घृणा उभारी तथा यवन धर्मान्धों को शूर शिवाजी का मुकाबला करने की चुनौती दी। कायर सिकन्दर आदिल की खोखली चिंघाड़ शूर शिवाजी का मुकाबिला करने के लिए एक धर्मान्ध की प्रेरणा थी। सिकन्दर अली के शाही रसोइए के एक पुत्र लम्बे-चौड़े अफजल खाँ ने सगर्व कहा कि वह शिवाजी को उसी सरलता से भून देगा जिससे उसका पिता शाही भोजन भून देता है।

अफजल की डींग से अतीव प्रसन्न होकर बीजापुर-शासक ने उसके साथ मुस्लिम आततायियों की बहुत बड़ी सेना कर दी। राक्षस के समान एवं विष उगलता हुआ, शोर मचाता हुआ यवन सैन्य-बल मराठा प्रदेश को विनष्ट करने लगा, एक पूजास्थल के पश्चात् दूसरे को भ्रष्ट करने लगा। गायों को काट उनका रक्त मन्दिरों में छिड़क उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित करने लगा। गौहत्या का अर्थ तो हिन्दुओं का अपमान करना, उन्हें नीचा दिखाना, क्रोधित करना तथा उन्हें स्वास्थ्यवर्धक दुग्ध से रहित करना था।

जिस ढंग से शिवाजी ने इस शक्तिशाली सेना को हराकर इसके घमण्डी सेनापति को काट डाला वह कूटनीति, साहस एवं देशभक्तिपूर्ण

कौशल की महानतम चातुर्यपूर्ण कहानियों में से है। शिवाजी ने अफजलखाँ से प्रतापगढ़ दुर्ग की पहाड़ी के नीचे एक शामियाने में मिलने के लिए कहा। प्रत्येक के साथ चुने हुए अंगरक्षक तथा एक लेखक-दुभाषिया था। जब दोनों मुसलमानी झूठी मित्रता के अनुसार मिले तो विशालकाय अफजल खाँ ने शिवाजी की गर्दन अपनी बगल में दाबकर गला घोंटना चाहा। एक क्षण को भी व्यतीत किए बिना अफजलखाँ ने एक छुरी निकालकर शिवाजी की पीठ पर भयानक वार किया। छुरी शिवाजी के कवच में लगी। जिसे उन्होंने विचारपूर्वक विश्वासघात से सुरक्षित रहने अपने रेशमी परिधान के नीचे पहन रखा था। शिवाजी को तनिक भी हानि पहुँचाए बिना वह छुरी छिटककर जा पड़ी। अपनी गर्दन को अफजल की बगल में दृढ़तापूर्वक पकड़ी हुई देख, घातक भय जान, शिवाजी ने फौलादी बघनखे को जिसे उन्होंने अपनी हथेली में छिपा लिया था तथा उँगलियों पर लोहे की अंगूठियाँ चढ़ा बिल्कुल तैयारी की अवस्था में थे, अफजल खाँ के पेट में घुसेड़ दिया तथा उसकी आँतें बाहर निकाल लीं। घने रक्त-प्रवाह के कारण अफजल अचेत हो पीछे डगमगाया और दूसरे ही क्षण उसकी लम्बी-चौड़ी काया ढेर हो गयी। कष्ट के कारण प्रारम्भ में तो वह दहाड़ा पर बाद में सहायता के लिए मिन्नत करने लगा। उसने कुछ दूर रखी पालकी तक भी रेंग जाने का प्रयत्न किया। पर देशभक्तिपूर्ण क्रोध में शिवाजी तथा उनके अंगरक्षक को अपनी तलवारें चलाते देख चारों पालकीवाहक भय के मारे भाग खड़े हुए।

अफजल खाँ के अंगरक्षक सैयद बन्दा ने अपनी तलवार का लक्ष्य शिवाजी के सिर को बनाया पर शिवाजी के सतर्क-अंगरक्षक जीवाजी द्वारा क्षणभर में ही उसकी बाँहें काट डाली गयीं। जब अफजल खाँ का कटा हुआ सिर विजयपूर्वक बर्छी पर टाँगकर दुर्ग को ले जाया जा रहा था, चारों ओर जंगलों तथा घाटियों में छिपी शिवाजी की सेनाओं के लिए तूर्यनाद किया गया ताकि वे अपने छिपे हुए स्थल से निकल अफजल के शिविर पर अकस्मात् ही टूट पड़ें जिसे उन्होंने चारों ओर से घेर लिया था। इस प्रकार मराठों की ओर बहुत ही न्यून हताहतों के पश्चात् बीजापुर की समस्त सेना काट डाली गयी। उन्हें ख्याति तथा अफजलखाँ द्वारा लूटकर एकत्र की गयी सम्पत्ति मिली।

शिवाजी को रक्तपिपासु हत्यारा बताता हुआ भी खफी खाँ यह लिखने के लिए मजबूर हुआ कि शिवाजी ने अपने लोगों को "पराजित टुकड़ियों को शरण देने की आज्ञा दी। उन्होंने योद्धाओं को अपनी सेना में लेने का प्रस्ताव रखा और उन्हें जीत लिया।"

"आदिल खाँ ने अपने श्रेष्ठ जनरल रुस्तम खाँ के अधीन अन्य सेना भेजी। पानहोला दुर्ग के समीप के युद्ध में रुस्तम खाँ पराजित हुआ। सारांश यह कि भाग्य की देवी ने इस विश्वासघाती, व्यर्थ के मनुष्य (यह खफी खाँ द्वारा दी गयी उन्हीं शिवाजी को गाली है जिनकी उसने बाद में प्रशंसा की) की सेनाओं में वृद्धि हुई तथा वह प्रतिदिन अधिकाधिक शक्तिशाली होता गया। उसने नये दुर्ग स्थापित किये तथा अपनी राज्य सीमा बढ़ाने और बीजापुर को लूटने का स्वयं कार्य किया। दूर से आये काफिलों को उसने लूटा, पर उसका नियम था कि उसके अनुयायी कहीं भी लूट-पाट करें मस्जिदों, कुरान तथा किसी स्त्री को कोई हानि न पहुँचाएँ।"

औरंगजेब जो अब तक शिवाजी को घृणापूर्वक 'पहाड़ी चूहा' कहा करता था अब यह जानकर चौंक गया कि वह चूहा नहीं था अपितु ऐसा व्यक्ति था जिसने बड़े-बड़े यवनों के गर्व को चूर कर दिया था।

औरंगजेब के आदेशानुसार दक्षिण में मुगल सेनाओं के संचालक, औरंगजेब के मामा शायस्ता खाँ को शिवाजी समाप्त करना था। शायस्ता अपने प्रधान अड्डे औरंगाबाद से चला और शिवाजी के राज्य के एक गाँव शिव गाँव पर अधिकार कर लिया। उस समय शिवाजी पूना से ४० मील दक्षिण-पूर्व के सूबे में थे। वहाँ से पीछे हटकर उन्होंने अपने गुरिल्लाओं को शायस्ताखाँ की टुकड़ियों तथा सामग्री लूटने में लगा दिया। बड़ी कठिनाई से शायस्ता खाँ "उस कुत्ते (शिवाजी) द्वारा निर्मित पूना तथा शिवपुर नामक दो स्थानों पर पहुँचा।"—ऐसा खफी खाँ लिखता है। पूना पहुँचकर शायस्ता खाँ ने इतना अविवेक एवं धृष्ठता दिखायी कि शिवाजी के ही घर पर अधिकार कर लिया।

मुगल सेनाओं ने चाकन दुर्ग को घेर लिया तथा दो मास की भयानक लड़ाई के बाद इसमें घुस सके, फिर भी मुट्ठी भर मराठे प्रतिरोध करते रहे। खफी खाँ लिखता है कि परेंदा दुर्ग का, रक्षक हीन होने के कारण, बिना लड़े ही पतन हो गया। फिर भी इन आक्रमणों के कारण शायस्ता

खाँ ने मालवा से जफर खाँ को आदेश दिया कि वह दक्षिण में बुरी तरह घिरी मुगल सेना को सहायता पहुँचाये।

यवनों की लूट ने औरंगजेबी शासन के तीसरे वर्ष ही भयानक दुर्भिक्ष फिर ला दिया। खफी खाँ लिखता है: "खराब मौसमों तथा युद्ध एवं सेनाओं के आवागमन के कारण अनाज बहुत कम तथा महँगा हो चला था। अनेक जिले पूरी तरह उजड़ गए तथा चारों ओर से लोगों के झुंड के झुंड राजधानी की ओर चल पड़े। नगर का प्रत्येक मार्ग तथा बाजार निर्धन तथा दु:खी लोगों से इतना भर गया था कि लोगों का घूमना कठिन था।"

१६६१ में राजा रूपसिंह की कन्या को मुगल शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम ने अपने हरम में बन्द कर रखा था। असम के देशभक्त वीर हिन्दू अब मुगलों की लूटपाट के विरुद्ध विद्रोह कर उठे। "खारखानन (जो बंगाल में था) को असम के हिन्दू राजा तथा कूचबिहार के हिन्दू शासक भीम नारायण को समाप्त करने के आदेश भेजे गए।" मुगल सेनाओं ने घर-गाँव को अपने अधिकार में कर लिया पर हिन्दुओं ने "अँधियारी रातों में आक्रमण करके अनेक सैनिकों तथा घोड़ों को मार दिया।"

अपने शासन के पाँचवें वर्ष में औरंगजेब बीमार पड़ा। उसकी सताई हुई प्रजा तथा दरबारियों ने विद्रोह कर दिया किन्तु उन्हें यह जानकर अत्यधिक निराशा हुई कि औरंगजेब ठीक हो गया। उसके राक्षसी शासन से मुक्त होने की समस्त आशाएँ ध्वस्त हो गयीं। औरंगजेब की बीमारी का हाल सुनकर ग्वालियर दुर्ग में बन्दी उसके भाई मुरादबख्श ने पलायन का यत्न किया। किन्तु उसे पकड़ लिया गया तथा एक बनावटी मुकद्दमे के पश्चात् कि उसने हत्या की है, उसे अनेक यन्त्रणाएँ देकर मार दिया गया।

असम के हिन्दुओं ने संकल्प कर लिया था कि वे लूट मचाने वाली यवन सेना को दण्ड देंगे और उन्होंने इसे "इस सीमा तक घटा दिया कि आपस में सलाह करके कुछ अधिकारियों ने तो खानखानन को त्याग कर चले जाने की सोची। उसने सेना को प्रत्यक्षत: तो आगे बढ़ने के आदेश दिए किन्तु परोक्षत: प्रत्यावर्तन की सोची तथा अपने लोगों को शान्ति और वापसी के सब्जबाग दिखाकर सान्त्वना दी।" निराश होकर मुस्लिम सेना

ने रक्षाहीन हिन्दू नागरिकों को सताया। "आज्ञा दी गयी कि हजारों हत्या किए गए लोगों के सिर शिविर के चारों ओर बाँध दिए जायँ।" ऐसी क्रूरताओं तथा त्रास के साथ झोंपड़ों में रहने वाले असहाय हिन्दुओं को शान्ति प्राप्त करने के लिए मजबूर कर दिया गया। ये नहीं कहा जा सकता कि खफी खाँ सही लिख रहा है अथवा मुस्लिम इतिहास की उन झूठों को प्रदर्शित कर रहा है पर वह दोनों प्रकार की बातों को कहते हुए लिखता है "अन्त में राजा शान्ति की शर्तों के लिए राजी हो गया तथा··· बादशाह को सोना, चाँदी, पचास हाथी तथा अपनी भद्दी कन्या को और कुछ नकदी तथा सामान सहित अपनी दूसरी कन्या को खानखानन को देने को राजी हो गया।···खान ने बीमारी की मारी सेना तथा अनेक सरदारों और अधिकारियों की मरणासन्न दशा में प्रत्यावर्तन प्रारम्भ किया। खान खानन स्वयं बहुत बुरी तरह बीमार था।···और कूँचबिहार के सीमान्त पर खिज्रपुर नामक स्थान पर मर गया (पृष्ठ २६८, भाग VII)।"

उक्त पंक्तियों का हमें गहन अध्ययन करना चाहिए क्योंकि मुस्लिम इतिहास लेखन की निन्दक प्रवृत्ति की परिचायिका हैं। वह यवन सेना की विजय का दावा करता है जबकि वास्तव में यवन सेनाएँ अपने सेनापतियों, अधिकारियों तथा लोगों सहित बुरी तरह खदेड़ दी गयी थीं। हिन्दू स्त्रियों को मुस्लिम हरमों में अपहरण कर ले जाना उनकी विलासिता का द्योतक है। दूसरी विशेष बात यह है कि जब कोई यवन सेनानायक, जैसे प्रस्तुत सन्दर्भ में खानखानन, कोई विजय की बात न कह पा सकता था तथा वह अक्सर भद्दी हिन्दू स्त्रियों तथा जंगली हाथियों को पकड़ कर बादशाह के पास यह कहकर भेज देता था कि उन्हें हिन्दू राजा ने समर्पित किया है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि खानखानन जैसा मरणासन्न मुस्लिम अन्त काल में भी अपने हरम में आयी स्त्रियों को भ्रष्ट करना चाहता था।

औरंगजेब के शासन के सातवें वर्ष उसका मामा शायस्ता खाँ, जिसने पूना में शिवाजी के महल पर अधिकार करने की धृष्टता की थी तथा महाराष्ट्र में आतंक फैला दिया था, शिवाजी के अर्द्ध रात्रि के आक्रमण के पश्चात् अपने प्राण बचाने अपनी माँद में भाग गया।

अनचाहे धर्मान्ध व्यंग्य के साथ खफी खाँ लिखता है कि शायस्ता खाँ

"पूना में एक ऐसे घर में रहा जिसे नारकीय कुत्ते शिवाजी ने बनाया था।" सचमुच ही वह "नरक" में घुसा था क्योंकि शायस्ता खाँ को शिवाजी के पवित्र निवास स्थल में प्रवेश करने का नारकीय दुःख मिला था। उसे बहुत ही शीघ्र वहाँ से भयभीत होकर भागना पड़ा जिसमें उसकी दो उँगलियाँ कट गयीं तथा खिड़की से कूदते समय तीन उँगलियाँ बड़ी सफाई के साथ शिवाजी की शक्तिशाली तलवार ने काट डालीं। बाद में तो शिवाजी की योग्यता का कहना ही क्या ! चुने हुए शूरवीर देशभक्तों को लेकर शिवाजी ने उन्हें दो भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग ने अपने को बराती बनाकर अपने मित्र को दूल्हा के वस्त्र पहनाकर १६६३ की एक रात में पूना नगर में प्रवेश के लिए उन्होंने मुगल दुर्गरक्षकों से आज्ञा प्राप्त कर ली। वे ढोल बजा रहे थे और आतिशबाजियाँ छोड़ रहे थे। दूसरा समूह उनके पीछे-पीछे यह बहाना बनाकर चला कि वे मुगल सेना की मराठा टुकड़ी हैं तथा कुछ हिन्दुओं को पकड़कर वन्दी बनाकर लाये हैं। ठीक आधी रात के समय जब शायस्ता खाँ और उसके संगी साथी सो गए थे तथा मुस्लिम रसोइए दूसरी प्रातः की रमजान की दावत के लिए भोजन बनाने लगे, शिवाजी के सैनिक पिछले दरवाजे से घर में घुस आये जिसे रसोइयों ने खुला छोड़ दिया था। इससे पूर्व कि वे सहायता के लिए चिल्लाएँ उन्हें काट डाला गया। शिवाजी के लोगों ने उन ईंटों को हटा दिया, जिन्होंने रसोइये से मुस्लिम हरम का रास्ता उस समय से बन्द कर रखा था जब से वहाँ शायस्ता खाँ का अधिकार था। उस मार्ग से होकर वे महल में प्रवेश कर गये। अन्धकारपूर्ण भवन में बड़ा भारी शोर मच गया—लगता था जैसे नरक में शोर मच गया है। कोई नहीं जानता था कि कौन, किससे और क्यों टकरा रहा है। लोग हड़बड़ाकर इतस्ततः भागने लगे। जो मद्यपान किये हुए झूम रहे थे अथवा विलासिता में झूम रहे थे उन्हें संभलने से पहले ही काट डाला गया। मुख्य द्वार खोल दिया गया और शिवाजी के वीर योद्धाओं का दूसरा दल प्रवेश कर गया। एक ने ऊपर चढ़कर इतनी जोर से ढोल पीटा कि शायस्ता खाँ का कोई मुसलमान यह नहीं सुन सका कि दूसरा क्या कहता है। इस आश्चर्यजनक स्वर से समूचा पूना नगर आधी रात को जाग पड़ा। शायस्ता खाँ का पुत्र तथा एक बेगम काट डाले गये जब कि शायस्ता खाँ भयभीत होकर ठीक उस

समय खिड़की से कूद पड़ा जबकि उस पर लपलपाती तलवार का घातक वार होने को था लेकिन शायस्ता खाँ ने देखा कि दो ही उँगलियाँ शेष रह गयी हैं, जबकि शिवाजी ने तीन को पहले ही काट दिया है। एक अन्य मुस्लिम सरदार जो उस अँधेरी रात के नरक की आकृतियों में शायस्ता खाँ जैसा ही लगता था, मारा गया। इसके ठीक पश्चात् मराठा आक्रमणकर्ता आश्चर्य करते हुए महल से बाहर निकल गये। उस समय ढोल के भयानक स्वर में शत्रु को यह सब आश्चर्यजनक लगा। औरंगजेब ने शीघ्र ही अपने अपमानित मामा को दूर बंगाल भेज, दक्षिण की मुगल सेना का अधिनायकत्व शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम को सौंप दिया।

शाहजादा ने अपने पिता को सूचना दी कि "शिवाजी अधिकाधिक साहसी होता जा रहा था तथा प्रतिदिन शाही भूभाग तथा काफिलों को आक्रमण कर लूट रहा था। उसने जीवन, पाबल तथा सूरत के निकट की अन्य बन्दरगाहों को हथिया लिया था तथा मक्का जाने वाले जहाजों पर आक्रमण किया था। उसने अनेक दुर्गों का निर्माण किया था तथा जलयानों के आवागमन में व्यवधान उत्पन्न किया था। महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर के बादशाह महान् शिवाजी के विरुद्ध विदेशी मुस्लिम की ओर से लड़ने को मजबूर किया गया) ने उन्हें दबाने का पूर्ण प्रयत्न किया पर कोई लाभ नहीं हुआ। जयपुर के शासक राजा जयसिंह (तथा अन्य बहुत से सरदार) शिवाजी का पीछा करने दक्षिण भेजे गये।

इसके पश्चात् यवनों ने कितना विध्वंस किया, इसका वर्णन करते हुए खफी खाँ लिखता है कि किस प्रकार क्रूरता तथा आतंक से एक के बाद दूसरे दुर्ग को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर किया गया तथा ७,००० यवन घोड़े इसलिए नियुक्त किये गये कि वे "शिवाजी द्वारा विजित भू-भाग को लूटकर नष्ट कर दें...शिवापुर तथा कोंडाना एवं कंवारी गढ़ के दुर्गों पर खेती का चिह्न भी नहीं रहने दिया गया तथा अगणित पशु छीन लिये गये...दूसरी ओर शत्रु शिवाजी द्वारा किये गये अचानक आक्रमणों, उनकी शानदार सफलताओं, अँधेरी रातों में उनके हमलों, "मार्गों एवं कठिन दर्रों पर किये गये उनके अधिकारों एवं वृक्षदार जंगलों में आग लगाने से शाही सेना बहुत व्यथित हो गयी है।"

शिवाजी के अचानक आक्रमणों से मुगलों की दशा हीन हो गयी थी,

उधर यवनों की भयानक क्रूरताओं से शिवाजी दुःखी हो गये। इससे सन्धि का अवसर उपस्थित हुआ। मुगलों की ओर से दिलेर खाँ तथा जयसिंह ने सन्धि की बातें कीं। शिवाजी को अपने ३५ दुर्गों में से २३ दुर्ग देने थे तथा, जैसी कि हिन्दू राजकुमारों को धरोहर के रूप में रखने की यवन-प्रथा थी, मुस्लिम दरबार में प्रतिभू के रूप में अपने आठ वर्षीय पुत्र शम्भाजी को भेजना था।

जनवरी २२, १६६६ को आगरे के दुर्ग में अपने हड़पने वाले पुत्र, औरंगजेब के बन्दी के रूप में शाहजहाँ चल बसा। औरंगजेब ने इतना भी उचित नहीं समझा कि अपने वृद्ध, मरणासन्न पिता को कभी देख भी ले।

शिवाजी के हाथों मार खाने का बदला लेने के लिए औरंगजेब के मामा शायस्ता खाँ ने दो हिन्दू प्रदेशों से बदला लिया तथा अराकान की पहाड़ियों में अवस्थित संग्रामनगर तथा चटगाँव के नाम बदलकर क्रमशः आलमगीरनगर तथा इस्लामाबाद कर दिये। इस प्रकार भारत में यवन शासनकाल में लाखों हिन्दू ही नहीं अपितु नगर एवं हाथी (धर्मान्ध अकबर द्वारा राणा प्रताप के हाथी राम प्रसाद का नाम पीर प्रसाद कर दिया गया था) भी इस्लाम में परिवर्तित कर दिये गये थे।

जयसिंह के उत्साहित करने तथा सम्माननीय व्यवहार एवं सुरक्षित प्रत्यावर्तन की गारन्टी पा शिवाजी ने औरंगजेब के दरबार में जाना स्वीकार कर लिया। इसी बीच उन्होंने बीजापुर के यवन राज्य पर मुगल-आक्रमण की सहायता करने तथा विजित भू-क्षेत्र का कुछ भाग लेना स्वीकार कर लिया। मुगल सेनाओं ने शिवाजी के श्रेष्ठ नेतृत्व तथा बहादुर एवं अनुशासित सेना की सहायता से ही बीजापुर को झुकने के लिए मजबूर कर दिया।

बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण के विषय में खफी खाँ के वर्णन से स्पष्ट है कि यवनों के युद्ध करने के ढंग कितने क्रूर एवं अनैतिक थे। यवन सेनाओं की लूट के विषय में खफी खाँ लिखता है : "तालाबों के किनारे काट डाले गये, कुओं में जहरीली वस्तुएँ एवं गन्दा मांस फेंक दिया गया, दुर्गों के समीप के वृक्ष तथा विशाल इमारतें नष्ट कर दी गयीं, भूमि तथा बागीचों में नुकीले काँटे गाड़ दिये गये तथा नगर के दोनों ओर घरों को इस प्रकार विनष्ट कर दिया गया कि नगर के समीप संस्कृति का चिह्न भी नहीं रह

गया।" (पृष्ठ २७६-२७८, भाग VII) आश्चर्य नहीं कि भारत अर्थहीन हो चला है जबकि १,००० वर्षों के यवन-शासन में अपने देश की चप्पा-चप्पा भूमि पर अनेक यवनों के लगातार हमलों की वह शिकार रही। ये हमले एक-दूसरे को अधिकार में करने तथा हिन्दुओं को समाप्त करने के लिए किये जाते।

अपने राज्य को यवनों द्वारा की गयी क्रूरताओं से बचाने के लिए शिवाजी ने औरंगजेब से मिलने की सहमति प्रदान की। औरंगजेब के दरबार के लिए शिवाजी ने राजगढ़ का दुर्ग सोमवार, मार्च ५, १६६६ को छोड़ा।

अपने घृणित पिता शाहजहाँ की मृत्यु (जनवरी २२,१६६६) के पश्चात् औरंगजेब को मुक्त रूप से साँस लेने का अवसर प्राप्त हुआ; वह फरवरी १५, १६६६ को आगरा पहुँचा। अपने पिता के सिंहासन को हड़पने तथा उसे अपमान की अवस्था में रखने के कारण औरंगजेब को आगरे जाने का साहस नहीं हुआ। इस बीच वह दिल्ली ही ठहरा रहा। शाहजहाँ की मृत्यु ने अब उसका बादशाह की हैसियत से, उचित प्रकार से, आगरा जाना सम्भव किया। फरवरी १५, १६६६ को वह आगरे के दुर्ग में पहुँचा और आगरे में ही मार्च २७ को चौथी बार ताज रखकर अपने मृतक पिता के उत्तराधिकारी होने की घोषणा की। उसकी पहले तीन ताजपोशियाँ फरवरी, १६५८, जुलाई, १६५८ तथा जून, १६५९ ई० में हो चुकी थीं।

आगरे के किले में शिवाजी का औरंगजेब के साथ वह निर्णायक मिलन हुआ। इस मिलन में एक ओर पवित्र, पावन, प्रतिष्ठित एवं सुयोग्य हिन्दू बादशाह था तो दूसरी ओर प्रपंची, विश्वासघाती, क्रूर एवं पितृघातक यवन लुटेरा।

मई ११ को शिवाजी आगरे के सिमान में आ पहुँचा। दूसरे दिन बड़ी शान के साथ औरंगजेब का जन्मदिन मनाया जाने वाला था। आगरे से एक पड़ाव दूर रह जाने पर शिवाजी का जयपुर के राजकुमार रामसिंह के लिपिक गिरधारीलाल ने स्वागत किया। औरंगजेब की ओर से कोई नहीं था। यह इस बात का संकेत था कि शाही दरबार में उसके साथ अत्यन्त ही अपमानजनक व्यवहार होने वाला था।

दूसरे दिन वह तथा उसका नौ वर्षीय स्वस्थ एवं सुन्दर मराठा

राजकुमार शंभाजी अकेले रामसिंह द्वारा दरबार में ले जाये गये। शम्भाजी की ओर से मुगल बादशाह को ३०,००० रुपये भेंट किये गये। धन्यवाद का एक भी शब्द कहे बिना औरंगजेब ने इशारा किया कि मराठा राजा तथा राजकुमार को ५,००० के सेनानायकों की दूरवाली पंक्तियों में खड़े होने के लिए कहा जाय।

इस अपमान के विरोध में शिवाजी ने चिल्लाकर शाही दरबार को गालियाँ देना प्रारम्भ किया। इससे पूर्व किसी ने भी शक्तिशाली मुगल बादशाह की आज्ञा न मानने का साहस नहीं किया था, और वह भी खुले दरबार में। यद्यपि शिवाजी औरंगजेब से भेंट करने एक हजार मील से आये थे फिर भी प्रारम्भ होने से पूर्व ही यह मिलन समाप्त हो गया। शिवाजी शीघ्र ही रामसिंह के घर चले गये। उन्हें पास के ही शिविर में ठहराया गया और कुछ दिनों पश्चात् ही फौलादखाँ के निरीक्षण में उनपर मुगल गारद बिठा दिया गया।

शिवाजी ने इस गतिरोध से बाहर निकलने के लिए औरंगजेब को अनेक पत्र लिखे किन्तु वह तो शिवाजी को मार डालने पर तुला हुआ था। अब शिवाजी को अपने भयानक अन्त का विश्वास हो चला, अतः उन्होंने अपने ३५० सशस्त्र अंगरक्षकों को वापिस महाराष्ट्र भेजने के लिए बादशाह की आज्ञा चाही। औरंगजेब को यह माँग बहुत भली लगी क्योंकि इस प्रकार अरक्षित शिवाजी को मारना और भी सरल हो जायगा। जुलाई २५ को वे लोग चले। बीमारी का बहाना कर शिवाजी ने औरंगजेब के सभी महत्त्वपूर्ण दरबारियों को मिठाइयों से भरी टोकरियाँ भेजना प्रारम्भ किया। १७ अगस्त के तीसरे पहर चार व्यक्तियों द्वारा (पालकी की भाँति, ले जाए जाने वाले बड़े टोकरों के निचले भाग में भली-भाँति बँधकर शिवाजी तथा शम्भा जी बीच में समा गये। उनमें से दो में शिवाजी तथा शम्भाजी थे। फौलाद खाँ के सतर्क सन्तरियों ने यूँ ही दो-एक का निरीक्षण किया। उन्होंने टोकरों के ढक्कन खोले पर उनमें सिवा सुन्दर सुगन्ध के कुछ नहीं पाया। उन्होंने उन्हें ले जाने के लिए कह दिया; इस प्रकार शिवाजी तथा शम्भा जी सुरक्षापूर्वक बाहर आ गये। छः महीने की अनुपस्थिति के अनन्तर मार्ग में अनेक आपदाओं तथा मृत्यु से साक्षात् कर १२ सितम्बर, १६६६ को शिवाजी मराठों की राजधानी राजगढ़ पहुँचे। शम्भाजी को

कृष्णजी त्रिम्बाल एक विश्वस्त पुजारी, के संरक्षण में मथुरा छोड़ दिया गया था। वे नवम्बर २०, १६६६ को पहुँच पाये।

आगरे में शिवाजी के पलायन की बात २४ घण्टे पश्चात् लगी। शिवाजी के मिष्ठान्न के टोकरों में बाहर हो जाने के ठीक पश्चात् एक विश्वस्त प्रतिनिधि, हिराजी फरजन्द, बिस्तर पर उनका स्थानापन्न हो गया; उसने अपना चेहरा तो ढक लिया था पर शिवाजी की अँगूठी पहनकर, हाथ बाहर लटका लिया था। वह तथा उसका एक मुस्लिम साथी दवा लाने के बहाने आधी रात से कुछ पहले चले गये। यह सोचकर कि क्रोध में बावला हुआ औरंगजेब बहुत भयानक बदला लेगा, फौलाद खाँ भय से काँप उठा। उसने समूचे आगरे की खोज का आदेश दिया। शिवाजी के दो निकट एवं विश्वस्त साथी, जिन्होंने यह योजना रची थी, बन्दी बना लिये गये। वे थे रघुनाथ बल्लाल कोर्दे तथा उनका साला तम्बक सोनदेव दबीर। वे तथा रामसिंह के कुछ अपने आदमी भी, जिनमें बलीराम पुरोहित, जीवो जोशी, श्रीकृष्ण तथा हरिकृष्ण प्रमुख थे, दुष्ट यवन ढंग से आतंकित किये गये। उनकी नाक तथा मुँह में बलपूर्वक नमक का पानी डाल दिया गया तथा शिवाजी के पलायन का कुछ भी भेद बताने के लिए निर्दयतापूर्वक कोड़ों से पीटा गया। पर वे कुछ भी सूत्र न दे सके।

धीरे-धीरे एक-एक करके अथवा समूह में, शिवाजी के सभी साथी मराठा राजधानी पहुँच गये। दो अब भी मुगल पीड़ा के शिकार थे। शिवाजी ने औरंगजेब से मैत्रीपूर्ण पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। औरंगजेब यद्यपि अपनी बुद्धि की पराजय देख क्रोध से भन्ना रहा था, फिर भी उसने समझौता बन्दी दृष्टिकोण का बहाना किया। उसने सन्धि कर ली। नयी सन्धि के नियमानुसार जो प्राचीन सन्धि का ही दूसरा रूप था जब शिवाजी ने २३ दुर्ग दे दिये थे, शिवाजी ने अपने दो विश्वस्त अनुचरों की वापसी की माँग की। औरंगजेब ने उनकी मुक्ति के आदेश दे दिये। इस प्रकार शिवाजी अपने सभी अनुयायियों सहित सही सलामत पहुँच गये।

औरंगजेब शिवाजी को नवाब पिदई खाँ के महल में कुछ ही दिनों में मारना चाहता था। इस महल की मरम्मत के बाद शिवाजी को उसमें भेजा जाने वाला था। किन्तु इससे पूर्व कि मक्कार औरंगजेब अपनी घातक योजना में सफल होता, शिवाजी की मेधा ने इतनी शान्तिपूर्वक पलायन

किया कि क्रोधी औरंगजेब अपने दाँत पीस एवं दाढ़ी नोच आश्चर्य करने लगा कि शिवाजी किसी जादू द्वारा चिड़िया के रूप में उड़ गया अथवा भूत के समान हवा में गायब हो गया। यह मुगल निर्दयता पर हिन्दू देश-भक्त मेधा की स्पष्ट विजय थी।

शिवाजी के पलायन का बदला लेने शिवाजी का अवतक का शूर सेनापति नेताजी पालकर, जो मुगलों से मिल गया था, दक्षिण में यकायक बन्दी बनाये जाने तथा औरंगजेब के समक्ष प्रस्तुत किये जाने के लिए आदेशित किया गया। यवन क्रूरताओं के साथ उसे इस्लाम स्वीकारने पर मजबूर किया जाकर मुहम्मद कुली खाँ नाम दिया गया तथा मुगल साम्राज्य के लिए युद्ध करने दूर काबुल भेज दिया गया। उनके चाचा कोंडाजी पालकर की भी यही दशा हुई। नेताजी ने शीघ्र ही अपनी मूर्खता महसूस की। नौ वर्ष आनन्द मनाना उसे घृणा करने तथा हिन्दुत्व की ओर लौटाने के लिए पर्याप्त थे। पश्चात्ताप करते हुए नेताजी १६७६ में शिवाजी के समीप लौटे। उन्होंने धार्मिक औदार्य में अपने समय से बहुत आगे होने के कारण, नेताजी को पुनः हिन्दू वर्ग में ग्रहण कर लिया। नेताजी का हिन्दू धर्म में प्रत्यावर्तन उन करोड़ों व्यक्तियों के लिए प्रकाश-पुंज होना चाहिए जो नौ से उन्नीस पीढ़ियाँ पहले, क्रूरतापूर्वक अपने पूर्वजों को परिवर्तित किए जाने के समय से म्लेच्छ नाम धारण किये हुए हैं। नेताजी के समान वे भी हिन्दू धर्म को पुनः ग्रहणकर अपनी गौरवपूर्ण हिन्दू परम्परा का दावा कर सकते हैं।

शिवाजी काण्ड के कारण औरंगजेब की दृष्टि में जयसिंह गिर गये थे। उन्हें बीजापुर का घेरा उठाकर शीघ्र ही उत्तर आने का आदेश दिया गया। औरंगजेब जयसिंह से इतना चिढ़ गया था कि लौटते समय बुरहान-पुर में २ जुलाई, १६६७ को औरंगजेब के आदेश पर जयसिंह को विष दे दिया गया। यवनों के अन्य हिन्दू सहायकों की भाँति जयसिंह भी शोक निमग्न हुए।

अपने राज्य में लौटने पर शिवाजी ने गोलकुण्डा के शासक अब्दुल्ला शाह को जीत लिया तथा उसकी सेनाओं को बीजापुर राज्य तथा मुगलों के विरुद्ध ले चलने का वचन दिया। बड़े चातुर्य के साथ शिवाजी ने मुगलों को उनके द्वारा विजित दुर्गों तथा भूभागों से बहिष्कृत कर दिया,

गोलकुण्डा शासकों को कुछ किले दे दिये तथा शेष अपने पास रख मराठा राज्य का विस्तार किया।

औरंगजेब ने जन-स्वामिभक्ति एवं स्नेह को इतना दूर कर दिया था कि मारे जाने के भय से जनता की जय-जयकार लेने उसने शाही दीर्घा में आना भी स्थगित कर दिया। इस्लाम धर्म में वह इतना अन्धा हो गया था कि वह संगीत-परम्परा से भी घृणा करने लगा। दिल्ली गायकों एवं संगीतज्ञों ने संरक्षण के लिये तरसकर, मुगल बादशाह पर प्रभाव डालने के लिए, कि उनकी घृणा ने उक्त कला को मार दिया है, एक बनावटी जनाजा निकाला। सूचना प्राप्त होने पर औरंगजेब ने कहला भेजा कि इसे इतना नीचे दफना दिया जाय कि यह अपना कोलाहलपूर्ण सिर पुनः न उठा सके।

क्योंकि शिवाजी को स्वातंत्र्य सेतु विस्तृत करने की तथा मुगलों की पकड़ समाप्त करने के लिए धन की आवश्यकता थी, उन्होंने अक्तूबर ३, १६७० को सूरत पर झपट्टा मारा और मुगल गिरोह को उसी प्रकार लूटा जिस प्रकार पहले भी जनवरी ६ से १०, १६६४ में लूटा था। सैकड़ों वर्षों से भारतीय धन लूटा जाकर सूरत में एकत्र किया जाता था तथा वहाँ से ही विदेशी बलूचियों, अरबों तथा अबीसीनिया निवासियों को मोटा करने के लिए भेजा जाता रहा था। लूटी हुई सम्पत्ति पर मुस्टंडे होने वाले नवाबों को डराने के लिए शिवाजी के दो तीव्र धावे पर्याप्त थे। वे वहाँ से चलते बने, सूरत उजड़ गया तथा लूटी हुई हिन्दू सम्पत्ति को बाहर भेजने के लिए यह प्राचीन द्वार बन्द हो गया।

शिवाजी ने एक सबल अरमदा का भी निर्माण किया तथा भारत के पश्चिम तट की किलेबन्दी की ताकि मुस्लिम तथा यूरोपीय लुटेरे भारतीय सम्पत्ति लूटकर यूरोप तथा मक्का न भेज सकें।

मुसलमानों तक को दिये गये शब्दों का शिवाजी अक्षरशः पालन करते थे, इस अन्तर को बताते हुए खफी खाँ, जो स्वयं धर्मान्ध यवन था, मुसलमानों के विश्वासघात तथा सामूहिक धर्म-परिवर्तन के लिये अपनाये गये भयानक तौर-तरीकों को लिखने के लिए मजबूर हो जाता है। अबीसीनिया के कुछ मुसलमानों ने, जो हिन्दुस्तान के पश्चिमी तट पर स्थित एक छोटे से जंजीरा नामक मुस्लिम किले के शासक थे, शिवाजी के राज्य

के एक दुर्ग पर आक्रमण किया। इसका वर्णन करते हुए खफी खाँ लिखता है : "सिद्दी याकूत ने (मराठा दुर्ग के) रक्षकों को शरण देने को कहा, ७०० बाहर आ गये। पर अपने वचन के बावजूद, उसने बच्चों तथा सुन्दरियों को दास बनाकर उन्हें इस्लाम में परिवर्तित कर दिया।" (पृ० १९२, भाग VII) "वृद्धाओं एवं कुरूप स्त्रियों को उसने मुक्त कर दिया किन्तु पुरुषों को उसने जान से मार दिया।" हिन्दू ललनाओं को सताने वालों को वस्त्र एवं धन से पुरस्कृत किया।

हिन्दुओं को तृतीय श्रेणी के नागरिक मानने की मुस्लिम परम्परानुसार औरंगजेब के आदेशानुसार अब मुस्लिम व्यापार कर-मुक्त कर दिया गया। इससे लालची मुस्लिम व्यापारियों को बड़ा निकास मिल गया। भारी भरकम रिश्वत पाकर वे हिन्दुओं के माल को अपना प्रमाणित कर देते थे। औरंगजेब का यह प्रभेदकारी आदेश उसी पर लगा और उसने आदेश दिया कि मुसलमानों को भी २·५ प्रतिशत कर देना पड़ेगा जबकि हिन्दुओं को वही ५ प्रतिशत देना पड़ता था।

१६७३ में मालखेड के युद्ध में, भाग्य के खेल से, बीजापुर की सेना ने दिलेर खाँ तथा इस्लाम खाँ द्वारा संचालित मुगल सेना को पराजित कर दिया। बारूद के भड़ाके से घबराकर इस्लाम खाँ का हाथी शत्रु सेना में जा घुसा जहाँ हाथी से नीचे घसीटकर उसका कत्ल कर दिया गया। इससे मुगल सेना में भगदड़ मच गयी। पीछा करते हुए बीजापुरियों ने उन्हें खूब लूटा और मारा। उस समय औरंगजेब भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त पर विद्रोही अफगानों को दबाने में लगा हुआ था। वहाँ उसने इस घटना के विषय में सुना।

जब औरंगजेब धुर उत्तर से राजधानी की ओर आ रहा था, पंजाब के नारनौल नामक स्थान पर मुस्लिम क्रूरता के विरुद्ध सतनामी हिन्दुओं ने विद्रोह कर दिया। अपने विरुद्ध भेजी गयी दो मुगल टुकड़ियों को उन्होंने अपमानपूर्वक हराया। भगोड़ा मुगल सेनापति करतलाब खाँ पकड़कर काट दिया गया और नारनौल पर हिन्दुओं का आधिपत्य हो गया।

सतनामी दिल्ली के समीप ३४ मील तक बढ़ आये थे; इस सफलता से उत्साहित हो यवन जुए को उतार फेंकने वाले अन्य लोग भी विद्रोह

कर उठे। बड़ी कठिनता से राजा किशनसिंह जैसे हिन्दू चाटुकारों की सहायता से यह विद्रोह दबाया जा सका।

क्रूरतापूर्वक वसूल किये जाने वाले प्रभेदकारी जजिया कर के विरोध में औरंगजेब को, जब वह दिल्ली के लालकिले से तथाकथित जामा-मस्जिद जा रहा था, घेर लिया। "इसके बावजूद कि बलपूर्वक मार्ग बनाने के आदेश दे दिये गये थे, बादशाह के लिए मस्जिद पहुँचना असम्भव था। प्रत्येक क्षण झुण्ड बढ़ता गया तथा बादशाह का साज-सामान एक इंच भी आगे न बढ़ सका। अन्त में आदेश दिया गया कि हाथी लाकर भीड़ को रौंद दिया जाय। हाथियों तथा अश्वों के नीचे दबकर अनेक के प्राण निकल गये। कुछ दिनों तक तो हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में एकत्र हो अपनी बात कहते रहे पर अन्त में जजिया देने के लिए राजी हो गये।" (पृष्ठ २९६)।

जयपुर के जयसिंह को औरंगजेब ने विष दिला ही दिया था, जोधपुर के जसवन्तसिंह दूर काबुल में मर गये। उनकी दो विधवाएँ अपने दो नन्हें-नन्हें अजीतसिंह तथा दलदमन पुत्रों के साथ भारत लौटने को तैयार हुईं। पर औरंगजेब के गुप्त आदेशानुसार किसी भी हिन्दू को वापिस न लौटने दिया जाता था। अतः सिन्धु के अटक के घाट के मुस्लिम नायक ने उन्हें हिन्दुस्तान लौटने की अनुमति नहीं दी। क्रुद्ध हो वीर राजपूतों ने हठी विदेशी को काटकर पंजाब की राह पकड़ी। जोधपुर के राजकुमारों का प्रत्यावर्तन सुन औरंगजेब ने उनका शिविर घेरने तथा उन्हें बन्दी बनाने के आदेश दिये। औरंगजेब का इरादा जसवन्तसिंह की पत्नियों का शील भंग करना एवं दोनों हिन्दू राजकुमारों को इस्लाम में परिवर्तित कर देना था। अतः उसने फुसलाया कि यदि अन्य राजपूत उन दो रानियों तथा राजकुमारों को छोड़ने के लिए राजी हो जायें तो उन्हें (राजपूतों को) छोड़ा जा सकता है। उस संधि में दुर्गादास राठौर नामक स्वामिभक्त एवं साहसी राजपूत सेनापति भी थे जिनका नाम मुस्लिम मक्कारी, विश्वासघात तथा निर्दयता का बहादुरी से सामना करने के कारण देशभक्त हिन्दुओं के बीच सदैव रहेगा। बाह्यतः वह इससे सहमत हो गया पर दो नौकरानियों को हिन्दू रानियों के वस्त्र पहना तथा दो बालकों को राजकुमारों का वेश धारण करा दोनों रानियों को पुरुष वेश में तथा

राजकुमारों को नौकरों के रूप में ले राजपूतों की टुकड़ी रवाना हुई। नपुंसक क्रोध में दोनों दासियों तथा दोनों हिन्दू बच्चों को जो वहाँ रह गये थे, बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया।

राजस्थान लूटने के लिए अकबर के समान औरंगजेब ने भी अजमेर को ही चुना। अपने शासन के २२वें वर्ष में अजमेर पहुँचकर औरंगजेब ने राणा प्रताप के वंशज चित्तौड़ाधिपति से जजिया की माँग की। उसने जोधपुर के राजकुमारों का समर्पण भी चाहा। ७ महीने २० दिन की अनुपस्थिति के पश्चात् राजस्थान को लूटने के लिए खाँ जहाँ को छोड़कर औरंगजेब दिल्ली लौटा। राजपूतों ने खाँ जहाँ की परवाह नहीं की। यह देख औरंगजेब के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने सभी राजपूतों को पूरी तरह कुचल डालने का इरादा किया। इस्लामी धर्मान्धता के क्रोध में वह पुनः अजमेर के लिए रवाना हुआ तथा दक्षिण से मुअज्जम तथा बंगाल से शाहजादा मुहम्मद आजम को राजस्थान की ओर बढ़ने का आदेश दे दिया गया।

मुस्लिम गुंडों को अनदेखा कर राणा अपने राज्य की सभी फसल काट एवं सम्पत्ति अधिकार में कर कठिन पर्वतों की ओर चला गया। तीन यवन सेनाएँ राजस्थान की लूटपाट करती हुई इस्लामी क्रोध की भयानक बाढ़ के समान उज्जैन जैसे विशाल नगरों को लूटने तथा विनष्ट करने लगीं। समूचे हिन्दुस्तान में उन्होंने मन्दिरों को मस्जिदों में बदला, हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया एवं चारों ओर मृत्यु, विनाश, आतंक एवं क्रूरता फैलायी। औरंगजेब का आदेश था कि "कृषि का प्रत्येक तिनका घोड़ों के खुरों के नीचे रौंद दिया जाय तथा राजपूतों को मारा जाय, लूटा जाय तथा बन्दी बना लिया जाय।" (पृष्ठ २९९, भाग VII, इलियट एण्ड डाउसन)।

देशभक्त जोधपुर एवं उदयपुर की सम्मिलित वाहिनियों ने मुगलों को पहाड़ी तथा जंगली भू-प्रदेश की ओर खींचकर म्लेच्छ शत्रु को पर्याप्त हानि पहुँचायी।

यवन सैनिक समूचे भू-प्रदेश को उजाड़ते जाते, मन्दिरों तथा इमारतों को नष्ट करते जाते, फलदार वृक्षों को काटते जाते तथा काफिरों (यानी हिन्दुओं) की स्त्रियों एवं बच्चों को, जिन्होंने खोहों तथा उनके

स्थलों में शरण ली, बन्दी बनाते जाते (पृ०३००)।

बादशाह औरंगजेब का पुत्र शाहजादा मोहम्मद अकबर राजपूतों से जा मिला। औरंगजेब को सन्देह था कि उसका भाई मुहम्मद मुअज्जम भी राजपूतों का भेदिया है। औरंगजेब ने जिस प्रकार अपने बादशाह पिता के विरुद्ध विद्रोह किया, समय आने पर अब उसके पुत्र मुहम्मद अकबर ने वही व्यवहार उसके साथ किया। उसने दुर्गादास के ३०,००० वीर राजपूतों की सहायता से स्वयं को राजा घोषित कर अपने नाम के सिक्के भी चला दिये।

अब औरंगजेब के पास ७००-८०० लोग ही रह गये जिनमें हिजड़े भी थे। शाही शिविर अब चिन्ताग्रस्त हो उठा। मुअज्जम से कहा गया कि वह अपनी समूची सेना ले अतिशीघ्र औरंगजेब के समीप आ जाय। अफवाह थी कि विद्रोही शाहजादा अकबर ७०,०००घुड़सवारों के साथ औरंगजेब पर आक्रमण करने बढ़ा आ रहा था। औरंगजेब बड़ा निराश हुआ। उसे अपने पुत्र द्वारा अपनी क्रूर हत्या दिखाई पड़ने लगी। किन्तु शहाबुद्दीन नामक उसके एक विश्वासपात्र ने अपने भाई मुजाहिद को अपनी ओर कर लिया जो विद्रोही अकबर का विश्वासभाजन था। औरंगजेब इतना भयभीत हो गया कि विद्रोही अकबर द्वारा वार्ता के लिए प्रेषित तुह्व्वरखाँ को उसने भरी सभा में ही कत्ल कर दिया। अकबर हतोत्साहित हो उठा। उसे यह जानकर घोर निराशा हुई कि उसका कपटाचरण उसके पिता के कपटाचरण की बराबरी नहीं कर सकता अतः वह दक्षिण में शिवाजी (जिनकी मृत्यु १६८० ई० में हो चुकी थी) के पुत्र शम्भाजी की सहायता लेने चल दिया।

अपने विख्यात पिता शिवाजी की परम्परा निभाते हुए वीर शम्भाजी ने शत्रु को चैन नहीं लेने दिया। अपने पिता की मृत्यु के वर्ष ही शम्भाजी ने मुस्लिम नवाबी बरार को लूट उनसे हिन्दुओं की लूटी हुई सम्पत्ति का बहुलांश वापिस ले लिया। लौटते हुए शम्भाजी बुरहानपुर के समीप बहादुरपुर, हफ्दरपुर तथा अन्य १७ नगरों पर चढ़ बैठे तथा घृणित जजिया के रूप में हिन्दुओं से वसूले धन को उन्होंने खूब लूटा। मुस्लिम कक्कर खाँ ने, जो बलपूर्वक जजिया वसूल किया करता था, भय के मारे एक दुर्ग में छिपे रहकर जान बचायी। वे तमाम स्थान जहाँ हिन्दू धन

की लूट पर मुसलमान मौज मारते थे, "लूटे तथा जला दिये गये।" अनेक म्लेच्छ नष्ट हो गये। अनेक समीप के वन में भाग गये। तीन दिन की लूट के पश्चात् जब मराठे लौटे तो, खफी खाँ के अनुसार, सड़कों पर अनेक मूल्यवान वस्तुएँ पड़ी मिलीं। मराठों के इन धावों से बुरहानपुर के यवनों के हृदयों में अल्लाह का इतना भय बैठ गया कि उन्होंने जुमे की नमाज भी बन्द कर दी। इस हानि से औरंगजेब क्रोध से तिलमिला उठा। मुगल सेनाओं के सेनापति खाँ जहाँ की पदावनति कर दी गई और औरंगजेब स्वयं दक्षिण की ओर रवाना हुआ।

औरंगजेब के ५० वर्षीय शासन को दो सम-भागों में विभक्त किया जा सकता है। पूर्वार्द्ध उसने उभरती हिन्दू शक्ति को दबाने उत्तर भारत में समाप्त किया। बिना सफलता प्राप्त किए उसे दक्षिण जाना पड़ा। वहाँ २५ वर्षों तक मराठों ने नाक में दम किये रखा। जिस औरंगजेब ने मराठों को समूल नष्ट करने की कसम खायी वह स्वयं मुसीबतों के दल-दल में फँसाया जाकर मार दिया गया।

औरंगजेब ने इस्लाम के नाम पर समूचे भारत में जो आतंक फैला रखा था उसकी कुछ झलक पक्षपाती मुस्लिम साकी मुस्तईद खाँ के मासिर-ए-आलमगीरी की पंक्तियों से मिलती है। वह लिखता है, "१८ अप्रैल, १६६९ को बादशाह के कानों में भनक पड़ी कि थट्टा, मुल्तान तथा बनारस के मूर्ख ब्राह्मणों की ओछी पुस्तकों (अर्थात् वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता एवं हिन्दू महाकाव्य) की व्याख्या करने की आदत थी तथा मुसलमान (अर्थात आतंकित परिवर्तित हिन्दू) बड़ी-बड़ी दूर से वहाँ जाते थे। अतः उसने सभी शासकों को हिन्दुओं के मन्दिरों तथा स्कूलों के विनाश के आदेश दे दिये। उस आदेश के अनुसार बनारस का विश्वनाथ मन्दिर विनष्ट कर दिया गया।" मन्दिर को हथिया कर उसे मस्जिद में परिवर्तित कर देना मुसलमान के लिए महान् गौरव की बात थी।

"दिसम्बर, १६६९ में न्यायप्रिय शासक ने मथुरा के केशवदेव राय के हिन्दू मन्दिर का विनाश किया तथा शीघ्र ही उस असत्य के किले (अर्थात् भगवान् कृष्ण की जन्म-स्थली) को भूसात कर दिया गया। उसी स्थान पर काफी व्यय करके एक विशाल कृष्ण की मस्जिद की नींव रखी गयी।" इसका विश्वास नहीं करना चाहिए। वर्तमान मस्जिद स्वयं ही एक प्राचीन

हिन्दू मन्दिर का भाग है। एक विशाल भवन को उसकी नींव तक उखाड़ फेंकना और पुनः उसी स्थान पर दूसरी नींव खोदकर मस्जिद का निर्माण करना तकनीकी एवं आर्थिक मूर्खता की पराकाष्ठा होगी। अच्छा हो इतिहासकार एवं पुरातत्त्ववेत्ता यवन इतिहास लेखन की इस प्रवंचना की ओर सतर्कता बरतें।

मासिर-ए-आलमगीरी का मूर्तियों सम्बन्धी यह सन्दर्भ कि "उनके भय-भीत चेहरों को दीवार की ओर कर दिया गया" (पृ० १८४, भाग VII) इस तथ्य की ओर स्पष्टतया इंगित करता है कि हिन्दू मूर्तियाँ मध्यकालीन मन्दिरों में, जिन्हें आज मस्जिदों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है दीवारों के अन्दर गड़ी पड़ी हैं।

"रत्नों से जड़ी मूर्तियाँ, हिन्दू मन्दिरों से निकाल, नवाब बेगम साहिब की मस्जिद (अर्थात् आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद जो स्वयं एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर है और जिसे झूठ ही जहाँआरा बेगम के नाम मढ़ दिया है) की सीढ़ियों के नीचे लगा दी गयीं ताकि सच्चे धार्मिकों (यानी मुसलमानों) द्वारा वे सदैव कुचली जाती रहें।" भारतीय जनता एवं पुरातत्त्व विभाग का यह प्रयत्न होना चाहिए कि आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद की सीढ़ियों के भीतर से भगवान् कृष्ण की पवित्र मूर्ति को निकाल उनकी जन्मभूमि मथुरा के पावन-स्थल को प्रदान करें।

१६७६ में "खाँ जहाँ जोधपुर से आया, जिसके साथ भूसात किये गये मन्दिरों की कई गाड़ी मूर्तियाँ थीं। बादशाह ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। इनमें अधिकांश मूर्तियाँ मूल्यवान् पत्थरों से जड़ी हुई थीं अथवा सोने, चाँदी, पीतल, ताँबा अथवा पत्थर की बनी हुई थीं। आज्ञा दी गयी कि उनमें से कुछ को तो बाह्य कार्यालयों में फेंक दिया जाय तथा शेष को भव्य मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे लगा दिया जाय ताकि वे पैरों से कुचली जाती रहें।" स्पष्ट है कि जोधपुर की सभी मध्यकालीन मस्जिदें वे मन्दिर हैं, जिनमें से हिन्दू मूर्तियाँ गाड़ियों में भरकर ले आयी गयी थीं। इससे पुरातात्त्विक संकेत भी प्राप्त होता है कि अप्राप्त प्राचीन हिन्दू मूर्तियाँ प्रमुख नगरों की तथाकथित जामा मस्जिदों की सीढ़ियों में प्राप्त की जा सकती हैं।

"जनवरी, १६८० में शाहजादा मुहम्मद आजम तथा खाँ जहाँ को

उदयपुर जाने की आज्ञा मिल गयी। मूर्तिपूजकों के मन्दिरों का विनाश करने रुहुल्ला खाँ तथा पक्कातज खाँ भी उधर ही चल पड़े। राणा के प्रासाद के समीप ही बने ये महल उस युग की आश्चर्यजनक वस्तु थे। यहाँ २० राजपूतों ने धर्म के लिए आत्मबलिदान का निश्चय किया। मृत्यु वार प्राप्त करने से पूर्व एक ने उसके अनेक (मुसलमान) अनुयायी काट डाले··· २४वीं जनवरी, १६८० को औरंगजेब ने राणा द्वारा निर्मित उदयसागर सरोवर देखा। औरंगजेब ने आज्ञा दी कि तीनों मन्दिर भूसात कर दिये जायें। हसन खाँ ने बताया कि प्रासाद के समीप के तथा पड़ोसी जिलों के १२२ अन्य मन्दिर विनष्ट कर दिये गये। इस सरदार को अपनी विशिष्ट सेवाओं (हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट करने तथा मूल्यवान् मूर्तियों को चुराने) के लिए बहादुर की उपाधि से अलंकृत किया गया।···चित्तौड़ जाकर औरंगजेब ने ६३ मन्दिरों को ढा दिया। आमेर (प्राचीन जयपुर) के मन्दिरों को विनष्ट करने के लिए नियुक्त किये गये अबूतुराब ने बताया कि इन महलों में ६६ भूसात कर दिये गये।"

औरंगजेब से पूर्व अनेक शताब्दियों तक दक्षिण तक में यवन शासकों की एक लम्बी पंक्ति पवित्र हिन्दू स्थलों को भ्रष्ट तथा ऐसा ही विनाश करती रही। वह इसे पवित्र इस्लामी कर्तव्य समझता था कि चारों ओर लूट तथा विनाश करके स्वयं तथा इस्लाम का गौरव बढ़ाए।

औरंगजेब की क्रूरता तथा दमन-नीति ने हिन्दुओं के जागरण को और भी उद्दीप्त किया। समूचे देश में मानो किसी जादू के जोर से, देशभक्त हिन्दू शूरवीर नेताओं के अनुयायी बन गये।

हिन्दू योद्धाओं की उस ख्याति परम्परा में जिन्होंने अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए हजार वर्ष तक यवन निर्दयता तथा क्रूरता से संघर्ष किया, उन गौरवपूर्ण हिन्दू नेताओं का जिन्हें गुरु कहा जाता है, उल्लेख करना अनिवार्य है, जिन्होंने मुगल दरबार के द्वार पर ही दिल्ली तथा पंजाब में विदेशी मलेच्छ शासन के विरुद्ध एक और हिन्दू-विद्रोह का ध्वज फहरा दिया।

इस विख्यात परम्परा के वीर, जिन्होंने भारत के घोर संकट के समय विदेशी क्रूरों को मार भगाने के लिए हिन्दुओं को साहसपूर्वक तथा दृढ़तापूर्वक अवरोध करने का नारा दिया, श्रद्धा तथा सम्मान के साथ गुरु कहे

जाते हैं। उन्हें सिक्ख गुरु कहना विरोधाभास तथा ऐतिहासिक भूल है क्योंकि सिक्ख का अर्थ है 'शिष्य' और गुरु का अर्थ है 'उपदेशक'। यह सापेक्ष शब्द हैं। बिना शिष्य के गुरु तथा बिना गुरु के शिष्य नहीं हो सकता। उन्हें सिक्ख गुरु कहना ऐसा ही है जैसे एक भाई को भाई का भाई कहना। उस योद्धा परम्परा के दस गुरु समूचे हिन्दुओं के पूज्य हैं क्योंकि उन्होंने इस्लाम की क्रूरता समाप्त करने के लिए हिन्दुओं को संगठित किया। अतः सभी हिन्दू ही उनके शिष्य थे। मुसलमान भी, जो अपने सहधर्मियों की क्रूरता से घृणा करते थे, उनके शिष्य बन गये क्योंकि सभी हिन्दू गुरु शान्ति, समानता तथा भ्रातृत्व के प्रतीक थे, धर्मान्धता एवं क्रूरता के नहीं। जिस पन्थ अर्थात् मार्ग की ओर गुरुओं ने इंगित किया वह यवन क्रूरता को भंग करने के लिए संगठन तथा प्रतिरोध का मार्ग था। इन बहादुर तथा पवित्र (खालसा) लोगों ने हिन्दू विनाश के विरुद्ध बर्छी का रूप धारण किया ताकि सामान्य जन उनके नेतृत्व के अनुयायी बनें। आज जो लोग प्रभेदकारी विचार रखते हुए यह कहते हैं कि गुरुओं ने हिन्दुओं से संलग्न ही एक धर्म बनाया अथवा इस्लाम तथा हिन्दुत्व के बीच का मार्ग अपनाया वे शेखचिल्ली हैं। इतिहास में इसका कोई आधार नहीं। उन महान् गुरुओं के नाम पर किसी निर्बलकारी अथवा विघटनकारी भावना का प्रवेश करना उनके समस्त बलिदानों तथा दूरदृष्टि को निष्फल कर देना है। उन्होंने किसी फिरके का निर्माण न कर उभरते हिन्दुत्व के प्रति इस्लाम के क्रोध को बहादुरी से सहन किया, यदि हमें किसी की आवश्यकता है तो वह है ग्यारहवें गुरु की जो हमारे कानों में दशम गुरु का उत्साहवर्धक सन्देश भर दे—

सकल जगत् माँहीं खालसा पंथ गाजे
जगे धर्म हिन्दू सकल द्वन्द्व भाजे।

इन गुरुओं के उत्साही नेतृत्व में सदैव अभिवृद्ध होने वाले हिन्दू योद्धा यवन क्रूरता का दृढ़ता से प्रतिरोध करते रहे। औरंगजेब के बाबा जहाँगीर ने पाँचवे हिन्दू गुरु अर्जुन देव को १६०६ ई० में क्रूरतापूर्वक मरवा डाला था। नवें गुरु तेग बहादुर का दिल्ली में औरंगजेब ने शिरच्छेद कर ही दिया था।

जैसाकि औरंगजेब की आदत थी उसने फूट के बीज बोकर तथा

षड्यन्त्र रचकर इन हिन्दू गुरुओं की गौरवपूर्ण परम्परा को समाप्त कर देना चाहा किन्तु परीक्षा की उस महान् बेला में सौभाग्य से हिन्दू चातुर्य, दृष्टिकोण एवं शौर्य की विजय हुई।

दसवें गुरु गोविन्दसिंह ने अपने हिन्दू शिष्यों को संगठित कर एक बाकायदा सेना निर्मित की ताकि वह खुले युद्ध में मुगल शक्ति को चुनौती दे सकें। मुस्लिम शमन तथा आतंक के कारण खतरे में पड़े हुए हिन्दुत्व के पुनर्जागरण के लिए उन्होंने अपने चारों पुत्रों का बलिदान कर एक महान्, गौरवपूर्ण तथा उत्साहवर्धक उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके दो बड़े पुत्र शत्रु से युद्ध करते हुए मारे गये। दो छोटे पुत्रों को पकड़कर मुस्लिम बनाने के लिए आतंकित किया गया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक इंकार कर दिया फलतः सरहिन्द दुर्ग की दीवार में चिनवा दिये गये। किसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह औरंगजेब के हाथों मारे जाने से बच गये किन्तु दक्षिण के नान्देर नामक स्थान पर एक अफगान मुस्लिम द्वारा १७०८ में उनका वध कर दिया गया।

जिस प्रकार शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् मराठों ने मुसलमानों को एक के बाद एक पराजय दी तद्वत् गुरु गोविन्द के हिन्दू योद्धाओं की मार के समक्ष विदेशी यवन शासक भीगी बिल्ली बन गये। ये सब उभरते हिन्दुत्व के विभिन्न प्रदर्शन थे।

जिस प्रकार उत्तर में हिन्दुओं के अनेक अवरोधक केन्द्र औरंगजेब को व्याकुल कर रहे थे, दक्षिण में मुगलों को उनके दुर्गों से खदेड़कर बाहर किया जा रहा था। अपने पिता की क्रूरताओं तथा बदमाशियों से तंग आकर औरंगजेब के विद्रोही पुत्र अकबर ने औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने के लिए शिवाजी के पुत्र शम्भाजी की शरण ली। जबतक शिवाजी जीवित रहे औरंगजेब का दक्षिण की ओर जाने का साहस नहीं हुआ। १६८१ ई० में औरंगजेब चार महीने बुरहानपुर ठहरा और तब मराठा प्रदेश की ओर बढ़ा। औरंगजेब के व्यक्तिगत निरीक्षण में दक्षिण में मुगलों ने विनाश का तांडव-नृत्य प्रारम्भ किया। औरंगजेब के पुत्रों तथा सेनापतियों द्वारा संचालित मुस्लिम गुण्डों ने समस्त दक्षिण में आतंक, लूटमार, मृत्यु एवं विनाश ला दिया। "शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम कोंकण जा पहुँचा तथा उसके भीतरी भागों, दरों तथा घने जंगलों में जाकर इसने समूचे प्रदेश को उजाड़

और अनेक हिन्दुओं को तलवार के घाट उतार दिया।" किन्तु संहारक हिन्दुओं द्वारा यवन शत्रु पर भी कोई दया नहीं की गयी। "बहुत बड़ी संख्याओं में (यवन) तथा अनगिनत चौपाये समाप्त हो गये।" हिन्दुओं द्वारा सभी दर्रों को रोक देने के कारण मुसलमान भूखों मर गये। मुगल शाहजादा के चढ़ने के लिए कोई अच्छा घोड़ा शेष नहीं रहा अतः मजबूरन औरंगजेब ने प्रत्यावर्तन का आदेश दिया।"

शम्भाजी के यहाँ शरण में रहने वाले विद्रोही अकबर ने १६८२ में फारस की राह पकड़ी कि उन्हें अपने पिता औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने के लिए ईरान की सहायता मिल जाय। किन्तु बीस वर्षों तक जगह-जगह घूमता हुआ औरंगजेब का पुत्र अकबर, कभी अतिथि की भाँति और कभी बन्दी-सा व्यवहार पाकर औरंगजेब के शासन के अन्त की ओर खुरासान के गर्मसीर नामक स्थान पर मर गया। औरंगजेब की सेना ने शम्भाजी के समुद्र की ओर के रामदुर्ग को घेर लिया पर मराठों द्वारा उनकी दुर्गति कर दी गयी। "एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर विषैले वृक्षों एवं सर्पों से भरे पर्वत। हिन्दुओं ने घास काट डाली, जिससे मुसलमानों तथा घोड़ों को बहुत परेशानी हुई। अनाज इतना महँगा हो गया था कि गेहूँ का आटा ३ से ४ रुपये प्रति सेर बिकता था। जो मौत से बच गये उनकी घिसटती हुई जिन्दगी आधी ही थी।" जब औरंगजेब ने अपनी सेना की यह दशा देखी तो आदेश दिया कि सूरत से जलयानों को मुगल शाहजादे की सहायता के लिए जल्दी ही भेजा जाय। किन्तु ये जहाज मुअज्जम तक नहीं पहुँच पाये और बीच में ही भारत के पश्चिमी तट पर घूमते हुए मराठों ने लूट लिये और डुबो दिये। इस प्रकार वीर मराठों के प्रदेश में मुसलमानों को कोई दया नहीं दिखायी गयी। वहाँ महान् शिवाजी की आत्मा यवन आक्रामकों की क्रूरताओं को अपने शक्तिशाली कार्यों द्वारा रोकने के लिए अब भी उत्साहित कर रही थी।

अब औरंगजेब ने अपना ध्यान गोलकुण्डा उपनाम हैदराबाद के मुस्लिम शासन की ओर दिया। अबुल हसन नामक वहाँ नाममात्र का शासक था। सभी मुस्लिम शासकों की भाँति खफी खाँ के अनुसार उसे भी सुरा एवं सुन्दरियों से अतीव प्रेम था पर उसने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक अपना प्रशासन देखने के लिए मदन्ना और अक्कन्ना नामक दो हिन्दू भाइयों को

नियुक्त कर दिया था। औरंगजेब की धर्मान्धता को यह सह्य नहीं था कि दो हिन्दू कूटनीतिज्ञ इस्लामी लूटपाट को रोके रहें और अपने प्रदेश को शान्त, समृद्ध तथा निष्पक्ष प्रशासन दें। इसलिए उसने अपने सेनापतियों को हैदराबाद पर चढ़ाई की आज्ञा दी। १६८३ में मुगलों की हैदराबाद के विरुद्ध झड़पें तथा बदमाशियाँ प्रारम्भ हुईं। खफी खाँ तथा अन्य इतिहासकारों ने बड़ी ईमानदारी से लिखा है कि दो विपक्षी सेनापति हिन्दू स्त्रियों का शील भंग करना पवित्र इस्लामी कर्तव्य समझते थे व उन्हें बड़ी चिन्ता रहती थी कि इस अपमान तथा क्रूरता से मुस्लिम स्त्रियाँ बची रहें। खफी खाँ उदाहरण देते हुए लिखता है (पृष्ठ ३१९, भाग VII) "शत्रु के एक सेनानायक ने शाही सेना के समीप दो अधिकारी यह कहने भेजे कि दोनों ओर के लड़ने वाले मुसलमान थे अतः स्त्रियों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए ३-४ घण्टे का समय माँगा और कहा कि उसके बाद वे लड़ने के लिए तैयार हो जायेंगे।" विदेशी मुसलमानों द्वारा नष्ट किये गये हिन्दुस्तान में स्त्रियों को पवित्र छोड़ देने का अधिकार केवल यवन स्त्रियों को ही प्राप्त था। विरोधी यवन सेनाएँ अपनी धर्मान्धता में अपने पारस्परिक वैमनस्य को तबतक रोके रखती थीं जबतक अधिक-से-अधिक हिन्दू न काट दिये जाएँ। उदाहरण के लिए खफी खाँ लिखता है, "मुगल शाहजादे ने (मुस्लिम) शत्रु को यह सन्देश भेजा कि युद्धों में दोनों ओर मुसलमान ही मारे जाते हैं, अतः अच्छा यह हो कि दोनों ओर के दो-तीन सरदार एक बार में ही पूरी लड़ाई लड़ लें।" (पृष्ठ ३१९)।

यवन शिविरों में विलासिता, विश्वासघात, रिश्वत तथा षड्यन्त्रों का बोलबाला था अतः उनके सैनिक आधे मन से लड़ते थे। औरंगजेब अपने पुत्र तथा खाँ जहाँ से अप्रसन्न था क्योंकि "उनके शिविर में भोग तथा विलासिता का नंगा नाच था और जिसे उसने बार-बार बुरा कहा था पर कोई लाभ नहीं हुआ।" यह सब विलासिता तथा मुस्लिम सेनाओं का रखरखाव हिन्दू गाँवों की लगातार लूट के धन से चलता था।

यद्यपि हिन्दू कूटनीतिज्ञों ने बड़ी सफलतापूर्वक औरंगजेब की सेना को दूर बनाये रखा पर जैसा कि सामान्यतः होता ही है हैदराबादी मुस्लिम शासक का मुहम्मद इब्राहिम नामक सेनापति विश्वासघाती निकला तथा मुगलों से जा मिला। अब तो मुगलों की लूटपाट का ठिकाना ही न रहा।

रक्षा के लिए किसी सेना के न होने के कारण हैदराबाद के लोगों के घर-आँगन मुगल दुष्टता के शिकार हो गये। "सैनिकों तथा नगर-निवासियों की पत्नियों का असम्मान किया गया तथा चारों ओर अव्यवस्था एवं विनाश छा गया।···लूट तथा विनाश का भयानक दृश्य उपस्थित हुआ।··· शब्दों से नहीं बताया जा सकता कि कितनी स्त्रियाँ और बच्चे बन्दी बना लिये गये और कितनी छोटी-बड़ी स्त्रियों का अपमान किया गया। अत्यन्त मूल्यवान कालीन जो इतने भारी थे कि ले जाये नहीं जा सकते थे, तलवारों और बरछियों से काट दिए गए। प्रत्येक टुकड़े के लिए बड़ा संघर्ष किया गया।" (पृष्ठ ३२०) हैदराबाद के इस शोर-शराबे में मदन्ना तथा अक्कन्ना नामक दो हिन्दू भाई, जिन्होंने हैदराबाद को कुशासन तथा मुस्लिम विनाश से वीरतापूर्वक बचाया, विश्वासघातपूर्वक पकड़े जाकर क्रूरतापूर्वक मार दिये गये तथा उनके उच्छिन्न सिर मुगल-प्रधान कार्यालय ले जाये गये।

मुगल शाहजादे ने क्षतिपूर्ति के रूप में अबुल हसन से १,२०,००,००० रुपया वसूल किया। मक्कार औरंगजेब ने बाहर से तो इन शर्तों के प्रति अपनी सहमति प्रकट की किन्तु व्यक्तिगत रूप से उसने अपने पुत्र तथा सेनानायक खाँ जहाँ को हैदराबाद अपने राज्य में न मिलाने के लिए फटकारा।

अब मुगल सेनाएँ दूसरे मुस्लिम राज्य बीजापुर में छा गयीं। बीजापुरियों ने डटकर लोहा लिया। अन्नपूर्ति का मार्ग अवरुद्ध किए जाने से मुगल भूखों मरने लगे। शाहजादा शाह आलम ने बीजापुरियों से अन्दरूनी बात चलाकर कहा कि ऐसा यत्न किया जाय कि उसकी भी लाज रह जाय और वह बिना किसी परेशानी के नाक ऊँची कर लौट जाय। इन बातों को सुन औरंगजेब ने बीजापुर के मध्यस्थ को बन्दी बना लिया। इस प्रकार एक-एक कर अपने प्रत्येक पुत्र से औरंगजेब अप्रसन्न हो गया। मुगलों द्वारा बुरी तरह लूटे जाने पर बीजापुर ने अक्तूबर, १६८६ में आत्मसमर्पण कर दिया। इसके शासक सिकन्दर को बन्दी बनाकर दौलताबाद दुर्ग की एक कोठरी में भेज दिया गया।

भयानक दुःखदायी भूत की भाँति औरंगजेब ने अब हैदराबाद के शासक अबुल हसन पर आँख जमायी। उससे अपना सम्पूर्ण कोष समर्पित करने के लिए कहा गया। औरंगजेब को दूर रखने की आशा में अबुल हसन ने ऐसा ही किया। किन्तु औरंगजेब निर्दयतापूर्वक सबको उजाड़ता हुआ

गोलकुण्डा की ओर बढ़ रहा था। १६८७ इ० के प्रारम्भ में गोलकुण्डा का घेरा डाल दिया गया। इसके बुर्ज उड़ा दिये गये, पूर्ति काट दी गयी तथा मुस्लिम सरदार औरंगजेब की ओर मिला लिये गये पर दो हिन्दू प्रशासकों मदन्ना तथा अक्कन्ना ने जनता एवं सैनिकों में हैदराबाद के प्रति इतना प्रेम भर दिया था कि नौ महीने तक गोलकुण्डा औरंगजेब की शक्ति का मुकाबला करता रहा। पर हैदराबाद के एक मुस्लिम सेनापति को खूब रिश्वत दे दी गयी जिससे उसने आधी रात दुर्ग का एक द्वार खोल दिया फलतः सितम्बर में असभ्य मुगल उसमें घुस पड़े। अब्दुर रजाक नामक एक ही सेनापति अन्त तक स्वामिभक्त रहा जो कि मुगलों की किसी धमकी तथा प्रलोभन में न आ थोड़े से अश्वारोहियों को साथ ले द्रोहियों द्वारा खोले हुए द्वार पर जा जमा। वहाँ उसने मुगल-सेना की चारों ओर से मारकाट मचायी। अन्त में सत्तर घाव हो जाने से वह थककर चूर हो वहाँ से हट गया।

प्रारम्भ में जब अबुल हसन ने सन्धि का पैगाम भेजा, औरंगजेब ने मक्कारी से भरा एक पत्र भेजा। उसने अबुल हसन पर दोषारोपण किया कि वह "रात-दिन भोग-विलास, मद्यपान, मक्कारी एवं दुराचारिता में रत रहता है।" दूसरा इल्जाम यह था कि अबुल हसन ने अक्कन्ना तथा मदन्ना हिन्दू भाइयों को अपना मन्त्री बनाया था जो औरंगजेब वैसे धर्मान्ध यवन की दृष्टि में अक्षम्य अपराध था।

धमकियाँ दे देकर समय-समय पर हैदराबाद से धन ले लेने के अतिरिक्त इसे अपने राज्य में मिलाने पर औरंगजेब के हाथ अरबों रुपये लगे।

गोलकुण्डा का दुर्ग राजा देवराय के पूर्वजों ने बनाया था। यह इतना प्राचीन है कि इसके मूल हिन्दू निर्माता का नाम ज्ञात नहीं। श्रेय लूटने के लिए, अन्य हिन्दू दुर्गों की भाँति, इसके विषय में भी झूठे मुसलमानों का कथन है कि हिन्दुओं के प्राचीन मिट्टी के दुर्ग के स्थान पर मुसलमानों ने पत्थर का किला बनाया। इन यवन झूठों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। हिन्दू मूर्ख नहीं थे। उनकी शौर्य एवं भवन-निर्माण की एक परम्परा थी जो लाखों वर्ष पूर्व महाभारत-रामायण-काल से होती हुई वेदों तक जाती थी।

हैदराबाद के उद्गम के विषय में भी यवन इतिहासकारों ने सफेद झूठ बोला है। हैदराबाद प्राचीन हिन्दू नगर है जिसका प्रारम्भिक नाम

सम्भवत: भाग्यनगर था। प्रत्येक मध्यकालीन महल एवं दुर्ग के निर्माण का श्रेय विदेशी यवन शासकों को देने की आदत होने के कारण हैदराबाद की आधार-शिला रखने का श्रेय भी मुहम्मद कुली उर्फ कुतुब-उल-मुल्क को दिया जाता है। पर यहाँ भी उन्हें इसका श्रेय उसके द्वारा अपहृत हिन्दू महिला को देना पड़ा है। उसका नाम भागमती था। खफी खाँ उत्तर-दायित्वहीनतापूर्वक लिखता है : "भागमती ने (हैदराबाद में) अनेक वेश्या-लय एवं मदिरालय खोल रखे थे तथा यहाँ के शासक सदा ही हर प्रकार की विलासिता तथा भोग-विलास के शिकार थे।" गहराई से सोचने पर इस कथन की असत्यता प्रकट हो जाती है। प्रथम तो अपहृत हिन्दू महिला पर धन, शान्ति एवं शक्ति ही कहाँ होगी कि नगर बसाए। दूसरे, दुष्ट मलेच्छ शासन को यह कहाँ सह्य होगा कि एक नये नगर को अपहृत हिन्दू महिला का नाम दिया जाय। तीसरे, एक स्त्री, वह भी हिन्दू स्त्री, कभी वेश्याशालाएँ अथवा मधुशालाएँ उन व्यक्तियों के लिए नहीं खोलेगी जो इतने अहमक तथा अन्य स्त्रियों के शीलभंजक थे। हजार वर्षों से यवन इतिहासकारों का यह नियम रहा है कि प्रत्येक हिन्दू महल एवं नगर के बनाने-बसाने वाले के नाम पर वे यवनों को श्रेय देते आये हैं अत: हमें इस पर अत्यन्त बारीकी से विचार करना है। महान् अंग्रेज इतिहासकार सर एच० एम० इलियट ने अपनी तीव्र दृष्टि से इसे जान लिया था अत: उन्होंने इसे "निर्लज्ज एवं पक्षपातपूर्ण पाखण्ड" कहा।

यूं तो औरंगजेब स्वयं प्लेग था फिर भी उसकी दक्षिण की लूटों के पश्चात् सूरत तथा अहमदाबाद के नीचे समूचे भारत में बड़ा भयानक प्लेग फैला। १६६३ के आसपास फैला यह रोग शताब्दी के अन्त तक चला।

वीजापुर तथा हैदराबाद को लूटकर तथा अपने राज्य में मिलाकर अब औरंगजेब मराठा राज्य की ओर बढ़ा जहाँ शिवाजी के महाप्रतापी पुत्र शम्भाजी राज्य कर रहे थे। वे विशाल, सुन्दर एवं शूर थे पर शिवाजी के समान उनमें कूटनीति नहीं थी। वस्तुत: मुगलों अथवा अन्य यवनों के साथ प्रत्येक युद्ध में उन्होंने मुसलमानों को बहुत बुरी पराजय दी। १६८९ में कोंकण की चढ़ाई से लौटने पर वे अपने मंत्री काबजी कलुश के मिट्टी के घर में ठहरे। वे इस बात से अवगत न थे कि मुगल टुकड़ियाँ पास ही के क्षेत्र में छिपी हुई हैं। कोल्हापुर को आधार बना मुकर्रब खाँ एक लुटेरी

सैन्य टुकड़ी का संचालन कर रहा था। केवल २००-३०० अंगरक्षकों वाले शंभाजी को दस गुनी मुगल सेना ने घेर लिया। शत्रु-संख्या के आधिक्य के कारण अनेक प्रतिरोध के बावजूद शम्भाजी तथा कावजी कलुश पकड़े गये। वे तथा अन्य २४ मराठे, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, बन्दी बना लिये गये। इससे औरंगजेब के शिविरों में अभूतपूर्व उल्लास छा गया। मुसलमानों की भीड़-की-भीड़ सुन्दर, सुडौल तथा शिवाजी के उत्तराधिकारी इस मराठा शेर शम्भाजी के दर्शनार्थ आई। यह तो शिवाजी की मेधा एवं कूटनीति का चमत्कार था जिसने अनेक मुस्लिम खतरों से शम्भाजी को सुरक्षापूर्वक बाहर कर लिया था, अब वह अचानक ही समाप्त हो गया तथा शम्भाजी रक्तपिपासु, आतंककारी, विदेशी म्लेच्छ औरंगजेब के अतिसाधारण बन्दी हो गये।

औरंगजेब के नारकीय बन्दीगृह में भी शम्भाजी तथा कावजी कलुश ने उसकी शक्ति का प्रतिरोध किया। क्रूर आतंकों तथा धमकी भरे कृत्यों के बावजूद उन्होंने मुस्लिम होने से साफ इंकार कर दिया। इसपर औरंगजेब ने "आज्ञा दी कि दोनों की जीभें काट दी जायँ, ताकि वे (इस्लाम के विरुद्ध) असम्मानपूर्वक न बोल सकें। इसके पश्चात् उनकी आँखें निकाली जानी थीं। तदनन्तर १०-११ अन्य व्यक्तियों के साथ यन्त्रणाएँ देकर उनके प्राण लेने थे। शम्भाजी तथा काबजी कलुश के सिर की खालों को भूसा भरकर ढोल पीटकर तथा तुरही बजाकर दक्षिण के सभी नगरों में दिखाना था।" और उनका मांस कुत्तों को खिलाना था। कायर औरंगजेब, वह औरंगजेब जिसका महान् शिवाजी के जीवित रहने पर दक्षिण जाने का साहस नहीं हुआ, इस भयानक क्रूरता के साथ बदला ले रहा था। यह गौरव की बात है कि अपने जीवन में वह अपने महान् पिता के समान योग्य प्रमाणित नहीं हुआ पर यवन क्रूरताओं एवं यन्त्रणाओं के समय वह शक्तिशाली सिद्ध हुआ। शम्भाजी के मुगलों के बन्दी सप्तवर्षीय पुत्र शाहूजी को छोड़ दिया गया और उसे मुगल हरम में ले आया गया।

१६८८-८९ वर्षों के बीच दक्षिण की अनेक रियासतें औरंगजेब के मक्कारी से भरे जाल में फँसती गयीं। मराठों की राजधानी रामगढ़ एवं शिवाजी के अन्य दुर्गों के अतिरिक्त बीजापुर, गोलकुण्डा, सागर, रायचूर, अदोवी, सेरा, बंगलौर, बन्देवाश, कांजीवरम, कर्नाटक, बाँकापुर, बेलगाम

के क्षेत्र उसने जीत लिये।

मराठों के सम्पूर्ण विनाश में असफल रह, दुर्भाग्य से महाराष्ट्र के पर्वतीय क्षेत्रों में हजारों मराठा योद्धा विद्रोह कर उठे। इन बिखरी हुई मराठा टुकड़ियों को वश में करना औरंगजेब के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द था।

शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम ने, जो शम्भाजी की मृत्यु के समय १९ वर्ष का था, मराठा राज्य की राजधानी दक्षिण के जिंजी दुर्ग में पहुँचा दी तथा अन्य मराठा सेनापति गाँवों में छाये हुए मुगलों को सताने लगे। शम्भाजी की हत्या का बदला दूसरे वर्ष ही ले लिया गया जब महान् शूर मराठा योद्धा सन्तजी घोरपाड़े ने मुगल सेनानायक रुस्तम खाँ को पकड़ लिया तथा उसके शिविर को सफलतापूर्वक लूट लिया। सन्तजी ऐसा भयानक योद्धा था कि खफी खाँ तक को लिखना पड़ा "जिस किसी ने उससे युद्ध किया या तो मारा गया, घायल हुआ या फिर बन्दी बना लिया गया। यदि कोई भाग भी पाया तो केवल अपने प्राण लेकर, सेना तथा सामग्री से रहित। कुछ भी नहीं किया जा सकता था। जहाँ कहीं भी यह नारकीय कुत्ता (यानी मराठा योद्धा, सन्तजी) गया, आक्रमण किया। कोई भी शाही अमीर इतना साहसी नहीं था कि उसका प्रतिरोध करता तथा उसने उनकी सेनाओं को जो-जो हानि पहुँचायी, इससे बहादुर योद्धा भी प्रकम्पित हो गया। बहादुर एवं निपुण योद्धा इस्माइल खाँ प्रथम आक्रमण में ही पराजित हो गया। उसकी सेना को लूटा गया और वह स्वयं घायल हुआ तथा बन्दी बना लिया गया। अली मरदान खाँ को भी पराजित कर बन्दी बना लिया गया।" अपनी मुक्ति के लिए सभी को बहुत बड़ी रकम देनी पड़ी।

अबुल ख़ैर खाँ जिसने राजगढ़ दुर्ग पर अधिकार जमा लिया था, १६९१ में रोता, घिघियाता उससे बाहर आ गया। उसने प्राणों की भीख माँगी। उसके द्वारा मराठा प्रदेश से लूटी हुई समस्त सम्पत्ति समर्पित कर देने पर उसे छोड़ दिया गया।

उत्तर में आगरे में वीर जाटों ने मुगल शक्ति का अनादर करना प्रारंभ किया। मुस्लिम सेनापति आगर खाँ तथा उसका दामाद दोनों ही काट डाले गये। औरंगजेब के अपने ही पुत्र उसके शत्रु थे। हैदराबाद तथा बीजापुर

के युद्ध के समय शत्रु से मिल जाने के अपराध में औरंगजेब ने अपने पुत्र मुअज्जम को बन्दी बना लिया था। बन्दी रूप में, औरंगजेब के आदेशानुसार, शाहज़ादे का सिर प्रतिदिन घुटाया जाता तथा अन्य प्रकार से भी उसका अपमान किया जाता। १६९२ में औरंगजेब ने कुछ निरोधों में ढील दी। मुसलमानों द्वारा शासित हिन्दुस्तान की क्रूरता एवं हृदयहीनता की भारत के पुर्तगाली शासन से तुलना करते हुए खफी खाँ कहता है कि वहाँ मुसलमान बहुत अच्छी प्रकार रखे जाते थे, उन पर कोई कर भी नहीं लगाया गया था, बस एक बात की मनाही थी—न तो वे अल्लाह को पुकारें और न नमाज के लिए लोगों को एकत्र करें।

अब मराठे शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम के अनुयायी थे। उसने पनहाला दुर्ग से मुगल-रक्षकों को मार भगाया।

१६९३ में मराठों के महान् तीर्थ-स्थल पंढ़ापुर में औरंगजेब ने डेरा डाला तथा मुस्लिम लूट एवं भ्रष्टता के अनुसार समीप के पवित्र हिन्दू स्थलों एवं मन्दिरों को भ्रष्ट करने लगा।

इसके बाद तो लज्जाजनक पराजयों के कारण औरंगजेब का जीवन अतीव कष्टपूर्ण था। वीर सन्तजी ने कर्नाटक की सीमा पर औरंगजेब के जांनिसार खाँ तथा तहव्बर खाँ सेनापतियों को बहुत बुरी पराजय दी तथा उनकी सम्पूर्ण सामग्री एवं तोपखाना लूट लिया।

१६९४ में औरंगजेब की सेना ने मराठों की नयी राजधानी जिंजी का घेरा डाला। मुगलों में वैमनस्य हो गया। शाहज़ादा मुहम्मद कामबख्श ने अपने को जामदातुल मुल्क तथा नुसरत जग सेनापतियों की सेवा में पा अपमान महसूस किया। ऐसा लगा जैसे गृहयुद्ध भड़क उठेगा। ऐसे में सन्तजी ने मुगल घेरा डालने वालों की सामग्री तथा सन्देश के मार्ग अवरुद्ध कर दिये। अनेक मुगल सेनापति अपने स्थान छोड़ भयभीत हो पहाड़ियों में भाग गये। उनका सामान मराठों ने लूट लिया।

कुछ समय पश्चात् दुर्ग में घिरे हुए मराठा-रक्षक इसे छोड़ अन्यत्र चले गए। मुगलों के मनमुटाव अब बहुत बढ़ गए थे। शाहज़ादे कामबख्श को बन्दी बना औरंगजेब के सामने प्रस्तुत किया गया। बादशाह को शाहज़ादे का बन्दी बनाया जाना अच्छा नहीं लगा। उसे छुड़वाकर उसने अपने सेनापतियों को डाँटा।

इसी समय एक मुगल जलयान मक्का से सूरत जा रहा था। लूटे हुए हिन्दू माल को मक्का में बेच इस यान में ५२ लाख रुपये का सोना-चाँदी आ रहा था। इब्राहीम खाँ कप्तान था। युद्ध की अन्य सामग्री के अतिरिक्त जहाज पर ८० बन्दूकें ४०० मस्कटें थीं। जहाज सूरत से ८-९ दिन की ही दूरी पर था कि एक अंग्रेजी जहाज, जिसका आकार बहुत लघु तथा जिसमें मुगल यान का चौथाई तोपखाना भी नहीं था, दिखाई पड़ा। जब वह बहुत समीप आ गया तो कुछ शरारतियों ने शाही घमण्ड में आकर अंग्रेजी जहाज में गोली मारी। अंग्रेजों ने भी गोली मारी, जिससे मुगल जहाज के मुख्य मस्तूल को बहुत क्षति हुई। अपनी निशानेबाजी से उत्साहित हो अंग्रेज तलवारें लेकर मुगल जहाज पर कूद पड़े। ज्योंही अंग्रेज जहाज पर आने लगे, कायर इब्राहीम जहाज के भीतरी भाग में भागा। वहाँ उसने कुछ मूल्यवान् जीवित, पवित्र, धार्मिक कोष छिपा रखा था। ये थीं तिरछी, साथ सोने वाली तुर्की की वेश्याएँ, जिन्हें एक पवित्र मुसलमान ने अल्लाह के घर जाने की स्मृति-स्वरूप मक्का के दास-बाजार से खरीदा था। अपने जनाने वस्त्र पहन तथा हरम में आराम कर इब्राहीम ने उनके सिरों पर अपने साफे बाँध तथा तलवार दे अंग्रेजों से लड़ने के लिए डैक पर भेज दिया। अंग्रेजों ने सभी मुगलों को बन्दी बना लिया, उनकी सम्पत्ति लूट ली तथा उस जहाज को युद्ध-पुरस्कार के रूप में मुम्बई में अपनी आबादी में ले गये।

इससे औरंगजेब इतना क्रोधित हुआ कि उसने सूरत में अंग्रेजों को पकड़ने की आज्ञा दी तथा सूरत के मुगल सेनापति एतिमाद खाँ को आदेश दिया कि बम्बई की अंग्रेजी बस्ती को घेर लिया जाय। अंग्रेजों के दबाने में सन्देहयुक्त होने पर उसने औरंगजेब के आदेश पर ध्यान नहीं दिया। दूसरी ओर सूरत में अपने अधिकारियों को बन्दी बनाया जाना देखकर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्रत्येक मुगल को, जो उनके हाथ लगा, जेल में डाल दिया।

सन्तजी घोरपाड़े के विरुद्ध भेजी गयी मुगल सेना समुद्र-तट के दांदेरी स्थान पर बुरी तरह हरा दी गयी। मराठों की मारकाट के आगे कासिम खाँ के अधीन भेजी गयी सहायक सेना भी भाग खड़ी हुई। मुगल शिविर को पहले तो लूट लिया गया फिर आग लगा दी गयी। मराठों के हाथ ५०

लाख से अधिक की सम्पत्ति लगी। कासिम खाँ, रहुल्ला खाँ तथा हिम्मत खाँ—तीन मुगल सेनापतियों ने सन्तजी से युद्ध करने का साहस दिखाया किन्तु हरा दिये गये। हिम्मत खाँ तो मारा भी गया।

औरंगजेब को सबसे अधिक परेशानी तो तब हुई जब दक्षिण की लूट-खसोट के लिए भेजे गये उसके दो पुत्र आपस में ही लड़ने लगे। दोनों ही १६८६ ई० से बन्दी थे। छोटा मुहम्मद आजम १६६१ में मुक्त कर दिया गया। १६६४-६५ में जब उसे काडप्पा को लूटने भेजा गया तो वह जालन्धर की बीमारी से पीड़ित हो औरंगजेब के शिविर में लौट आया। औरंगजेब के उपचार से वह पुनः स्वस्थ हो गया। बड़े शाहजादे शाह आलम को सात वर्षों तक बन्दी बनाए रखा गया। उसे १६६४ में मुक्त किया गया। इससे मुहम्मद आजम ईर्ष्यालु हो उठा। वह तो अपने को औरंगजेब का उत्तराधिकारी होने के नाते बादशाह समझता था। अब बड़े शाहजादे के मुक्त हो जाने से उसका अवसर सन्देहास्पद हो उठा। दोनों की घृणा के कारण भयानक झगड़े होने लगे तथा गुप्त योजनाएँ बनाई जाने लगीं। औरंगजेब ने शाह आलम को दायें तथा मुअज्जम को अपने बायें बिठाकर सुलह करानी चाही किन्तु अब बड़े शाहजादे को दायीं ओर स्थान देने से तो छोटा और भड़क उठा।

इसी समय समाचार मिला कि मराठा सरदार नागवजीराव माने ने सन्तजी के साथ व्यक्तिगत शत्रुता होने के कारण मुगलों के लिए महान् भय का कारण सन्तजी को मार दिया। नागोजी उस समय तक मुगलों की सेना में रहा था किन्तु अब उसने बड़ा पश्चात्ताप किया और बाद में देश-भक्त मराठा सेना में आ गया।

१६६५-१६६६ में जब औरंगजेब ने भीमा नदी के किनारे अपना डेरा डाला तो मानो यवनों की लूट-मार के कारण क्रोध में आकर आधी रात दस से बारह हजार मुसलमानों को औरंगजेब के साज-सामान, शाहजादों, अमीरों, घोड़ों, बैलों, पशुओं, तम्बुओं सहित बहा ले गयी। इन चिन्ताओं और परेशानियों से दुःखी होकर वृद्ध औरंगजेब ने कुरान की कुछ आयतें लिखकर भीमा के उफनते हुए पानी में डाल दीं पर भीमा नदी ने कोई ध्यान नहीं दिया।

इसके एक वर्ष पश्चात मराठा सेनापति धनाजीराव [illegible] ने

औरंगजेब के सेनापति हुसैन अलीखाँ को नान दरबार नामक स्थान पर पराजित किया। मराठों द्वारा दी गयी इन अनेक हारों से दुःखी होकर औरंगजेब ने एक अन्तिम और निर्णायक युद्ध करने का निश्चय कर लिया ताकि उन्हें पाताल में ठूँस दिया जाय। उसने कठोर आदेश दिया कि सभी महिलाएँ पीछे छोड़ दी जायें। चारों ओर लकड़ी आदि की बाड़ बनाकर उसकी रक्षा के लिए कुछ व्यक्ति छोड़ दिये गये। मराठा बादशाह राजाराम की राजधानी सतारा की ओर औरंगजेब की विशाल वाहिनी बढ़ी। औरंगजेब के विनाशकारी गिरोह ने सम्पूर्ण मराठा प्रदेश को उजाड़ दिया। सतारा को चारों ओर से घेर लिया गया। मराठों ने घेरा डालने वाले मुगलों का पूर्ति-मार्ग काट दिया। इसी समय मुस्लिम अधिकृत बरार के धावे से लौटे हुए मराठा राजा राजाराम की एकाएक मृत्यु ने मराठों के प्रतिरोध में गत्यावरोध उत्पन्न कर दिया। सतारा समीपस्थ मराठा दुर्ग समर्पित कर दिये गये तथा मराठा सेनापतियों ने विधवा रानी ताराबाई के अधीन अपने को फिर से गठित किया। मुस्लिम शिविर में राजाराम की मृत्यु ईद के समान दावत, शराब तथा गाजे-बाजे के साथ मनायी गयी।

औरंगजेब की प्रसन्नता अस्थायी रही। उसके बहुत से लोग तथा पशु बाढ़ की नदी पार करते हुए डूब गये। लूट के जिस सामान को वे ले नहीं जा सके उसे जला दिया। उसकी सेना का अधिकांश नष्ट होने पर औरंगजेब ने नयी टुकड़ियाँ मँगाने के लिए बुरहानपुर, बीजापुर, हैदराबाद तथा अहमदाबाद के सेनापतियों को आदेश दिया। इन आदेशों के फलस्वरूप अनेक हिन्दुओं को यातनापूर्वक मुसलमान बना लिया जाता था। औरंगजेब के ही निरीक्षण में हिन्दुओं के क्षेत्रों को लूटने के लिए दूर भेज दिया जाता था। यह सहायक टुकड़ियाँ कठिनता से ही आ पायी थीं कि अचानक ही पास बहती हुई नदी में बाढ़ आ गयी। इसके बाद ही मराठों ने पनहाल दुर्ग पर अचानक आक्रमण किया। मुहम्मद आजम को इसका समर्पण करना ही पड़ा।

आक्रामक लुटेरे मुगलों तथा प्रतिरक्षाकारी मराठों के बीच अनेक संघर्ष तथा प्रतिसंघर्ष होते रहे। विदेशी मुसलमानों द्वारा किया गया विनाश मुहम्मद अमीर खाँ के कुकृत्यों से स्पष्ट है। "उसने अपना कर्तव्य

निभाने के उत्साह में कोई कमी नहीं दिखायी। वह विनाश करने, आबादी वाले स्थानों में आग लगाने, हत्या करने, लोगों को बन्दी बनाने तथा पशुओं को पकड़ने और ले जाने में इतना फुर्तीला था कि खेती-बाड़ी अथवा मराठों का नाम निशान भी नहीं पाया जाता था।" (पृष्ठ ३७१, भाग VII)।

दूसरी ओर ताराबाई ने "शाही भूभाग नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी तथा सिरोंज, मन्दसोर तथा मालवा तक के छः सूबे लूटने के लिए सेनाएँ भेजीं।...तथा अपने शासन के अन्त तक औरंगजेब की तरकीबों, लड़ाइयों तथा घिराबों के होते हुए भी मराठों की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी।" मराठे औरंगजेब के राज्य में भीतर तक घुसकर लड़ते थे तथा जब औरंगजेब उनके भूभाग में डेरा डालकर लूटमार करता तब वे उसके राज्य में जाकर आतंक मचा देते थे तथा उसके दुर्ग-रक्षकों एवं पथ-रक्षकों को लूटते तथा मारते थे। १७०२ में मराठों ने अहमदाबाद के समीप कमरतोड़ पराजय दी। मराठों से अपनी जान बचाने के लिए भागते हुए अनेक मुसलमान साबरमती नदी में डूब मरे।

दक्षिण में ही अन्य मराठा सरदार पर्यनायक ने औरंगजेब को बहुत परेशान कर रखा था। नायक की राजधानी वाकनखेड़ा के पड़ोस में भी यदि कोई मुगल सेनापति घुसने का साहस कर बैठता, चाहे वह मुहम्मद आजम ही क्यों न हो, उसे बड़ी करारी हार मिलती। औरंगजेब ने उसके विरुद्ध स्वयं जाने का इरादा किया तब नायक ने ताराबाई की सहायता माँगी। बड़े लम्बे घिराब तथा हानियों के पश्चात् मुसलमान दुर्ग को ले सके लेकिन उन्हें दुर्ग के अन्दर केवल भस्म ही मिली।

इस कठिनाई के समय औरंगजेब भयानक रूप से बीमार पड़ गया। उसकी मृत्यु की अफ़वाह ने उसके शिविर में हलचल मचा दी। उसकी टुकड़ियाँ वीर मराठों की धमकियों से आतंकित थीं ही, अतः उन्हें विश्वास हो गया कि औरंगजेब की मृत्यु से तो उनका अपना अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। लेकिन औरंगजेब स्वस्थ हो गया। कृतज्ञतावश उसने हकीमों को पुरस्कार दिया और फकीरों को दान दिया।

औरंगजेब अहमदनगर की ओर चला। अपने पिता की बीमारी सुनकर मुहम्मद आजम ने अहमदाबाद से चले आने की आज्ञा माँगी। औरंगजेब

इतना मक्कार था कि उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि अहमदाबाद की जलवायु उसके अनुकूल नहीं है। शाहज़ादे की आँख सिंहासन पर थीं। औरंगजेब ने बड़ी कठोरतापूर्वक स्पष्ट शब्दों में अपने पुत्र को लिखा कि वह उसकी सब बदमाशी समझता है। जब वह स्वयं शाहजादा था तो वह भी यह बहाना बनाकर कि दक्षिण की जलवायु उसके अनुकूल नहीं है, अपने मरणासन्न पिता के समीप होना चाहता था। शाहजादा औरंगजेब को चिट्ठियाँ लिख-लिखकर दुःखी करता रहा। बड़े खिंचाव के उपरान्त औरंगजेब ढीला पड़ा और मुहम्मद आजम उसके पास दौड़ा आया। लेकिन औरंगजेब अपने सबसे छोटे लड़के कामबख्श से स्नेह करता था लेकिन वह अभी इतना छोटा था कि कोई मक्कारी नहीं सोच सकता था। मुहम्मद आजम का शिविर में आना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण था क्योंकि प्रत्येक मुस्लिम शहजादा अपने भाइयों का हत्यारा होता था, इसलिए कामबख्श की उसके बड़े भाई मुहम्मद आजम से सुरक्षा रखने के लिए औरंगजेब ने सेनापति हसनखाँ उपनाम मीरमलंग को नियुक्त किया। हसनखाँ मुहम्मद आजम की चालों को काटता रहा। उसने औरंगज़ेब से हसनखाँ की शिकायत की। छोटे शाहजादे की सुरक्षा को ध्यान में रखकर औरंगजेब ने बड़े सम्मान के साथ कामबख्श को बीजापुर भेज दिया जो बड़े आजम को बहुत बुरा लगा। कुछ दिनों पश्चात् मुअज्जम मालवा भेज दिया गया।

इन दो शाहजादों के चले जाने के बाद औरंगजेब बीमार पड़ गया। उसे तीव्र ज्वर हो गया। खफी खाँ के अनुसार पचास वर्ष दो महीने शासन करने के पश्चात् ९० वर्ष की अवस्था में शुक्रवार, फरवरी २१, १७०७ को औरंगजेब मर गया। वह दौलताबाद के समीप खुलदाबाद में जहाँ वह डेरे डाले हुए था, दफना दिया गया। एक अन्य स्रोत के अनुसार स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई। वह और सेनापति मराठा गुरिल्लों से लगातार युद्धों में रत रहे। ऐसे ही एक बार मराठों के अचानक आक्रमण से मुगल सेना तितर-बितर हो गयी। औरंगजेब अपनी सेना के मुख्य भाग से बिछुड़ गया तथा धूल भरे तूफान में मार्ग भूल गया। उसके साथ लगभग २०० मुस्लिम सैनिक थे। विजयी मराठे मुसलमानों की खोज में पूरे क्षेत्र को ही खोज रहे थे कि उन्हें औरंगजेब द्वारा संचालित यह यवन-वर्ग दिखलाई दिया। उन्होंने इसका पीछा किया। अपनी जान बचाने के लिए भागते हुए मुगल

'अल्लाह ! अल्लाह ! तौबा ! तोबा !' चिल्लाह रहे थे कि सब-के-सब काट डाले गले। औरंगजेब के भी टुकड़े हो गये। उसके शरीर का प्रत्येक अंग दूर-दूर गिरा।" औरंगजेब के कटे हुए शरीर के अंग अनेक स्थान पर दफन पड़े हैं। जिसके कारण उसके नाम पर महाराष्ट्र में अनेक मकबरे हैं। यदि यह वर्णन सही है तो औरंगजेब का अन्त उचित ही हुआ। जिसने जीवन भर दूसरों के साथ कुत्तों का-सा व्यवहार किया अन्त में वह कुत्ते की मौत मारा गया। वह मराठा प्रदेश में नव-संस्थापित हिन्दू प्रतिरोधक केन्द्र को समाप्त करने तथा दक्षिण भारत के सभी निवासियों को डराकर मुसलमान बनाने की आशा में गया था किन्तु दक्षिण उस मूर्ख के लिए जाल सिद्ध हुआ। औरंगजेब क्रोध तथा दुःख से भरा हुआ दक्षिण में २५ वर्ष मारा-मारा फिरता रहा। दक्षिण में व्यतीत किया गया उसके शासन का उत्तरार्द्ध घमण्डी मुगलों के लिए एक से एक बढ़कर मुसीबतें तथा लज्जा-जनक पराजय, उनसे लाया, जिन्हें वह घृणापूर्वक चूहे तथा कीड़े कहा करता था। जिस विश्वासघात का व्यवहार उसने अपने ही पिता तथा भाइयों के साथ किया उसका मजा उसे उसके विद्रोही पुत्रों ने चखा दिया। उसके शरीर के टुकड़े-टकड़े किया जाना ठीक ही था क्योंकि उसने शिवाजी के पुत्र शम्भाजी तथा अन्य विपक्षियों को बड़ी क्रूरतापूर्वक मारा था। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से भाग्य ने उसके साथ जैसा-का-तसा किया तथा मध्यकालीन दुनिया के लिए, जो उसकी इस्लामी एड़ी के नीचे पचास साल तक कुचली जाती रही थी, उसकी मृत्यु वरदान सिद्ध हुई। शक्तिशाली मुगलों का अन्तिम जीव गुजर गया, और अपने पीछे ऐसे कमजोर तथा लड़ने वाली सन्तान छोड़ गया जिसे भाग्य ने आगामी डेढ़ सौ वर्षों के भीतर आपस में ही लड़ा-लड़ाकर समाप्त कर दिया।

औरंगजेब जैसे धर्मान्ध, विदेशी मुसलमानों की एक हजार वर्षीय लम्बी पंक्ति ने हिन्दुस्तान में जो कहर मचाया वह बड़ा भयानक है। सम्पूर्ण प्रजातियों, कस्बों, नगरों तथा प्रदेशों को आतंकित करके हिन्दू धर्म छुड़वाकर उन्हें अरब, ईरान तथा तुर्की के मुसलमान घोषित कर दिया गया। इस ढंग से भट्टी तथा राणा जैसी वीर हिन्दू क्षत्रिय जातियाँ थीं, जिन्होंने हिन्दुस्तान तथा हिन्दुत्व की रक्षा के लिए सब कुछ किया, मजबूर होकर इस्लाम के जाल में फँसा ली गयीं। इसका एक विशेष उदाहरण

मुरादाबाद की तथाकथित मुस्लिम कसाई बिरादरी है। वे हिन्दू-वैश्य थे तथा जिस बाजार में आज स्वयं काटकर गौमांस बेचते हैं पहले वस्त्र तथा किराना बेचा करते थे। एक बार औरंगजेब ने मुरादाबाद में बड़ा आतंककारी धावा किया तथा बलपूर्वक हिन्दू व्यापारियों को मुसलमान बना सब सामान लूट लिया। उन्हें और भी अपमानित करने के लिए तथा हिन्दुओं के पवित्र अतीत से उन्हें काटने के लिए औरंगजेब ने उन्हें विवश कर दिया कि जिन गौओं को वे पवित्र माँ समझते थे उन्हें काट डालें तथा अपना जीवन-यापन उनका मांस बेचने से ही करें और उस मांस को आक्रमणकारियों द्वारा खण्डित किये गये उन मूर्ति के टुकड़ों से ही तोलें जिनकी वे पूजा करते थे।

: ९ :

अन्य दुर्बल मुगल

मुस्लिम कुशासन के पाँच सौ वर्षों (१२०६ से १७०७ तक) ने हड़पे हुए दिल्ली के सिंहासन को ऐसा भयानक मृत्यु-पाश बना दिया था कि औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब कभी मुगलों के ताज के लिए किसी बादशाह की जरूरत पड़ी, उत्तराधिकारी के लिए प्रभावशाली दरबारियों ने शाही हरमों को टटोला लेकिन शीलभंग की हुई स्त्रियों ने सिसकते हुए, चिल्लाते हुए, कराहते हुए तथा मिन्नतें करते हुए अपने बच्चों को औपचारिक राजगद्दी मिलने किन्तु उसका अनौपचारिक तथा क्रूरवध होने के अन्त से बचाने के लिए अपने बच्चों को छिपा लिया।

प्रतिदिन मुगलवंश के कुकुरमुत्ते दरबारियों की कृपा से मजाक के तौर पर सिंहासन पर बैठ जाते और थोड़े समय बाद ही उन्हें अन्धा कर दिया जाता अथवा मार दिया जाता।

१७०७ तथा १८८५ ई० के बीच—जब पेंशन पाने वाले अन्तिम मुगल को हिन्दुस्तान से बाहर जीवन व्यतीत करने निकाल दिया गया—एक दर्जन से अधिक मुगल हुए, जिन्होंने इससे पूर्व कि अल्लाह उनकी कुख्यात तथा बदमाश जाति समाप्त कर दे, इस्लामी ताज का प्रदर्शन किया।

हिन्दुस्तान के इस १५० वर्षीय मुस्लिम शासन में दिल्ली के हिन्दू लालकिले में, जो मुगलों के अधिकार में था, कोई राष्ट्रिय अथवा अन्तर्राष्ट्रिय घटना नहीं हुई, अपितु सामान्य मद्यपान, नाच-गाने-भोग-विलास, पाशविक क्रूरता एवं भयानक हत्याएँ ही होती रहीं।

आठवीं शती के हत्यारे मुहम्मद बिन कासिम से लेकर १८वीं शती के नरसंहारक नादिरशाह तथा अहमदशाह तक के एक हजार वर्षों में उनके अ-मुसलमानों की सामूहिक हत्याओं, उनकी सम्पत्ति लूटने, मन्दिरों को

भूसात करने, उनकी ललनाओं का शीलभंग करने तथा उनके बच्चों को, जितना हो सके, अपहरणकर मुसलमान बनाने के उनके धार्मिक उत्साहों में कोई अन्तर नहीं आया। किन्तु जो सबसे रहस्यभरी बात है वह यह कि एक हजार वर्ष के भारत में विदेशी मुसलमानों के लगातार आतंक, क्रूरता तथा हृदयहीनता का अन्त गुलाम कादिर नामक एक गुण्डे के राक्षसी कृत्य से हुआ। एक समय, जबकि इतिहास ने मोड़ लिया तथा शाह आलम द्वितीय को गौरवशाली बादशाहत से नीचे गिराकर ऐसा दीन, दुःखी, अन्धा बना दिया, जिसने रोटी का एक टुकड़ा तथा पानी की एक-एक बूँद माँगी, गुलाम कादिर ने शाही हरम में स्त्रियों तथा बच्चों को नग्न कर दिया, अफगान सैनिकों द्वारा महिलाओं का शीलभंग कराया तथा अपने मनोरंजन के लिए शाही लड़कों को अपमानपूर्वक नचाया जबकि वह स्वयं हाथ से कटार लेकर जमीन पर पड़े हुए शाह आलम द्वितीय की छाती पर बैठा था तथा बादशाह की आँखों को अपनी छुरी से ऐसे बाहर निकाल रहा था जैसेकि रिसते हुए तरबूज के लाल खण्डों को निकाला जाता है किन्तु इस अद्भुत अन्त का चरम-बिन्दु तब था जब गुलाम कादिर ने एक चित्रकार को बुलाकर आज्ञा दी कि वह बहुत ही शीघ्र, उसी समय भयानक दृश्य का चित्र बना दे जब उसने विजयपूर्वक बादशाह शाह आलम द्वितीय को नीचे दाब लिया था तथा भयभीत स्त्रियाँ और बच्चे नितान्त नग्नावस्था में उसकी तथा उसके दुष्ट साथियों की सेवा में रत थे। यह उसने इसलिए किया कि ऐसा न हो कि कहीं आने वाली पीढ़ियाँ उसके इस महान् कृत्य को भूल जायें।

इस बर्बरतापूर्ण भयानक नाटक को दोनों पक्षों की ओर से कुरान के उद्धरण दे-देकर तथा सौगन्ध खा-खाकर पावनता प्रदान करने का यत्न किया गया, एवं अल्लाह के नाम पर इन कुकृत्यों को सराहा गया।

इससे बड़ी भाग्य की विडम्बना क्या होगी कि जिस शाह आलम द्वितीय के पूर्वज हिन्दुस्तान में १,००० वर्षों तक मनमाने अत्याचार करते रहे उसके परिणामस्वरूप अल्लाह ने उसके ही सहधर्मी को फल देने भेजा।

अन्तिम शक्तिशाली, क्रूर तथा विश्वासघाती मुगल औरंगजेब की मृत्यु १७०७ ई० के पश्चात् इस्लामी दरबार की राजनीति में अनेक छोटे-मोटे मुगल पानी के बुलबुलों के समान निकलते-छिपते रहे।

औरंगजेब के पाँच जायज पुत्र थे। इनमें से प्रथम बड़े दो कश्मीर के रजौरी नृपति की पुत्री नवाब बाई से थे। सबसे बड़ा मुहम्मद सुलतान, जिसे औरंजेब ने अपने पिता बादशाह शाहजहाँ समेत अपने सभी विपक्षियों को समाप्त करने सम्बन्धी कार्य पर लगाकर विश्वासघात में प्रशिक्षित कर दिया था, दिसम्बर १४, १६७६ को ३६ वर्ष की अवस्था में मर गया। दूसरा शाहजादा अकबर (दिलरस बानू बेगम से उत्पन्न) विद्रोही बन स्वयमेव घर छोड़ औरंगजेब के शासन काल में ही मर गया। अतः औरंगजेब की मृत्यु पर उसके तीन जायज दावेदार थे। मुअज्जम उर्फ शाह आलम (अक्तूबर १४, १६४३ को बुरहानपुर में नवाब बाई से उत्पन्न) उन तीनों में सबसे जेठा था। अपने यवन पिता तथा इस्लामी परम्परानुसार उसने अपने दो भाइयों की हत्या कर सिंहासन हथिया लिया। अपनी मृत्यु की बेला में बड़ी सावधानी से औरंगजेब ने अपने समीप उन तीनों में से किसी को नहीं आने दिया। जैसे औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को बन्दी बनाया उसे भय था कि ऐसे ही कहीं उसके पुत्र उसे बन्दी न बना लें। मुअज्जम काबुल में था। सबसे छोटा कामबख्श बीजापुर तथा आजम मालवा में था।

शाह आलम ने ठीक एक मास का प्रतीक्षा के अनन्तर औरंगजेब की मृत्यु के विषय में मार्च २२, १७०७ को सुना। ससैन्य वह हिन्दुस्तान लौटा। अन्य दो भी ताज की आकांक्षा ले अपनी-अपनी सेनाएँ ले आये। जून १६, १७०७ को जाजऊ के युद्ध में आजम की हार हुई और वह मारा गया। दो वर्ष पश्चात् (अर्थात् १७०६ में) कामबख्श भी मारा गया।

शाह आलम बहादुर शाह का नाम ग्रहण कर सिंहासन पर बैठा। वह कैसा आदमी था यह इसी से जाना जा सकता है कि शाह आलम उर्फ मुअज्जम के कुकृत्यों से भयभीत हो उसके पिता औरंगजेब ने सम्पूर्ण हरम सहित उसे मार्च ४, १६८७ से आगे ७ वर्षों तक बन्दी बनाए रखा।

अपने अन्य यवन शासकों की भाँति बहादुरशाह ने भी अपना परम पुनीत कर्तव्य हिन्दुओं का संहार करना, उनकी स्त्रियों का अपहरण करना, उनकी सम्पत्ति लूटना, गायों की हत्या करना तथा मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करना माना। इस्लामी कामों के लिए उसने राजस्थान को चुना (१७०७)। औरंगजेब की मृत्यु के ठीक पश्चात् जयपुर, जोधपुर तथा उदय-

पुर के वीर राजपूतों ने अपने तथा मन्दिरों के प्रति किये गये अपमान का बदला जोधपुर के अजीतसिंह, उदयपुर के अमरसिंह, जयपुर के जयसिंह तथा महान् शूरवीर सेनापति दुर्गादास राठौर के नेतृत्व में विदेशी यवनों द्वारा हड़पी गयी तथाकथित मस्जिदों तथा अपने खोये हुए भू-भाग को पुनः जीतकर लिया। इस्लामी लूटपाट के बावजूद राजस्थान के राजपूत अविजित रहे।

दक्षिण में बहादुरशाह का अपना भाई कामबख्श मुगल सिंहासन का प्रतिद्वन्द्वी बन विद्रोह कर उठा। कामबख्श को दबाकर वह उत्तर की ओर आया ही था कि दश महान् हिन्दू गुरुओं के शिष्यों (सिक्खों) ने, जिन्होंने अब तक हिन्दुओं की सशक्त सेना एकत्र कर ली थी, विदेशी मुस्लिम शासक को चुनौती दी।

चारों ओर से घिरकर मुगल शक्ति ने अपनी सुरक्षा की तरकीब सोची। औरंगजेब की मृत्यु के समय मराठों का उत्तराधिकारी, शंभाजी का पुत्र साहू, मुगलों का बन्दी था। अनन्तर आजम ने साहू तथा उनके परिवार को बन्दी बनाए रखा। मुगल तख्त हथियाने तब आजम उत्तर की ओर जा रहा था, जब शाह आलम काबुल से दक्षिण की ओर आ रहा था उसने साहू को, नर्मदा नदी के उत्तर पर नेमवार के समीप दोराह नामक स्थान पर ७ मई को, इस आशा से मुक्त कर दिया कि वह बादशाह बनने में सफल हो गया तो दक्षिण में वह साहू के नेतृत्व में मराठों पर निर्भर रह सकता है। दूसरी चाल यह भी थी कि इससे मराठों में आन्तरिक कलह उत्पन्न हो जायेगी क्योंकि साहू के बन्दीगृह में होने के समय उनकी चाची ताराबाई अपने पुत्र की स्थानापन्न हो मराठा राज्य पर शासन करती रही थी। मुगलों की योजनाएँ व्यर्थ सिद्ध हुईं तथा मराठे यथाशीघ्र साहू के ध्वज के नीचे एकत्र हो हजारों वर्ष लम्बे हिन्दुस्तान पर राज्य कर रहे विदेशी मुसलमानों को समाप्त करके शक्तिशाली हिन्दू राज्य के रूप में फले-फूले।

१०वें गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु के अनन्तर उत्तर में वीर हिन्दू शिष्य (सिक्ख) जिन्होंने हिन्दू प्रभुसत्ता की पुनः प्राप्ति की शपथ ली थी, परम मराठा सन्त, बन्दा बैरागी का नेतृत्व प्राप्त कर रहे थे।

दक्षिण में ठहरे हुए गुरु गोविन्द ने इस बैरागी के विषय में जाना।

बैरागी के हृदय में देशभक्ति की ज्योति जल रही थी। उन्होंने हिन्दुत्व क लिए अधिक-से-अधिक सेवा करने की ठानी इसलिए गुरु गोविन्द ने उन्हें 'वन्दा' कहा। यह वन्दा ही थे जो एक मुस्लिम द्वारा मार डाले गये गुरु गोविन्द संबंधी दु:खद समाचार उनके शिष्यों को सुनाने उत्तर में आये। गुरु के अन्तिम सन्देश से जाज्वल्यमान बन्दा बैरागी ने विदेशी मुगलों के विरुद्ध खुले युद्ध में हिन्दू शिष्य सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। मुसलमान बन्दा के नाम से काँप जाते थे। वे मराठों की गुरिल्ला नीति के अनुसार मुगलों पर अत्यन्त शीघ्र एवं अकस्मात् धावा बोलते, लूटकर अकूत सामग्री ले जाते तथा शत्रुओं को काट जाते। वे यत्र-तत्र सर्वथा रहते हुए भी आठ वर्षों तक अजेय रहे। निराश हो मूर्खतावश बहादुरशाह ने आदेश दिये कि सभी हिन्दुओं को अनिवार्यतः मूँड दिया जाय और इस कार्य के लिए समूचे राज्य के नाई लगा दिये गये। उन्हें आशा थी कि समूचे हिन्दुस्तान में अकेले बन्दा बैरागी ही दाढ़ी समेत रह जाएँगे अतः शीघ्र ही पकड़ लिये जायेंगे। महीनों तक शाही नाई अपने उस्तरों का प्रयोग करते रहे पर बन्दा न कहीं दिखाई ही पड़े और न पकड़े ही गये। अपनी दाढ़ियों का काटा जाना महान् पाप कर्म समझ अनेक हिन्दू सरदारों ने आत्महत्या कर ली। लाखों म्लेच्छों की दढ़ियों को जो विदेशी फैशन में कटी हुई थीं तथा जो हिन्दुओं की दाढ़ियों से स्पष्टतया अलग थीं, काटे जाने की आज्ञा नहीं थी।

१७१२ में बहादुरशाह मर गया। उस समय उसकी उम्र ७० वर्ष से ऊपर थी तथा उसने चार वर्ष दो महीने राज्य किया था। हिन्दू सिंहासन को हड़पने वाला अपने पूर्वजों की परम्परानुसार हिन्दुओं, उनके मन्दिरों तथा संस्कृति को विनष्ट करने का अकथ प्रयास करता रहा किन्तु मुगल कोष खाली हो चला था तथा हिन्दुओं ने भीषण युद्धों में सगर्व चुनौती देकर उन्हें नपुंसक बना दिया था। बहादुरशाह अपनी दुर्बलता तथा मूर्खता के लिए प्रसिद्ध है। किसी भी मुसलमान को किसी भी वस्तु के लिए मना न करने की उसने सौगन्ध खायी थी। एक बार एक सामान्य कुत्ते वाले ने उससे कृपा करने की प्रार्थना की। उसने शीघ्र ही शाही मुगल की मोहर लगाकर उसे "भगवान् कुत्ता-पाठक" की उपाधि से अलंकृत किया!

बहादुरशाह दिल्ली के समीप ही दफना दिया गया। उसके साथ ही

बाकी मुगल शान शौकत समाप्त हो गयी।

बहादुरशाह के चार पुत्र थे जो सभी लुच्चे और बदमाश थे। उनके नाम थे जहाँदार शाह, अजीमुसशाह, रफीउस शाह तथा खुजिस्त-अख्तर जहाँशाह। उसका दूसरा पुत्र अजीमुस शाह अपने भाइयों की भाँति विलास-प्रिय होने के साथ बड़ा मक्कार तथा षड्यन्त्रकारी था। उसकी हत्यारी प्रवृत्तियों तथा महत्त्वाकांक्षाओं को बहादुरशाह ने बहुत पहले ही जान लिया था।

बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए सदा की भाँति युद्ध प्रारम्भ हो गया, किन्तु सबसे बड़े पुत्र जहाँदार शाह ने किसी प्रकार सिंहासन हथिया लिया। जहाँदारशाह का राजकाज आतंक, यन्त्रणा तथा विलासिता तक ही सीमित था। उसकी आज्ञा से उसके अपने तथा भाइयों के बच्चों को काल कोठरियों में बन्द कर दिया गया। इनमें से कुछ की उम्र तो केवल नौ या दस वर्ष की थी। महावत खाँ तथा एक दर्जन से अधिक अन्य दरबारी जंजीर में बाँध दिये गये, उन्हें सताया गया तथा उनकी सम्पत्ति को हड़प लिया गया।

जहाँदार शाह के समय दिल्ली के लालकिले में मद्यपान, नृत्य तथा अन्य विलासप्रिय बातें होती रहती थीं। जहाँदार शाह द्वारा अपहृत हिन्दू स्त्रियों में एक लाल कुँवर भी थीं। बादशाह की चहेती होने के कारण उसके भाइयों तथा रिश्तेदारों को जागीरें, जवाहरात तथा हाथी भेंट कर दिये गये थे।

उसका छोटा भाई अजीमुस शाह १७१२ ई० में मर गया था। उसका पुत्र फर्रुख़सिमियार, जो बंगाल का गवर्नर था, अपने चाचा जहाँदार शाह को मारकर स्वयं गद्दी पर बैठना चाहता था अतः उसने युद्ध की घोषणा कर दी। दो प्रभावकारी दरबारी, सैयद बन्धु उसके भेदिये थे। जहाँदार शाह पराजित हुआ, बन्दी बना लिया गया तथा फरवरी, १७१३ में मार दिया गया। उसका शासन केवल एक वर्ष ही चला। अन्य मुसलमान शासकों की भाँति उसका अन्त भी बड़ा बुरा हुआ। अनेक वारों के पश्चात् भी उसमें थोड़ा-सा जीवन शेष देखकर एक मुगल ने उसकी कमर के नीचे ऊँची एड़ीदार भारी जूते मारे जब तक कि बेचारा शहंशाह पूरी तरह मर नहीं गया। उसका शरीर अर्थी पर तथा सिर थाल में रखकर

फर्रूखसिमियार के तम्बू के सामने लाया गया। मृतक बादशाह के पास ही उसी प्रकार मारे गये जुल्फिकार खाँ दरबारी का शरीर पड़ा था।

इन दो लाशों के ऊपर चढ़कर फर्रूखसिमियार ने अपने हत्या किये गये चाचा के सिंहासन की राह ली। ठीक यवन परम्परा के अनुसार फर्रूख-सिमियार भी अत्यन्त दुराचारी था। वह भी दुर्बल मस्तिष्क का व्यक्ति था। फर्रूखसिमियार का छः वर्षीय शासन दरबार की मक्कारियों व विलासिताओं से भरा हुआ था। जहाँ पहले भारत के अधिकांश को प्रभावित करने वाले शाही राजा हुए, जहाँदारशाह से आगे के मुगल बादशाह तो केवल हरम के ही मालिक थे जिन्हें लालकिले की दीवारों से बाहर का कोई बोध नहीं था। किले के भीतर भी सम्पूर्ण राजनीतिक शक्ति पर मक्कार सरदारों का नियन्त्रण था। उनमें भी कुछ वर्षों तक दो सैयद भाई, अब्दुल्ला खाँ तथा हुसैनअली खाँ वास्तविक सत्ता हथियाए रहे अतः उन्हें 'किंग मेकर' कहा जाने लगा। अपने चाचा की हत्या कर सिंहासन हथियाने वाला फर्रूखसिमियार उनके हाथों की कठपुतली था। इनमें से अब्दुल्ला को मुख्य मन्त्री तथा हुसैन को प्रधान सेनापति बना दिया। यह फर्रूखसिमियार ही था जिसने बन्दा बैरागी के नेतृत्व में हिन्दू शिष्य सेनाओं (जिन्हें अब सिक्ख कहते हैं) पर धावे बोले। बन्दा पकड़ा गया। अधिकांश हिन्दू नेताओं के समक्ष फर्रूखसिमियार अत्यन्त शक्तिहीन सिद्ध हुआ अतः उसने बैरागी तथा उनके अनेक अनुयायियों की हत्याएँ कर बदला लिया, किन्तु इसका बदला राजस्थान के राजपूतों ने ले लिया। उन मुस्लिम दुर्ग-रक्षकों को मार-मार कर भगाकर। उन्होंने राजस्थान का बहुत-सा भाग मुगलों के पंजों से मुक्त कर लिया।

सैयद बन्धुओं की कठपुतली बने रहने से दुःखी होकर अब फर्रूख-सिमियार ने उनसे छुटकारा पाने की तरकीब सोची। जनरल हुसैन, जिसे दक्षिण में जाने के आदेश दिये गये थे, मराठा सेना की सहायता लेकर मुगलों की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए लौट आया। फर्रूखसिमियार पराजित हुआ तथा फरवरी २८, १७१९ को गद्दी से उतार दिया गया। उसे बन्दी बना लिया गया, अन्धा कर दिया गया तथा ठीक दो मास पश्चात् अप्रैल २८, १७१९ को बहुत बुरी तरह मार दिया गया।

फर्रुखसिमियार के हटाये जाने से लालकिले के बाहर झगड़ा हो गया। मुगल बादशाह का तो अब इतना भी महत्त्व नहीं था कि वह किसी को, झूठ-मूठ ही सही, डरा भी सके। यवन दरबारियों को अपनी-अपनी पड़ी थी तथा बन्दी मुगल कठपुतली एवं वास्तविक शक्ति के बीच घुड़दौड़ मची थी। सरदार लोग अब ऐसे व्यक्ति की खोज करने लगे जिसके प्रति नाम-मात्र की स्वामिभक्ति दिखा सामान्य दरबारियों को दबा सकें। इन मक्का-रिओं के बीच दरबारियों ने हरम में जा किसी सामान्य शाहजादे की खोज की जिससे हरम-रमणियाँ चीख उठीं एवं भयभीत बच्चे चिल्ला उठे। शाही हरम की स्त्रियों को भय था कि उनके साथ बलात्कार किया जाएगा एवं उनके बच्चों की हत्या। अतः उन्होंने अपने निवास-स्थान की तालाबन्दी कर अपने बच्चों को खाटों के नीचे कर दिया क्योंकि पाँच सौ वर्षों के शाही म्लेच्छ कृत्यों ने मुगल सिंहासन को भयानक मृत्युपाश बना डाला था अतः उससे सभी घृणा करते थे।

स्त्रियों के रोने-बिलखने के बावजूद भी उन महिलाओं के कक्ष तोड़ दिये गये। शाहजादा बीदर दिल का नाम पुकारा गया। वह औरंगजेब का पौत्र, बीदर बख्त का पुत्र था। उसकी माँ ने प्रार्थना की कि उसके बालक को शाही मुगल सिंहासन की घृणा से बचाया जाय। लुटेरे सरदार अस-मंजस में पड़ गये। अन्त में किसी ने अल्पवयस्क रफीउद दाराजात पर झपट्टा मारा और उसे साधारण कपड़ों में ही हड़पे हुए हिन्दू मयूर सिंहा-सन पर बैठा दिया। तुरही बजा एवं ढोल पीट उसे विश्व का बादशाह घोषित कर दिया गया। ५०० वर्षों से अधिक हत्यारी यवन शक्ति के स्राव के रूप में बादशाह के साथ जीभ तोड़ने वाली अनेक उपाधियाँ जोड़ी जाती थीं, पर अब वे सभी उपाधियाँ व्यंग्यपूर्ण खोखली एवं अशुभ लगने लगीं। रफीउद दाराजात, रफी उस शाह का पुत्र एवं बहादुरशाह का पौत्र था।–

दाराजात का शासन बहुत कम समय चला किन्तु इसमें अभूतपूर्व घटना हुई जिसका बीज हजारों वर्षों की यवन साम्प्रदायिकता ने एक वीर हिन्दू के मस्तिष्क में बोया।

वीर एवं सुयोग्य हिन्दू जो हिन्दुओं की नवजागृति का प्रतीक था, जोधपुर का शासक अजीतसिंह था। अन्य अनेक हिन्दू शासकों के समान

उसकी कन्या को भी मुस्लिम हरम में ले जाकर अपमानित किया गया। वह फर्रुखसियार के हरम में बन्दिनी थी। अजीतसिंह को यह सोच-सोच कर बड़ा दुःख था कि मुगल हरम पर्दे के पीछे हिन्दू कुमारियों का सेना-नायकों तथा सामान्य सैनिकों द्वारा अहर्निश शीलभंग किया जाता है। वह मूल्यवान हीरों के आभूषणों तथा सम्पत्ति के साथ अपनी प्रिय पुत्री को हरम से निकाल लाया। इतना ही नहीं, उसने उसका इस्लामी लबादा उतार फेंका, उसके यवन चाकरों को अलग कर दिया, उसे गर्वपूर्वक, पुनर्जन्म धारण करने वाली हिन्दू घोषित किया तथा सुरक्षापूर्वक जोधपुर के पैतृक घर ले आया।

अजीतसिंह ने प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने बलपूर्वक धर्म परिवर्तित तथा हरम में डाली गयी स्त्रियों के लिए नई आशा उत्पन्न कर दी कि वे पुनः हिन्दू स्वातंत्र्य-समीर में साँस लें, उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि वे कितने समय गला घोंटू बुर्के में ह में रहीं। कहा जाता है कि जिस सम्पत्ति को वे अपनी पुत्री के साथ लाये थे वह एक करोड़ रुपये की थी। इससे पाठक को पता लगेगा कि हिन्दुओं की कन्याएँ ही नहीं, सम्पत्ति भी छीनी गयी। कम से कम एक हिन्दू ने दिखा दिया कि हिन्दुओं को अपनी पुत्रियों, बहिनों, माताओं, पत्नियों के सम्मान को बचाने के लिए कट्टरता छोड़ देनी चाहिए। अपहृत हिन्दू स्त्रियाँ अपने घरों तथा धर्म को पुनः प्राप्त कर सकती हैं। जिसे बलपूर्वक विधर्मी बना दिया गया है उसे क्रूरताओं के समक्ष झुकना नहीं चाहिए। संसार के करोड़ों व्यक्तियों को जो ईसाई अथवा मुसलमान हो गये, इतिहास से यह सीखना चाहिए। अन्याय, नियन्त्रण तथा क्रूरता कभी सहन नहीं किए जाने चाहिए।

सात महीनों की उस छोटी अवधि में जो फर्रुखसियार के गद्दी से उतारे जाने (फरवरी २८, १७१९) तथा मुहम्मदशाह के गद्दी पर बैठने (सितम्बर २४, १७१९) के बीच गुजरे उनमें बिचारे तीन असहाय शाह-जादे औपचारिक रूप से सिंहासन पर बिठाए गये और अनौपचारिक रूप से वहाँ से नीचे खींचकर सिंहासन के नीचे वाले कमरे की कोठरी में डाल दिये गये, अन्धे कर दिये गये तथा मार दिये गये। वे बादशाह इतने महत्त्वहीन थे कि अच्छी इतिहास की किताबों में तो उनके नाम भी नहीं

मिलते।

जब सैयद बन्धुओं ने तीसरे कठपुतली शाहजादे को उतारना चाहा तो अन्य की खोज की। ये नई कठपुतली शाहनशाह का पुत्र, औरंगजेब का पौत्र, मुहम्मद रोशन अख्तर था। उस समय वह केवल अठारह वर्ष का था। जैसा कि मुसलमान इतिहासकारों की पैर चाटने की तथा झूठी चापलूसी करने की आदत है, खफी खाँ लिखता है कि नये बादशाह की माँ "एक सम्भ्रान्त महिला, राज्य के कार्यों से सुपरिचित एवं अत्यन्त मेधावी तथा चतुर स्त्री थी।"

नये बादशाह की लम्बी-चौड़ी उपाधि थी अबुल मुजफ्फर नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह बादशाह-ए-गाजी शहंशाह-ए-हिन्दुस्तान। तीन बीच के शासकों के छोटे-छोटे शासनों पर ध्यान न दे मुस्लिम लेखों में कहा गया है कि मुहम्मदशाह का शासन फर्रुखसियार के गद्दी से उतरते ही प्रारम्भ हो जाता है।

नया बादशाह तो सैयद बन्धुओं का सचमुच ही बन्दी था। सैयद बन्धुओं द्वारा नियुक्त किये गये चुने हुए सैनिक उसे घेरे रहते थे, उसे इधर से उधर ले जाते थे, उसके हर कामों में निगरानी रखते थे। शाही मुगलों की परम्परा के अनुरूप ही मुहम्मदशाह का जीवन भी अत्यन्त भोगमय था। उसका शासन कई कारणों से याद किया जाता है। वह अन्तिम मुगल शासक था जो हिन्दुओं से हड़पे हुए मयूर सिंहासन पर बैठा क्योंकि उसके ही राज्य काल में फारस के लुटेरे नादिरशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई की, हजारों लोगों का वध किया तथा तीन करोड़ रुपये लूटकर, जिनमें प्राचीन हिन्दू हीरा कोहनूर तथा सिंहासन भी था, ले गया। वह मयूर सिंहासन जो लड़ने वाले तथा मक्कारियाँ करने वाले शाही दरबारियों ने धीरे-धीरे चुरा लिया, अब नहीं है। इसके नाम का ही तख्त ताउस, जिस पर आज फारस का राजा बैठता है, का नाम आर्मीनिया की वेश्या ताउस के नाम पर है जिसे एक फारस का राजा प्रेम करता था तथा जिसके साथ कुकृत्य करने के लिए बादशाह ने उस शाही कोष के निर्माण की आज्ञा दी। आर्मीनिया की वेश्या का ताउस नाम यूं ही मयूर अर्थ रखता है इससे अनेक इतिहासकारों को यह भ्रम हो गया है कि चुराया गया हिन्दू मयूर सिंहासन आज भी फारस में है।

मुगल बादशाह द्वारा हड़पे गये सिंहासन का समाप्त हो जाना किसी जमाने के विशाल मुगल साम्राज्य के धीरे-धीरे घटने सम्बन्धी नाटक का चरम बिन्दु है। मुहम्मदशाह के राज्य-काल में पुनर्जागरित हिन्दुत्व ने विकट मराठों के नेतृत्व में बड़ी सफलतापूर्वक गुजरात, मालवा के बरार प्रदेशों को मुसलमानों की पकड़ से छुड़ा लिया। मराठा सेना स्वयं दिल्ली में ही छा गयी। कायर मुहम्मदशाह ने उनकी आज्ञा मानने की सहमति दे दी। यहाँ मराठों ने ऐतिहासिक तथा राजनीतिक भूल की। उन्हें चाहिए था कि वे सरेआम मुहम्मदशाह पर दोष लगाकर तथा उसे अपने और उसके पूर्वजों के अनेक दोषों के लिए फाँसी पर लटकाकर भारत की बड़ी पुरानी दासता समाप्त कर देते। उनसे योग्य तो विदेशी अंग्रेज थे जिन्होंने बाद में बहादुरशाह जफर को सिंहासन से उतारकर देश निकाला दे मुगल शासन को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

दक्षिण में भी मराठों ने वही मूर्खताभरी भूल की जो अनेक बार युद्ध स्थल में उस छोटे मुगल निजाम को हराकर भी उसे सिंहासन से च्युत नहीं किया। दक्षिण में मुगल शासक निजाम ने स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। उत्तर में नादिर शाह के हमले का लाभ उठाकर सिक्खों ने पंजाब म्लेच्छ शासन से मुक्त कर लिया। ऐसे ही बंगाल के शासक मुर्शिद कुली खाँ ने अपने को शासक घोषित किया। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में टूटते हुए मुगल साम्राज्य के टुकड़े गिर रहे थे।

मुहम्मद शाह के शासन की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना भयानक सैयद बन्धुओं का पतन था। मुहम्मद शाह को सिंहासन पर आसीन करने के तुरन्त ही पश्चात् पूर्व तीन शाहजादों के समान उससे भी छुटकारा पाने की सोचने लगे। पुनः वे मुगल हरम में किसी जीव को खोजने लगे। कुछ-कुछ काल पश्चात् जब-जब मक्कार दरबारी किसी शक्तिशाली कठपुतली बादशाह की खोज में हरम में जाते स्त्रियाँ चिल्ला-चिल्लाकर अपने बच्चों को छिपाकर भाग जातीं। वही दृश्य अब दिखाई देता जब सैयदों ने मुहम्मद शाह के किसी प्रतिद्वन्द्वी की तलाश की। स्त्रियाँ चिल्लातीं, सिसकियाँ भरतीं तथा क्रूर एवं हृदयहीन सामन्तों से प्रार्थना करतीं कि वे उन्हें उनके रहम पर छोड़ दें। ऐसा भय छा जाता जैसे कोई बिल्ली कुक्कुट-गृह में घुस गयी हो। स्त्रियाँ अपने द्वार बन्द कर लेती थीं सैनिक

तोड़ देते, फिर भी स्त्रियाँ अपने बच्चों को देने से इन्कार कर देतीं।

यह सूचना पाकर कि प्रतिद्वन्द्वी बादशाह की खोज हो रही है, अक्तूबर १७२० में मोहम्मद शाह ने सैयद बन्धुओं में से एक हुसेन अली खाँ की हत्या करा दी। बचा हुआ अब्दुल्ला अब बड़ा निराश हो गया। अनेक शाहजादों के मना करने पर अन्त में रफी उस शाह के तीसरे पुत्र, मुहम्मद इब्राहीम को उसने सिंहासन का दावेदार होने के लिए मना लिया।

अक्तूबर १५, १७२० को तेईस वर्षीय मुहम्मद इब्राहीम, अबुल फतह जहीरुद्दीन मुहम्मद इब्राहीम की उपाधि ग्रहण कर सुलतान घोषित किया गया। यह एक शासन के भीतर दूसरा शासन था। नष्ट-प्रायः मुगल साम्राज्य ने अब दूसरा दुर्बल सिर उठाया था।

नवम्बर १३-१४, १७२० को प्रबंधक इब्राहीम तथा उसके सहायक अबदुल्ला बन्दी बना लिये गये। दो वर्ष पश्चात् अक्तूबर ११, १७२२ को अब्दुल्ला को विष देकर मार डाला गया। मुहम्मदशाह अपने गिरते मुगल साम्राज्य का यद्यपि असहाय दर्शक था फिर भी उन दो सैयद दानवों को समाप्त करने में सफल हुआ जिन्होंने लगभग एक दशक से मुगल दरबार तथा हरम में आतंक मचा रखा था। मुगल राजनीति के भँवर में फँसे हुए इने-गिने लोग ही थे जो स्वाभाविक मृत्यु से मरे। चाहे बादशाह हो चाहे हिजड़ा, दरबारी हो चाहे वेश्या सब हत्याओं तथा पीड़ाओं पर जीवित रहे और इन्हीं द्वारा स्वयं मारे गये।

नादिरशाह का भारत पर १८वीं शती में किया गया आक्रमण मुहम्मद बिन-कासिम के आठवीं शती में किये गये आक्रमण से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं था। स्पष्ट है कि जहाँ शेष विश्व क्रमशः बर्बरता से बैंकिंग, वाणिज्य, व्यापार, न्याय तथा वर्तमान प्रशासन की ओर प्रगति कर गया था, म्लेच्छ राजे, सैनिक, सीरदार तथा शहजाद अब भी हत्याओं, वधों, आतंक, संताप, बलात्कार एवं लूटपाट में आनन्द लेते थे। १९४७ में देश-विभाजन के समय भी उन्होंने अपने इसी इतिहास की आवृत्ति की।

नादिरशाह उर्फ नादिर कुली खाँ जन्म के समय किसी कुली से अच्छा नहीं था। इसका जन्म १६८७ ई० में खुरासा में हुआ। इसका पिता गड़रिया था जो काटी हुई बकरियों की ऊन से कोट तथा टोपियाँ बनाता था। युवक नादिर शाह ने इस प्रकार भेड़ काटने के स्थान पर नरसंहार का

प्रशिक्षण लिया। हत्याओं एवं विलासिता से भरे होने के कारण उसे एक बार कोठरे में डाल दिया गया। १७ वर्ष की किशोर आयु में समाज के लिए उसे भय का कारण समझ उजबेकों ने एक काल कोठरी में डाल दिया। जेल से किसी प्रकार पलायन कर जाने के पश्चात् उसने अपने पिता की सभी बकरियाँ बेचकर लुटेरों, गुण्डों का एक गिरोह बना लिया तथा दिन-दहाड़े डाके डालने को अपना पेशा बना लिया।

इसी समय अफगानों ने फारस पर अधिकार कर लिया था। बाद में नादिरशाह ने अपने साथ छह हजार लुटेरे एकत्र कर लिये। नादिरशाह की दुष्टता उसके पूर्वजों की भाँति ही उसकी निजी दुष्टता थी। उसने हीरत को हथिया लिया। नादिरशाह के आदेश से उसका दुर्ग-रक्षक चाचा मार दिया गया।

इस समय तक नादिरशाह गुण्डों के बहुत बड़े गिरोह का सेनापति हो गया था। अफगानों द्वारा सिंहासन-च्युत ईरान के शासक शाह तहमास्य द्वितीय ने नादिरशाह की सहायता माँगी ताकि वह सिंहासन को पुनः प्राप्त कर सके। नादिरशाह ने 'किंग मेकर' का यह कार्य शीघ्र स्वीकार कर लिया क्योंकि स्वयं राजा बनने की दिशा में यह प्रथम पग था। उसने अफगान अशरफ को १७३० में हराया तथा तहमास्य द्वितीय को ईरान के सिंहासन पर आसीन कर दिया। आगामी पाँच वर्षों तक उसने ईरानी राजा की ओर से अनेक लड़ाइयों में भाग लिया तथा उसके साम्राज्य की सीमाएँ प्राचीन काल जैसी फैला दीं। अब ईरान का शासक नादिरशाह की शक्ति से भयभीय होने लगा। अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उसने तुर्कों से सन्धि कर ली। राजा की इस चाल से नाराज हो, नादिरशाह ने उसे गद्दी से उतार दिया (१७३२ में) तथा ईरान के शाह के अल्पवयस्क पुत्र अब्बास को सिंहासन पर बिठा स्वयं उसका रीजेंट बन गया।

युवक अब्बास की हत्या नादिरशाह के आदेशानुसार ही कर दी गयी। नादिरशाह ने अब अपने ही पिछलग्गुओं द्वारा स्वयं को राजा बनाने की योजना पर विचार किया। निदान १७३६ में वह ईरान का राजा घोषित हुआ। स्वयं धर्मान्ध सुन्नी होने के कारण उसने अधिकांश शिया ईरानियों को अपने को सुन्नी घोषित करने के लिए बाध्य किया। नादिरशाह ने शियाओं को सुन्नी बनाने के लिए वे ही आतंक फैलाये जिन्हें अमुसलमानों

को मुसलमान बनाने के लिए अपनाया जाता था।

१७२७ ई० में नादिरशाह ने अफगानिस्तान पर चढ़ाई कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। पहले जब अफगानों ने ईरान पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया, वे भी लूटमार, बलात्कार एवं वध में डूब गये। अब नादिरशाह की बारी थी कि वह अफगानों को उन्हीं की बारूद से उड़ा दे। उसने उनकी क्रूरताओं का बदला और भी अधिक क्रूरताओं से लिया। संसार में अब मुसलमानों में आपस में ही क्रूरताएँ तथा बदलों एवं प्रति-बदलों का नाच होने लगा।

अब नादिरशाह की सीमाएँ हिन्दुस्तान के मुगल साम्राज्य का स्पर्श करने लगीं। उसके सपनों में अब पूर्ववर्ती मुहम्मद बिन कासिम, गजनी एवं गौरी आ आकर उसे भारत पर चढ़ाई करने, हिन्दुओं की सम्पत्ति लूटने तथा हिन्दुओं के हत्यारे के रूप में इस्लामी ख्याति प्राप्त करने को प्रेरित करने लगे। इन महान् उपलब्धियों को प्राप्त करने की नादिरशाह ने सोची। हिन्दुओं के हत्यारे के रूप में वह उन तीन लुटेरे मोहम्मदों से निम्नस्थान क्यों स्वीकारे जब उसके पास १,००० वर्षीय जानकारी तथा हिन्दुओं की हत्या कर उनकी सम्पत्ति-नारियों को लूटने का रास्ता मालूम था।

अब वह किसी बहाने की तलाश में था। उसने विलासी मोहम्मद को बड़ा असभ्यतापूर्ण पत्र लिखा जिसमें लिखा कि वह मुगल राज्य में शरण पाये हुए अफगानों को जल्दी ही लौटा दे। इस व्यर्थ के पत्राचार पर मोहम्मद ने चुप रहना उचित समझा। इससे नादिर को अपना गिरोह अफगान सीमा पार भेजने का अवसर मिल गया। १७३९ में बड़ा भयानक युद्ध हुआ जिसमें मुगल सेना परास्त हो गयी। मुगल बादशाह मोहम्मद शाह को बाध्य किया गया कि वह स्वयं नादिर के डेरे में अपमानपूर्ण विनती करे।

आक्रमणकारी नादिरशाह ने शहंशाह मुहम्मद शाह को ५८ दिन बन्दी बनाये रखा। इस बीच नादिरशाह के बर्बर इस्लामी गुण्डे दिल्ली तथा आसपास के गाँवों में भेड़ियों तथा टिड्डियों की तरह छा गये। दो मास तक दिल्ली की लूट होती रही। इस नरसंहार में दिल्ली की सड़कों-गलियों में २,५०,००० वध की हुई लाशें पड़ी सड़ती रहीं। इस कत्ले-आम

के समय नादिरशाह हिन्दुओं के मन्दिरों की चोटियों पर चढ़ अपने असभ्य गिरोह को दिल्ली के पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों के वध करने की आज्ञा देता। इसी कत्ल की बात है कि चाँदनी चौक में कोतवाली के समीप एक विशाल मन्दिर का भूभाग काटकर तथाकथित सुनहरी मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया। उन अनेक स्त्रियों में जिन्हें लुटेरों ने अपहृत किया एक मुगल शाहजादी थी जिसकी नादिरशाह ने बलपूर्वक अपने पुत्र से शादी कर दी।

सामान्य गड़रिये से ईरान, अफगानिस्तान तथा भारत के कुछ भाग के विजेता के रूप में अपनी इस उन्नति से नादिरशाह इतना गर्वीला एवं क्रूर हो गया कि उसके अपने संगी-साथी उसे भयानक चीता एवं लकड़-बग्घा समझने लगे। नादिरशाह का आतंक, क्रूरता एवं सन्ताप उसके सगे से सगे व्यक्ति को भी नहीं बख्शता था। नादिरशाह ने १७४३ में अपने ही पुत्र को अन्धा कर दिया। शिया लोग अपने प्राण बचाने लिए इधर-उधर भागते फिरे। फलत: अन्य दुष्ट मुस्लिम शासकों की भाँति नादिरशाह अपने ही भतीजे अली कुली खाँ के हाथों १७४७ में मारा गया। यह चांडाल नादिरशाह मेघशाह में दफन पड़ा है। इसके उत्तराधिकारी अली कुली ने नादिरशाह के तेरह पुत्रों-पौत्रों को क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया। केवल एक पौत्र जीवित बच सका। उसने आस्ट्रिया में शरण ले वहाँ के शासकों की सेवा कर बैरन वाँ सोमेलीन(Baron von Somelin) नाम से प्राण त्यागे।

भारत त्यागने पर नादिरशाह ने मोहम्मदशाह को निर्धन एवं घायल मुगल साम्राज्य दिया जो अब तक के आतंकपूर्ण राज्य की छायामात्र था।

दिल्ली पर मराठों का राज्य हो गया, मुहम्मदशाह का शासन मुगल आधिपत्य के वास्तविक अन्त का द्योतक है। ३० वर्ष राज्य करने के पश्चात् मुहम्मदशाह १७४८ में मरा। उसका एक ही पुत्र था—अहमद शाह मुजादुद्दीन अहमदशाहगाजी नाम से २२ वर्ष की उम्र में वह सिंहासन पर बैठा। ६ वर्ष ३ मास ६ दिन तक नाममात्र का बादशाह रहा। उसी के काल में अहमदशाह के भयानक मुसलमानी धावे हुए। हजारों विदेशी मुसलमान—पठान तथा दिल्ली के मुगल, इस्लामी दरबार के चारों ओर छाये हुए थे—वे जो भारतीय भूमि पर मोटे ताजे हुए थे अब भी अमर

बेल बने हुए थे। उभरती हुई हिन्दू शक्ति से मुगल शक्ति को क्षीण होते देख उन्होंने हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए नादिरशाह के ही एक गुण्डे अहमदशाह अब्दाली को बुलाया। नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात् अहमदशाह काबुल कंधार का शासक हो गया था।

अहमदशाह ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किया। प्रथम प्रयास में मानपुर युद्ध में मार्च ११, १७४८ को बुरी तरह पराजित हुआ। बाद में उसने भारत पर दो बार आक्रमण किया; १७५०-५१ में तथा १७५१-५२ में तथा पुनः १७५७ में। अन्तिम आक्रमण में वह दिल्ली एवं मथुरा पर चढ़ बैठा जहाँ उसने अनेक हत्याएँ, बलात्कार, मन्दिरों का विध्वंस, लूट मार कर बलपूर्वक हजारों हिन्दुओं को इस्लाम में परिवर्तित किया। अहमद शाह वस्तुतः बहुत बड़ी मुसीबत था, महामारी था। जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तान में उसने आक्रमण किया, अपने पीछे सन्ताप, विनाश एवं लूटपाट के चिह्न छोड़ गया। हजार साल पुरानी इस्लामी कहानी पुनः आवृत हुई। प्रथम मुस्लिम लुटेरे के समान ही, अन्तिम भी, १,००० वर्षों के बाद आकर, विश्वास करता था कि इस्लामी स्वर्ग की प्राप्ति का मार्ग गैर-मुस्लिमों की हत्याओं के रक्त की नदियों में से है।

अब्दाली के आक्रमण के समय (१७५०-५२ में) मुगल बादशाह अहमदशाह का मुख्य मंत्री सफदरजंग था। मक्कारी करने वाले इस ईरानी के विश्वासघात एवं विलासिता के कारण उसे शीघ्र ही दरबार से बाहर कर दिया गया। उसे दूर अवध का शासक बनाकर भेज दिया गया। उस समय बनारस उसके शासन-क्षेत्र में था। क्योंकि मुसलमान समय-समय पर हत्याएँ, मन्दिरों को भ्रष्ट, लूट एवं धर्म-परिवर्तन करते रहते थे; अतः मराठों ने इस पुनीत नगर को उनसे मुक्त कराना चाहा। सफदरजंग जानता था कि उसकी सेनाएँ मराठों की टक्कर नहीं झेल सकतीं; अतः उसने वाराणसी की हिन्दू जनसंख्या को निस्तार पर रख लिया और मराठों को कहला भेजा कि यदि उन्होंने वाराणसी पर आक्रमण किया तो सभी ब्राह्मणों को एकत्रकर (क्योंकि सभी निवासियों को एकत्र कर लेना असंभव था) मार डालेगा। मूर्खतावश वाराणसी के कुछ भयभीत निवासियों ने मराठों से प्रार्थना की कि वे वाराणसी पर अचानक आक्रमण न करें। निरे धोखे से सफदरजंग पवित्र वाराणसी को अपने हत्यारे पंजों में जकड़े रहा।

यह दुष्ट सफदरजंग अक्तूबर ५, १७५४ को बड़ी बुरी तरह मरा। वह नयी दिल्ली के हथियाये गये विशाल हिन्दू महल में दफन पड़ा है, जिसे अनजान दर्शक उसकी कब्र पर निर्मित मकबरा मान लेता है। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि यह १३५३ में विद्यमान था और फिर भी मूर्खतावश विश्वास कर लिया जाता है कि यह १३५४ में, इस दैत्य के लिए, मकबरे के रूप में बना। हिन्दुओं की यह लूटी हुई सम्पत्ति दिल्ली में सफदरजंग की सम्पदा थी। मरने पर उसे उसके भीतर दफना दिया गया। त्रिभुजाकार टीले के रूप में उसके गड्ढे को भरने तथा पाटने के लिए पत्थर तक कुछ मील दूर अवस्थित एक हिन्दू महल से चुरा लिया गया, जिसे आजकल अब्दुर रहीम खानखान का मकबरा कहा जाता है।

बादशाह होते हुए भी अहमदशाह की रुचि शराब, स्त्री तथा मद्यपान एवं भोग तक ही परिसीमित थी। उसे विलासिता से इतना लगाव था कि उसने चार वर्ग मील क्षेत्र में अपहृत सुन्दरियों को रख छोड़ा था, जिसमें स्वयं अहमदशाह के अतिरिक्त (जो कुछ पुंसत्व उसमें शेष था) अन्य किसी को भी प्रवेश की आज्ञा नहीं थी और जहाँ वह सांड की भाँति घूमता था। महीनों तक बिना बाह्य संसार को देखे वह जनाने बुर्के में खोया रहता।

दरबार के झगड़ों तथा दलबन्दियों ने मुख्यमन्त्री सफदरजंग को बाहर कर दिया। स्वयं महल में अहमदशाह की माँ, ऊधमबाई नामक हिन्दू अपहृत महिला तथा उसके दूसरे यार जवीद खाँ उस अड्डे पर शासन करते थे। एक महत्त्वाकांक्षी दरबारी इमादुल मुल्क ने सत्ता पाने की ललक में अहमदशाह को सिंहासन से अलग कर दिया तथा १७५४ में जहांदार-शाह के पुत्र आलमगीर द्वितीय को गद्दी पर बिठा दिया। नये बादशाह के आदेशानुसार अहमदशाह को अन्धा कर दिया गया। अन्धे अहमदशाह ने बड़ी कष्टपूर्ण अवस्था में एक गिलास जल के लिए पुकारा। बड़े व्यंग्यपूर्ण असम्मान के साथ उसके काराध्यक्ष सैफुल्ला ने एक गन्दी धातु का बर्तन उठाया तथा उसमें गंदला पानी भरकर उस असहाय भूतपूर्व बादशाह को दे दिया। आलमगीर द्वितीय अपने पूर्वज से किसी भी दशा में न्यून कठपुतली नहीं था। वास्तविक शक्ति तो उसके मुख्यमन्त्री गाजीउद्दीन में थी, जो स्वयं मराठों की कठपुतली था। जिनका दिल्ली पर पूर्ण नियन्त्रण था।

१७५७ में अब्दाली ने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। वह

दिल्ली और मथुरा तक घुस आया और अकूत सम्पत्ति ले गया। पंजाब को संलग्न कर लिया गया तथा नजीब खाँ रोहिला को इसका शासक बना दिया गया। मराठों ने पंजाब में अब्दाली की सेना पर प्रति-आक्रमण किया और उसके पुत्र को रिरियाती अवस्था में सिन्धु के पार उसके पिता के पास भेज दिया। बदले में १७५९ में अब्दाली ने फिर भारत पर आक्रमण किया। इस गड़बड़ी में मुगल सिंहासन को मराठे, अब्दाली तथा अन्य सामन्त लूट रहे थे तभी १७५९ में ही स्वयं आलमगीर द्वितीय को मार डाला गया। इस हत्या की योजना उसके मुख्यमन्त्री गाजीउद्दीन ने ही स्वयं बनायी थी।

कामबख्श का पुत्र, मुहीउससुन्नत का पुत्र, मुहीउल मिल्लत शाहजहाँ द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठा पर उसे किसी ने मान्यता नहीं दी। जब-जब अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया तभी किंग मेकर किंग गाजीउद्दीन तथा उसका शाही साथी भाप की तरह उड़ गये। सितम्बर २३, १७६० को सदाशिव राउ भाऊ सेनापति के अधीन मराठों ने दिल्ली को घेर लिया और बाद में इसपर तूफान की तरह टूट पड़े। अक्तूबर ९, १७६० को उन्होंने शाहजहाँ को गद्दी से उतार दिया तथा आलमगीर द्वितीय के पुत्र, मिर्जाजवाँबख्श को बादशाह घोषित किया तथा अकतूल आलमगीर द्वितीय का पुत्र अलीगौहर, हत्यारे की तलवार के शिकार बन जाने के भय से दिल्ली के लाल किले से निकल सुदूर बंगाल की ओर भाग गया। वहाँ उसने अंग्रेजों की शरण ली। यही वह प्रारम्भ था, जबकि गर्वीले मुगल ने रक्षार्थ अंग्रेजों के यहाँ शरण ली। वहाँ उसने शाहआलम द्वितीय की उपाधि ग्रहण कर ली और यद्यपि १७६१ से १७७२ तक दिल्ली रुहेल्लों द्वारा नियन्त्रित थी, उसने अपने को बादशाह घोषित कर दिया।

अवध की नवाबी सफदरजंग के पुत्र शुजाउद्दौला को मिली। वह तथा मराठे जो उस समय भारत में सबसे अधिक शक्तिशाली थे, मुगलों के नाम-मात्र के बादशाह को अपने नियन्त्रण में करना चाहते थे। निस्सहाय बादशाह ने स्पष्ट कर दिया था कि उसे दिल्ली के लालकिले के मुगल सिंहासन पर जो कोई बिठा देगा वह उसी की चापलूसी करने लगेगा, पर वास्तव में शाहआलम इलाहाबाद के अंग्रेज सेनापति स्मिथ का बंदी था। उन्हीं के आदेशानुसार १७६५ ई० में छब्बीस लाख रुपये वार्षिक पेंशन के

बदले उसने बंगाल-बिहार तथा उड़ीसा की माल गुजारी वसूल करने के अधिकार दे दिये। इस प्रकार मुगल बादशाह शासक न रहकर मात्र एक पेंशन पाने वाला रह गया।

इसी बीच जनवरी ६, १७७२ को मराठों ने सफलतापूर्वक दिल्ली लाकर उसे शहंशाह बना दिया। नजीब खाँ रुहिल्ला, जो बड़ा भयानक विदेशी मुस्लिम सेनापति तथा देशभक्त मराठों का शत्रु था, मर चुका था। उसका पुत्र जबीत खाँ नये मुसलमान बादशाह का मुसलमान मुख्यमंत्री बना। मंत्री के पुत्र गुलाम कादिर ने उस नाममात्र के पेंशन पाने वाले बादशाह शाहआलम द्वितीय को वह ही मजा चखाया, जिसका व्यवहार उसके अनेक पूर्वज हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के साथ करते रहे थे।

गुलामकादिर भयानक डाकू बन गया। उसने हिन्दुओं से लूटी हुई मुगल महलों में रखी हुई सम्पत्ति को लूटना प्रारम्भ किया। उसकी अधिक-से-अधिक सम्पत्ति एकत्र करने की आकांक्षा कभी संतुष्ट होने वाली न थी। रात-दिन वह दूरस्थ शाही महलों को लूटता और वहाँ से सभी मूल्यवान् वस्तुएँ ले आता। इतना ही नहीं, वह मुगलों की स्त्रियों तथा बच्चों के मूल्यवान् वस्त्रों को उतारकर कोड़े भी लगाता ताकि वह छिपी हुई सम्पत्ति का भी भेद बता दें।

१७८८ में शाहआलम की स्त्रियों और बच्चों को बाहर निकालकर निर्दयतापूर्वक लतियाया तथा पीटा गया और शाहआलम को बड़ी बर्बरता के साथ अंधा कर दिया गया। गुलामकादिर द्वारा की गयी ये भयानक क्रूरताएँ फकीर खैक्कूद्दीन मुहम्मद ने अपने इतिहास में विस्तारपूर्वक लिखी हैं। शाही हरम की स्त्रियों का बुरी तरह शील भंग किया गया। इस भयानक नाटक का चरम बिन्दु तब आया जब एक चित्रकार को बहुत ही शीघ्र बुलवाकर स्थल पर ही चित्र बनाने को कहा गया। जब गुलाम कादिर हाथ में कटार लिये हुए बादशाह शाहआलम की छाती पर बैठा था तथा पके हुए तरबूज के टुकड़ों की तरह उसकी आँखें निकाल रहा था, "आँखों से रक्त गिरते हुए अन्धे बादशाह को जो कुछ पीने के लिए पानी मिला वह मात्र वही था, जो उसकी आँखों से गिरा।" (पृष्ठ २४६, खण्ड VIII, इलियट एण्ड डाउसन)।

मुगल भवन में गुलामकादिर के भय तथा विलासिता के जीवन के

विषय में इतिहासकार कहता है, "बेदरबख्त की एक महिला वहाँ जो कुछ हो रहा था उसे देखकर ही भय के मारे मर गयी तथा महिलाओं का शील-हरण करने वाले अफगान अब उन्हें ले जाने की सोच रहे थे।" दया करने तथा शाही महिलाओं को लज्जित न करने के लिए प्रार्थना किये जाने पर गुलामकादिर ने उत्तर दिया कि बादशाह के नौकरों ने उसके पिता के कमरों को लूटा है तथा उसकी स्त्री के साथ इससे भी अधिक दुर्व्यवहार किया है अब यह दर्शनीय दृश्य होगा क्योंकि मेरे लोग राजा की कन्याओं को पकड़कर घर ले जायेंगे तथा बिना शादी के उनके शरीरों पर अधिकार कर लेंगे। "एक हजार वर्षों के अनवरत बलात्कारों तथा लूट-पाटों का यह उचित ही परिणाम था जो गुलामकादिर ने शाहआलम के मुँह पर ही कहा।"

शाही मुगल घराने के बहुत-से लड़के-लड़कियाँ गुलामकादिर की इस धूर्त-भरी प्रचण्डाग्नि में भूख, भय तथा धक्के के कारण मर गये। जहाँ थे उन्हें वहीं दफना दिया गया। इससे एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि भारत में तथाकथित मध्यकालीन मुस्लिम मकबरे हिन्दू भवन ही हैं।

इस गुलामकादिर नामक मुस्लिम दैत्य को भी उचित फल मिल गया जब वीर मराठों द्वारा कीचड़ तथा दलदल में आधी रात को कुत्ते के समान पीछाकर मुगल हत्यारों को दे दिया गया। मुगलों ने उसकी टाँग को जंजीर से बाँध दिया और बैल के जुए के समान उसकी गर्दन पर एक हड्डी रख दी। सर्वप्रथम उसके कान काटे गये और उसकी गर्दन के चारों ओर लटका दिए गये, उसके चेहरे को काला कर दिया गया तथा नगर और सैनिक शिविरों में चारों ओर घुमाया गया। दूसरे दिन उसकी नाक और ऊपरी ओंठ काटे गये और फिर घुमाया गया। तीसरे दिन उसकी आँखें निकाल ली गयीं तथा जनता को उसकी भयानक शक्ल फिर दिखायी गयी। इसके पश्चात् पहले उसके हाथ काटे गये फिर उसके पैर और सबसे अन्त में उसका सिर। गर्दन को नीचे की ओर करके उसकी लाश एक वृक्ष से लटका दी गयी। एक काला कुत्ता, जिसकी आँखों के चारों ओर सफेद निशान थे, आया तथा रक्त चाटता रहा। तीसरे दिन वह लाश और कुत्ता दोनों ही गायब थे।

मुगल शहंशाह शाही शानोशौकत को लिये हुए जनता के मंच से हट-

कर बन्दी तथा पेंशन याफ्ता के रूप में इतिहास के भीतरी कक्ष में चले गये और इस प्रकार हिन्दुस्तान में सहस्रवर्षीय भयप्रद मुस्लिम शासन समाप्त हुआ। अन्तिम दृश्य में वह बादशाह जो अपने आतंक से दूसरों को डराता था, सोने और रेशम के वस्त्रों में सुसज्जित होकर बैठता था, अब एक निस्सहाय फटे-पुराने कपड़े पहने हुए भिखारी बन गया जो पानी तथा रोटी की भीख माँगता था और प्रार्थना करता था कि उसकी स्त्रियाँ और बच्चे बलात्कार तथा अप्राकृतिक कृत्यों के शिकार न बनाये जाएँ।

शाह आलम ८६ वर्ष की अवस्था में १८०६ में बड़ी बुरी तरह मरा। उसका पुत्र अकबर अंग्रेजों से एक लाख रुपये वार्षिक पाकर दिल्ली में पेंशन याफ्ता बादशाह की हैसियत से रहता था। अकबर १८३७ में मर गया। उसका पुत्र मुहम्मद बहादुर शाह पेंशन का अधिकारी हुआ। यह वही बहादुरशाह है जिसपर बाद में मुकद्दमा चला तथा १८५८ में देश से निकाल दिया गया और इस प्रकार मुस्लिम कुशासन के अत्यन्त घृणित हजार साल समाप्त हुए जिस बीच हिन्दुस्तान में रात-दिन जंगली आतंकों, कष्टों तथा यन्त्रणाओं का नग्न नृत्य रहा।

: १० :

बहादुरशाह

अन्तिम मुगल-शासक बहादुरशाह जफर के सिंहासन-च्युत करने एवं निर्वासन के साथ ही सौभाग्य से १८५८ में हिन्दुस्तान का सहस्र-वर्षीय अपमान का काल समाप्त हुआ। मुहम्मद-बिन-कासिम से प्रारम्भ हुए महा-रोग से मुक्ति मिली।

७१२ ईस्वी में प्रारम्भ होकर अरब, ईरान, इराक, सीरिया, तुर्की, अफगानिस्तान तथा अबीसीनिया से एक के पश्चात् एक इस्लाम के नाम पर नरसंहार किया, मन्दिरों को मस्जिदों तथा मकबरों में परिवर्तित कर डाला तथा मानो घाव पर नमक छिड़कने के लिए उन सबके निर्माण का श्रेय स्वयं को दिया। विदेशी संस्कृति (?) प्रदर्शित करते हुए वे समूचे विश्व में गैर-मुस्लिमों का अपहरण, परिवर्तन, दास-रूप में विक्रय, आगजनी, लूट तथा दुर्भिक्ष प्रदान करते समय कुरान की कसम खा अरब के टिड्डी दल की भाँति छा गये।

बहादुरशाह उन सर्वथा अनैतिक, असंस्कृत गँवारों तथा अशिक्षित बर्बरों की प्रलम्ब शाखा का अन्तिम प्रतीक एवं अवशेष था जिनका शासन सामूहिक नरसंहार, धर्म-परिवर्तन, आगजनी तथा लूट की व्यथापूर्ण कहानी है।

व्यक्तिगत रूप में वे अत्यन्त ही अनैतिकतापूर्ण, दुराचारी, मद्यप, अप्राकृतिक मैथुनकर्ता, अपहरणकर्ता तथा अपने ही पिताओं, पुत्रों, भाइयों, चाचाओं, भतीजों, उनके पुत्रों, चाचियों तथा सासों को अन्धा बनाने वाले, लूला कर देने वाले तथा अतीव पीड़ा देने वाले थे। उनकी पीड़ाओं, अपमानों, असम्मानों तथा क्रूरताओं से त्राण पाने के लिए इन हजार सालों तक अपने पुत्रों को गोद में लिये हिन्दू नारियाँ अहर्निश अग्नि में

कूद अपने प्राण देती रहीं।

इस लम्बे नाटक की यातनाओं का अन्त भी एक प्रकार के व्यंग्यपूर्ण न्याय के साथ हुआ। बहादुरशाह जफर अर्थात् वीर विजेता, नाम-मात्र के त्रासदीय नायक का अन्त भगाये गये कायर के रूप में हुआ; दीन-हीन बन्दी की भाँति कटघरे में खड़ा बहादुरशाह मानो मुहम्मद बिन-कासिम, तथा उससे पूर्व तक के अपने पूर्वजों का प्रतीक था, जिन्होंने इंसानियत के नाम पर बहुत बड़ा दाग लगाया था; उसके मुकद्दमे का स्थल, दिल्ली के लाल किले का दीवान-ए-आम वस्तुतः सबसे उचित स्थल था क्योंकि भगवाँ रंग के हिन्दू दुर्ग को जालसाजी से शाहजहाँ द्वारा निर्मित बताये गये इसी पवित्र शाही छज्जे से अनेक विदेशी शासकों ने क्रूर कर्म किये थे, बहादुरशाह का मुकद्दमा उसके पूर्वजों द्वारा किये गये कुकर्मों एवं कुशासन के प्रति दोषारोपण था, अन्त में उसका बाह्यकरण बहु-प्रतीक्षित बाह्यकरण का प्रतीक था; प्रथम मुगल ने भारत में पश्चिमोत्तर से प्रवेश किया, अन्तिम को दक्षिण पूर्व से बाहर कर दिया गया तथा अन्त में उसकी स्मृति ठीक ही इतनी पोंछ दी गयी कि यह भी नहीं ज्ञात कि वह कहाँ दफनाया गया था। रंगून में उसकी तथाकथित कब्र बनावटी है जैसा कि हम बाद में बताएँगे। कैसी विडम्बना है कि बहादुरशाह कवि भी था, जिसने मुगलों के विनाश के अन्तिम गीत गाये।

इससे बहुत पूर्व कि बहादुरशाह मुगल शासक बना, भूतपूर्व क्रूर एवं दहाड़ता हुआ मुगल बादशाह चूहे की भाँति चिचियाता हुआ पेंशन प्राप्त-कर्ता रह गया था जिसने पहले तो मराठों से जीवनयापन-वृत्ति पायी, पुनः अंग्रेजों से।

मिर्जा अबुल जफर अकबर द्वितीय के अनेक जाने-अनजाने बच्चों में सबसे बड़ा था। ('ट्वाइलाइट आव द मुगल्स', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, १९५१ नामक कृति में) पर्सीवल स्पीयर का कथन है: "ठीक मुगल परम्परानुसार अबुल जफर अपने पिता का चयन नहीं था। जहाँगीर (तृतीय पुत्र) के पक्ष में अकबर द्वितीय ने उसे दूर रखना चाहा था तथा उसपर अप्राकृतिक अपराध (यानी अप्राकृतिक मैथुन) का दोष लगाया था। स्वयं जहाँगीर ने उसे कम-से-कम दो बार विष देने का यत्न किया था।" स्पष्ट है कि मुगलों ने कितने परिश्रम के साथ अप्राकृतिक मैथुन

तथा भाइयों को विष देने की अपनी पैतृक परम्पराओं को कायम रखा था।

बहादुरशाह की बुद्धिमत्ता उसके आठवीं शती के पूर्वज से किसी प्रकार अच्छी न थी। सर सैयद अहमद खाँ ने लिखा है कि बहादुरशाह का "निश्चित विचार था कि क्या ही अच्छा होता कि वह अपने को मक्खी या मच्छर के रूप में परिवर्तित कर लेता तथा इस देश में अन्य देशों में जा देख आता कि वहाँ क्या हो रहा है?" यह इस तथ्य का निदर्शन करता है कि १,१०० वर्षों के शाही पोषण के पश्चात् भी विदेशी शासक, जो दिल्ली के सिंहासन पर बैठा हुआ था, वैसा ही गँवार तथा झक्की था जैसा कि ७ वीं अथवा ८ वीं शती का उसका पूर्वज।

बहादुरशाह स्वयं तो मक्खी या मच्छर नहीं बन पाया, हाँ अंग्रेजों ने शक्तिशाली मुगल की छाया से उसे मक्खी बनाकर देश से बहुत दूर रंगून भेज दिया।

भारत की शाही परम्परा में ही नहीं संसार में शायद सर्वत्र समय को ठहरा देने की परम्परा रही है। जिस प्रकार ११०० वर्षों में यवन शासकों में तनिक भी अन्तर नहीं आया तदवत् उनकी चिकनी-चुपड़ी चाटुकारिता भी अपरिवर्तित रही। यवन इतिवृत्तकार शाही दरबारों में छाये हुए थे जिनका कार्य शासक की काल्पनिक उपलब्धियों तथा अनस्तित्वपूर्ण विशेषताओं को बढ़ा-चढ़ाकर लिख देना था।

ठीक इसी परम्परा में, लन्दन और पेरिस से डाक्टरेट किये हुए एक यवन विद्वान् ने बहादुरशाह को "बहुत बड़ा विद्वान्, आश्चर्यजनक सुन्दर हस्त लेख वाला तथा मेधावी कवि", सन्त तथा देशभक्त बताया है। महदी हुसैन के इस कथन को कि बहादुरशाह "महान् देशभक्त तथा बहादुर ही नहीं भारत के स्वातंत्र्य के लिए शहीद भी था।" विवादास्पद बताते हुए डा० आर० सी० मजूमदार लिखते हैं "यदि हम अंग्रेजी शब्दों को समझें तो बहादुरशाह तनिक भी बहादुर, देशभक्त तथा शहीद नहीं था। उसके लिए तो एक ही विशेषण उपयुक्त है : गद्दार! मलिका जीनत महल तथा अहसान उल्लाह जिन्होंने प्रो० हुसैन के शब्दों में 'बहादुरशाह के कार्य को ही आगे बढ़ाया।' इसी विशेषण के अधिकारी हैं।"

१८३७ ई० में, ६२ वर्ष की बलहीन आयु में, राजाओं का राजा, मुगल बादशाह, संसार का शासक और न जाने कौन-कौन-सी उपाधियाँ लेकर बहादुरशाह खोखले तथा पेंशन युक्त सिंहासन पर बैठा। उसके अनेक दोषों के कारण (जिनमें अप्राकृतिक मैथुन भी था) उसके पिता ने उसे उत्तराधिकार से वंचित कर रखा था, पर अंग्रेजों की कृपा से उसने यह उपाधि प्राप्त की। अकबर द्वितीय का तृतीय पुत्र मिर्जा जहाँगीर, जो इसका प्रतिद्वन्दी तथा पिता का लाड़ला था, असफल रहा।

अब 'शक्तिशाली' मुगल का 'राज्य' दिल्ली के लालकिले की दीवारों तक ही सीमित था, फिर भी अबू जफर की उपाधियाँ थीं—शहंशाह अबू जफर सिराजुद्दीन बहादुरशाह, हजरब जिल्ले सुब्बानी (परमात्मा की छाया), खलीफातुर रहमानी (ईश्वर का खलीफा), साहिबे किरानी (समय का मालिक) इत्यादि।

१२,००,००० रुपये की अच्छी खासी वार्षिक पेंशन के साथ उसके पास हरम था जहाँ वह मद्यपान करता रहता था। फलतः उसका जीवन काहिली, बुराइयों, भोग-विलासों, हुक्का पीने तथा दुःखभरी उर्दू गजलें लिखने से भर गया।

उसकी अनेक बेगमों में उस दुर्बल, झुके हुए शरीर वाले बादशाह से अनेक वर्ष छोटी, जीनत महल भी थी। जहाँगीर की नूरजहाँ के समान उसे भी गलती से बादशाह की चहेती मान लिया गया है। अतीव कर्कशा, झगड़ालू एवं विकट औरत होने के नाते जहाँगीर की नूरजहाँ के समान वह बातों में तो बादशाह तथा उसके प्रभावशाली दरबारियों को हरा देती। अपने इन्हीं गुणों के कारण जीनत महल तथा नूरजहाँ ने अपने शहंशाह पतियों पर अधिकार जमा लिया था। हरम में तो ये दोनों स्त्रियाँ अन्य की ही भाँति थीं, पर जहाँ अन्य इतनी बातूनी, दृढ़ एवं आक्रामक न होने के कारण खामोशी के साथ बुरका तथा पर्दा के फिराक में तिल-तिल घुट-घुटकर समाप्त हो गयीं; इन दोनों ने अपने शाही पतियों को अधिकार में ले लिया। अतः भारत से मुगल तथा मुगलिया शासन की, बहादुरशाह की समाप्ति होने के साथ-साथ अकेली जीनत महल का नाम ही नायिका के रूप में आता है। अन्य स्त्रियों की भी कमी नहीं थी पर उनमें इतनी बातें नहीं थीं।

पुरानी दिल्ली की चक्करदार गलियों के मुहल्ले लाल कुआँ में जीनत महल का एक मकान था। यह मकान आज भी देखा जा सकता है। बहादुशाह इस मकान में बहुधा ठहरा करता था। मार्च-अप्रैल, १८४६ में तो वह वहाँ १२ दिन ठहरा। इस दुर्बल 'राज्यहीन शासक' के लिए २०,००० रुपये खर्च कर भोग-विलास की सभी वस्तुएँ एकत्र कर रखी थीं। तत्कालीन बादशाह के मनोरंजन का स्तर था और कहा जाता था कि जो कोई बादशाह मनोरंजन करने की आशा करे, प्रतिदिन १५०० रुपये व्यय करे। बादशाह ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मात्र रक्षित व्यक्ति था अतः एक सामान्य से भंगी ने थाने में जाकर रिपोर्ट की कि १२ दिन एक व्यक्तिगत घर में पड़े रहने के कारण बहादुरशाह अत्यन्त सामान्य व्यक्ति की भाँति व्यवहार कर रहा था।

उसी वर्ष बहादुरशाह का सबसे बड़ा पुत्र दारा बख्त मर गया। वरिष्ठता की दृष्टि से दूसरा फखरुद्दीन था। इसने मान लिया था कि पेन्शन के बदले वह गद्दी के सभी दावे त्याग देगा।

जाहिल बहादुरशाह के शान्तिप्रिय एकरस जीवन में, अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सेना द्वारा विद्रोह करने के कारण एकाएक ही तूफान आ गया। लोगों ने कुछ समय पूर्व ही तो कठिनता से यवन शासन से छुटकारा पाया था; अब हिन्दुस्तान की ओर बढ़ते हुए जुए को देख सेना ने १८८५ में विद्रोह का बिगुल बजा दिया जिससे बहादुरशाह का बिलासी जीवन नष्ट हो गया।

इस समय बहादुरशाह ८२ वर्ष का था; यह ऐसी अवस्था है जब व्यक्ति में शान्ति के साथ मरने के अतिरिक्त अन्य कोई आकांक्षा शेष नहीं रह जाती। पर उसकी हसीन जवान बेगम जीनत महल में अब भी कुछ आकांक्षा शेष थीं। अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह ने तथा उसके पति की 'राजाओं का राजा एवं विश्वशासक' उपाधि ने उसमें नयी आशाएँ भर दीं। उसने बादशाह जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ की भाँति वास्तविक महारानी बनने तथा बादशाह के नाम पर अपनी महान् शक्ति प्रयुक्त करने की सोची। पर वह एक द्वन्द्व में फँसी थी—यदि सेना जीतती है तब तो वह निश्चय ही पूर्ण महारानी बन जायगी, पर यदि अंग्रेजों की विजय होती है और ज्ञात हो जाता है कि यह भी विद्रोही सेना के साथ थी तो

या तो उसे फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा या जीवन भर के लिए सामान्य बन्दी बना दिया जायगा। इन दो सम्भावनाओं के बीच झूलते हुए उसे कभी अंग्रेजों की तो कभी विद्रोही सेना की सफलता की सूचना मिलती, उसने दोनों नावों पर पैर रखे रहना उचित समझा। उसने अपने काँपते पति को विद्रोहियों का साथ देने के लिए प्रेरित किया, दूसरी ओर परोक्षत: अंग्रेजों से भी बहुत मधुर सम्बन्ध रख विद्रोहियों की उन्हें सूचना देती रही। जीनतमहल ने इस प्रकार चोर और साहू दोनों का साथ दिया। दोनों नावों पर खड़े होकर महत्त्वाकांक्षिणी शरारती जीनत महल ने किसी भी घटना के घटने पर अपने लिए उच्चस्थान बनाने का प्रबन्ध कर लिया। पर जैसा कि दो नावों पर पाँव रखने वाला सदैव गिरता ही है, उसका घोर पतन हुआ और प्रवासी जीवन व्यतीत करते मर गयी।

विद्रोह के समय लगा कि खोखली उपाधियों के चिपके होने के कारण पेंशनयाफ्ता मुगल फिर शक्ति प्राप्त कर लेगा। ऐसी दशा में यह निश्चित था कि वह फिर उन्हीं दुष्टताभरे मार्गों पर यवन शासन प्रारम्भ कर देगा। यह बाद में उस पर मुकद्दमा चलते समय 'आजमगढ़ घोषणा' से स्पष्ट है। घोषणा में था "मैं, अब मुजफ्फर सिराजुद्दीन बहादुरशाह गाजी यहाँ आया हूँ और मैंने मोहम्मद का ध्वज गाड़ दिया है।" सर एच० एम० इलियट एवं अन्य अंग्रेज विद्वानों की खोजों को डा० महदी हुसैन उद्धृत करते हुए लिखते हैं, "भारतीय इतिहास के हिन्दू काल के पश्चात् का युग स्थायी उत्पीड़न एवं धर्मान्धता का रहा है। (पृष्ठ १७, बहादुरशाह द्वितीय तथा दिल्ली के अविस्मरणीय दृश्यों के साथ १८५७ का युद्ध) बहादुरशाह अपने अन्य पूर्वजों की भाँति उसके पिता द्वारा प्रलोभित की गयी लालबाई हिन्दू महिला का पुत्र था तथा उसकी दादी भी ऐसे ही जाल में फँसायी गयी हिन्दू स्त्री थी। परन्तु फिर भी बहादुरशाह सदा "मुहम्मद का ध्वज" की बात करता था अर्थात् उसके स्वप्नों के अनुसार भारत अब भी दूज के चाँद वाले हरे झण्डे के नीचे होना था।"

इस सम्बन्ध में हम यवन इतिहासों का एक और धोखा बताएँ— तीसरी पीढ़ी के मुगल बादशाह अकबर की भाँति अनेक दूसरे यवन शासकों को झूठ ही श्रेय दिया जाता रहा है कि उन्होंने गोहत्या बन्द करा दी थी।

यह आदेश, यदि कभी दिये गये थे तो जनता को मूर्ख बनाने के लिए धोखे थे—यह तथ्य डा० महदी हुसैन की पुस्तक (पृष्ठ ३८) से स्पष्ट है। उसके अनुसार जब बहादुरशाह ने अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सेना का नेतृत्व स्वीकारा "उसने शीघ्र ही गोवध बन्द करने की स्वीकृति तथा आदेश दे दिये। अनन्तर २८ जुलाई को गोवध बन्दी की बात प्रमाणित कर दी गयी…तथा २ अगस्त को बकरीद के दिन गोवध तीसरी बार फिर बन्द किया गया। यह कहना अनुचित न होगा कि युद्ध काल में बहादुरशाह ने गोवध बन्द करना हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए एक अनिवार्य कदम समझा।"

अन्तिम वाक्य से स्पष्ट है कि यह प्रतिबन्ध, यदि कभी था तो, हिन्दुओं को केवल सान्त्वना देने के लिए था ताकि वे अंग्रेजों को पराजित करने में सहायता दे सकें और यह अनिवार्य था कि म्लेच्छ शासन के फिर प्रारम्भ हो जाने से गोवध पुनः जारी कर दिया जाता।

ये शब्द कि सम्राट् "दिल्ली में गोवध बन्दी के लिए एकदम सहमत हो गया।" स्पष्टतया घोषित करते हैं कि यवन शासन काल में समूचे देश में गोवध जारी था और यदि बहादुरशाह इसी बात पर सहमत हुआ तो वह केवल दिल्ली में प्रतिबन्ध के लिए सहमत हुआ था और वह भी तब तक जब तक कि अंग्रेज बाहर नहीं खदेड़ दिये जाते। स्पष्ट है कि भारत में यवन शासन काल में हमेशा गोवध होता रहा था, यवन इतिहासों के यह झूठे दावे कि बहादुरशाह के पूर्व अनेक मुस्लिम राजाओं ने गोवध पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, बहुत किये गये हैं।

यह बात सामान्य पाठक की पकड़ में नहीं आती। डा० महदी हुसैन के कथनानुसार मई और जुलाई, १८५७ के बीच गोवध एक नहीं, तीन बार बन्द किया गया था। इसका मतलब तो यह है कि बहादुरशाह के आदेश केवल शाही फाइलों को सजाने तथा हिन्दुओं को मूर्ख बनाने के लिए थे। व्यवहार में इन्हें कभी नहीं लाया गया। यह कोई असामान्य बात नहीं थी। ऐसे खोखले आदेश 'महान्' कहे जाने वाले अकबर द्वारा भी आवश्यकता पड़ने पर दे दिए जाते थे। और ये सब हिन्दुओं को मूर्ख बनाने के लिए थे कि उसने जजिया कर समाप्त कर दिया और गोवध पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि उससे सुरजनसिंह, वीरविजय

एवं शान्त विजय ने भिन्न-भिन्न कालों में मिलकर बड़े दुःखपूर्ण शब्दों में जजिया से छुटकारे के लिए विशेष प्रार्थना की थी और जब अकबर की सेनाओं ने नगरकोट पर आक्रमण किया उन्होंने दो सौ गायें काट डालीं तथा जूतों में भरकर उनके रक्त को मन्दिर की दीवारों पर छिड़का। जब डा० महदी हुसैन कहते हैं (पृष्ठ ४०) कि "हिन्दुओं ने भी झुण्ड बनाकर तनिक से लाभ के लिए एक मुस्लिम मकबरे पर हमला किया" तो हम भी उन्हें इस मूर्खता का दोषी ठहराते हैं। किन्तु इसी समय हम यह भी कहना चाहेंगे कि ऐसे मकबरों पर हिन्दुओं के आक्रमणों का एक अन्य ही ऐतिहासिक कारण था। यह इसलिए था कि मध्यकाल के सभी मकबरे अब तक के हिन्दू मन्दिरों ही पर बनाये गये हैं। इस स्थान की अतीत की पावनता का स्मरण कर हिन्दू वहाँ जमा होते रहे यद्यपि उनकी मूर्ति को बहुत पहले ही हटा दिया गया।

खूब पेंशन प्राप्त करने पर भी बहादुरशाह ने अपने मुगल पूर्वजों की भाँति साहूकारों को उसे ऋण देने के लिए बाध्य कर दिया जबकि अपनी आय को मद्यपान तथा अन्य बदमाशियों में व्यय कर देता था। इसे डा० महदी हुसैन भी स्वीकार करते हैं। (पृष्ठ ४७), "उदाहरण मौजूद हैं कि हिन्दू महाजनों से ऋण लेने के लिए बाध्य हो गया ताकि अपने नौकरों को तनख्वाहें दे सके, इच्छुक यात्रियों (मक्का जाने के इच्छुक मुसलमानों को), अधिकारी कवियों (यानि उर्दू, फारसी और अरबी के शायरों), जरूरत मन्द लोगों (यानी मुस्लिम फकीरों) तथा अपने दरबारियों को भेंटें देने का सामाजिक कृत्य कर सके।"

एक ऐसे ही हिन्दू महाजनों के वंशज का कथन है कि जबकि दिए हुए ऋण पर ब्याज लेने के लिए कुरान मुसलमानों को रोकता है, मुस्लिम बादशाह कुरान के इस फैसले को उलट देता तथा हिन्दू महाजनों को तनिक भी ब्याज लेने से मना कर देता। इससे बादशाह इतना अनुत्तरदायित्वहीन हो गया कि वह हिन्दू व्यापारियों से कितना ही विशाल धन ले लेता था, ऐसी दशा में कोई गारण्टी नहीं थी कि कभी मूलधन भी लौट सकेगा।

हिन्दू महाजनों को इसके बदले में जो कुछ प्राप्त होता वह था कुछ खोखली फारसी की उपाधियाँ तथा चांदनी चौक में हाथी पर चढ़ने का अधिकार।

इस ऋण में लिये हुए धन को बहादुरशाह किस पर खर्च करता था यह इमामबख्श सहबाई के राइजा-ए-जवाहिर से जाना जा सकता है जो बहादुरशाह के विषय में लिखता है, "अपने शाही कमरे को वह ऐसे सजाता है कि फूलों का बगीचा भी शरमा जाय और अपने विलासपूर्ण आमोदों के कारण उसके व्यक्तिगत कक्ष फलदार वृक्षों की ईर्ष्या की वस्तु बन गए हैं।" यह स्वाभाविक ही है कि ऐसे व्यक्ति ने "युद्ध में न तो तलवार चलायी और न किसी को मारा ही जबकि यह क्रान्ति (डा० महदी हुसैन की पुस्तक, पृष्ठ ११) यदि सफल हो जाती तो वह और जीनत महल मध्यकालीन शहंशाह बनने के ख्वाब देखते।"

भारतीय सेना का विद्रोह एक धमाके के साथ प्रारम्भ हुआ जबकि मेरठ में कुछ टुकड़ियों ने अपने अंग्रेज अधिकारियों को मारकर मई १०, १८५७ को दिल्ली की ओर कूच किया। मई १२ की प्रातः को लगभग आठ बजे वे लालकिले में घुस गये तथा बहादुरशाह से नेतृत्व ग्रहण करने के लिए कहा। यद्यपि बहादुरशाह इसके लिए सहमत नहीं हुआ पर सैनिक किसी भी नाममात्र के नेता की बहुत भारी आवश्यकता महसूस कर रहे थे अतः वे नकारात्मक उत्तर प्राप्त नहीं करना चाहते थे। मुस्लिम बादशाह अपने पाजामें में काँप गया। उसने अपने महल के व्यक्तिगत कक्षों में अनेक अंग्रेज नर-नारियों को शरण दे रखी थी। विद्रोही सैनिकों ने उसके कमरों का लाल पर्दा खींच दिया और समूचे महल में छा गए। उन्होंने क्रोधित होकर अपने वेतन माँगे। भयभीत बादशाह ने निर्धनता की बात कही। अब उसके महल की एकान्तता और उसकी स्वयं की पावनता तो भंग हो ही गयी थी अतः विद्रोहियों ने बहादुरशाह को चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने उसको धक्के मारे। एक आदमी ने उसके कपड़े पकड़कर खींचे और दूसरे ने उसकी दाड़ी पकड़कर ताना मारते हुए "अरी बादशाह...अरी बुड्ढे" कहकर अपनी समस्त प्रच्छन्न सम्पत्ति को निकालने के आदेश दिये।

काँपते हुए बहादुरशाह ने जिस पर स्वातन्त्र्य सेनानियों का नेतृत्व थोप दिया गया था, १३ मई को एक दरबार का आयोजन किया, जिसमें क्रान्तिकारियों के नेता बुलाये गये। मई १४ को अंग्रेजों ने दिल्ली खाली कर दी। मई १५ को दूसरा दरबार लगा और पुराने दिनों की भाँति ही

सभी अधिकारी शासक अपने ही भाई-भतीजे बना दिये गये। एक पुत्र जहीरुद्दीन मिर्जा मुगल को प्रधान सेनापति, दूसरे पुत्र जबान बख्त को मन्त्री तथा जीनत महल को एक छोटा-सा न्यायकत्व दे दिया।

उचित संगठित सहयोग, शिक्षित तथा सुसूचित नेतृत्व तथा सम्मिलित लक्ष्य के अभाव में अपने श्रेष्ठ संगठन, एकमात्र लक्ष्य, सम्पूर्ण भक्ति तथा श्रेष्ठ नेतृत्व के कारण अंग्रेज इस महान् विप्लव को दबाने में सफल हुए। एक के बाद एक लड़ाई में बहादुरशाह के विदेशी हरे झण्डे के नीचे लड़ने वाले बुरी तरह हारते गये। बादशाह की प्रेमिका जीनतमहल यद्यपि बाहर से तो विद्रोहियों का संचालन कर रही थी, भीतर से अंग्रेजों की भेदिया थी। चाहे अंग्रेज जीतें और चाहे स्वदेशी सेना, और युद्ध का चाहे कुछ भी परिणाम हो उसका तो ऐसा जुआ था कि उसकी तो विजय होनी ही थी। उसने तथा हकीम अहसानुल्लाखाँ नामक एक विख्यात दरबारी ने अंग्रेजों के साथ पत्र-व्यवहार भी प्रारम्भ कर दिया।

सितम्बर १४ को अंग्रेज दिल्ली पर आक्रमण कर बैठे। नियति अब बहादुरशाह की ओर घूर रही थी। अंग्रेजी सेनाओं के दिल्ली नगर में प्रवेश कर जाने की बात सुनकर वह रो पड़ा और सिसकते हुए बोला, "मेरा डर सच्चा हुआ। इन कृतघ्नों ने वृद्धावस्था में मेरा विनाश कर दिया।" सितम्बर १९ को अंधेरे लालकिले में बहादुरशाह बिल्कुल अकेला लेटा हुआ था। लगता था जैसे उसके चारों ओर के शून्य से उसके पूर्वजों की प्रेतात्माएँ उसकी ओर घूर-घूरकर उसे चिढ़ा रही हैं तथा लगा जैसे बहादुरशाह को भयभीत करने के लिए युद्ध के मिश्रित स्वर, ठण्डे फौलाद की आवाज, घायल तथा मरणासन्न लोगों की चिल्लाहटें, उसके अग्रगामी तथा प्रवेशकों की बहुत ऊँची-ऊँची आवाजें, तुरहियों के दृढ़ स्वर तथा अनेक ढोलों की घुटती हुई आवाजें उसे भयभीत कर रही हों। उसकी नस-नस में शीत-लहर व्याप्त हो गई। इस महान् बलवे में अपनी सिंहासन-प्राप्ति के लिए उसने एक मक्खी तक नहीं मारी और अब वह इतना एकाकी रह गया कि लालकिले में एक भी मक्खी नहीं भनभनाती थी। लेटा हुआ बुड्ढा हुक्का थामे हुए था। दुःखी हो हुक्के की कशें खींचकर वह नाक से धुआँ निकाल रहा था और पूरे समय यही सोचता रहा कि कितना अच्छा होता यदि वह इसी सरलतापूर्वक अंग्रेजों को भी दिल्ली से निकाल देता।

उसके हरम के हरेक व्यक्तियों ने उसे त्याग दिया था। आठ दशकों के उसके प्रलम्ब जीवन की यह प्रथम यामिनी थी जब बहादुरशाह निपट एकाकी सो रहा था।

सितम्बर २० की प्रातः अपने पूर्वजों द्वारा हड़पे हुए हिन्दुओं के इस लालकिले से वह भी भाग गया। उसके प्रवेश एवं बहिर्गमन पर जो लोग उसके साथ चलते वे भी आज नहीं थे। उसका किसी ने अभिनन्दन नहीं किया। सर्वत्र मृत्यु जैसी शान्ति थी। थके हुए बहादुरशाह ने तीन मील दूर अबतक के एक हिन्दू मन्दिर का मार्ग पकड़ा जिसमें मुस्लिम फकीर निजामुद्दीन दफन पड़ा है। मकबरे के समीप बैठकर वह रोने लगा, पर निजामुद्दीन की प्रेतात्मा ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

बुरी तरह रोकर बहादुरशाह ने मकबरे के रखवाले से बड़बड़ाकर कहा—"अब मैं वृद्ध फकीर हूँ। मैंने दीवार पर का लेख पढ़ा है। इस सम्पूर्ण वैभव के दुःखद अन्त का मैं गवाह हूँ। मैं तैमूर के घर का वह अन्तिम व्यक्ति हूँ जो हिन्दुस्तान के सिंहासन पर आसीन हुआ। मुगल साम्राज्य का दीपक अब बुझने वाला है।" यह कह निजामुद्दीन के मकबरे के रखवाले को उसने एक बक्स दिया। डा० महदी हुसैन (पुस्तक की भूमिका, पृ० २०) के अनुसार उस बक्स में मुहम्मद की दाढ़ी के तीन बाल थे, जिन्हें कहा जाता है, तैमूर वंशी १४वीं शती से अपने पास रखे हुए थे। सम्भव है उस बक्स में मुहम्मद के बाल न हों शाही कोष का कुछ अवशेष हो जिसे लालकिले से अन्तिम बार बाहर जाने की शीघ्रता में वृद्ध लड़खड़ाते बहादुरशाह ने साथ ले लिया था। बहुत सम्भव है यदि दिल्ली के लालकिले तथा आगरे के लालकिले एवं ताजमहल के अनेक भीतरी कमरों तथा छिपी दरारों को उचित एवं ठीक ढंग से खोजा जाए तो उन अनजाने स्थलों पर अब भी हिन्दू-मुस्लिम शाही युग का छुपा हुआ धन प्राप्त होगा।

बक्स देकर बहादुरशाह ने चैन की साँस ली। अब वह वस्तुतः फकीर था जिसके पास न तो शहंशाहियत थी और न धन। मानो अपनी निर्धनता के प्रतीक स्वरूप उसने मकबरे के रक्षक से भोजन माँगा। पिछले २४ घण्टों में न तो किसी ने उसके लिए भोजन तैयार किया था और न पानी का गिलास दिया था। मोटा-झोंटा जैसा कुछ अन्न था, वही बहादुरशाह को एक कटोरे में दिया गया। वह दृश्य सचमुच ही बड़ा वीभत्स था। एक

सहस्र वर्षीय इन शरारतियों के अन्तिम अवशेष, जिन्होंने हिन्दुस्तान में कहर मचा रखा था, के साथ मानो भाग्य अन्तिम निपटारा कर रहा था। कुछ ग्रासों को शीघ्र निगलकर बहादुरशाह भरा हृदय ले हुमायूं के मकबरे की ओर चला। उसकी कामना थी कि यदि फकीर निजामुद्दीन का प्रेत उसकी दयनीय दशा पर दया न दिखाएगा, कम-से-कम उसके महान् पूर्वज का प्रेत उसकी प्रतीक्षा में अवश्य सिर उठाएगा या कम-से-कम अनन्त शान्ति के लिए वह उसे अपने मकबरे में ही खींच लेगा ताकि बन्दी बनाये जाने अथवा नीच दोषी के समान तिरस्कारपूर्वक शिरच्छेद से ही मुक्ति मिल जाए। उसके अनुयायी पहले ही उस प्राचीन हिन्दू भवन, जिसे हुमायूँ का मकबरा कहा जाता है, पहुँच गये थे। वहाँ बादशाह तथा और सब हुमायूं के मकबरे के नीचे के सबसे बड़े कमरे में एकत्र हो गये। २१ सितम्बर को हडसन, रज्जबअली तथा ५० घुड़सवार उस हिन्दू महल में पहुँचे जिसे मुस्लिम कब्र बना दिया गया था। रज्जबअली ने जीनतमहल से वार्ता प्रारम्भ कर दी। यह वार्ता तीन घण्टे चलती रही फिर भी समाप्त नहीं हुई। हडसन की टुकड़ियों के बाहर विपक्षी भीड़ निस्सहाय अवस्था में खड़ी रही।

अन्त में "वक्रतापूर्वक दो पालकियाँ बरामदे की ओर दिखाई पड़ीं। शहंशाह की अत्यन्त दुर्बल मुड़ी हुई शक्ल परदों के भीतर से झाँकती हुई दिखाई पड़ी।"—रिचर्ड कोलियर ('द ग्रेट इण्डियन म्यूटिनी' नामक पुस्तक में) लिखते हैं।

अब तक के शाही शहंशाह से बेगम को छोटे से घर में ले जाने के लिए आज्ञा दी गई। दुर्बल तथा काँपता हुआ, तारदार खाट पर लेते हुए, बहादुरशाह के दन्तहीन मसूड़े हुक्का चूस रहे थे। "कभी-कभी उसे बड़ा वमन होता था। वह इतना ओकता था कि बारह बर्तन तक भर जाते थे। पास के ही पर्दे पड़े हुए कमरे में जीनतमहल थी जो शहंशाह के अविवेकतापूर्ण बोलने से पिंजरे में बन्द फाख्ता की तरह चिल्ला उठती थी।"

दूसरे दिन हडसन ने तथाकथित हुमायूँ के मकबरे पर फिर धावा बोला जिसे भाग्य ने घमण्डी मुगल शासन के लिए अन्तिम स्थल बना दिया था। हडसन ने बहादुरशाह के दो पुत्रों और एक नाती को गोली से उड़ा दिया तथा उनके सिरों को काटकर अन्य २९ के सिरों के साथ, जो शाही-

घराने के ही अंग थे तथा जिनसे रक्त चू रहा था दुःखी बादशाह के सामने पेश किया। इतिहास की घड़ी की सुइयों ने चक्र पूरा कर लिया था। इतिहास ने मुगलों के विरुद्ध घूमना प्रारम्भ कर दिया था। शाहजादों के सिर धीरे-धीरे भूसात् हो रहे थे तथा रक्तपूर्ण तश्तरी में अबतक के शहंशाह के समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे थे। मुहम्मद बिन कासिम से लेकर हजार वर्षों के भारत के मुस्लिमकालीन इतिहास में जो वध होते रहे मानो यह उन्हीं का व्यंग्यपूर्ण प्रतीक था।

बहादुरशाह को एक बार पुन: लालकिले में भेज दिया गया पर इस बार ऐसा नहीं था कि उसके दरबारी बहादुरशाह की कठिनता से उच्चरित होने वाली उपाधियों को बोल रहे हों। एक दरबारी ने अबतक के बादशाह को यह कहकर "बन्दी" घोषित किया कि उसने बहुत बड़ा राजद्रोह किया है। जनवरी २७ से मार्च ९, १८५८ तक ४२ दिन उस पर मुकद्दमा चला।

जिस दीवान-ए-खास में बहादुरशाह बादशाह की भाँति सुशोभित होता था, उसी में उसपर मुकद्दमा चला। उस पर अनेक अभियोग थे— सैनिकों से विद्रोह कराना, अपने आश्रित तथा दिल्ली के अन्य लोगों को विद्रोह के लिए उकसाना, अपने को बादशाह घोषित करके अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर देना तथा १६-१७ मई को ४९ यूरोपियों को कत्ल कर देना।

इस मुकद्दमे से अनेक तथ्य प्रकाश में आए। एक ओर तो बहादुरशाह ने उन सिपाहियों के साथ विश्वासघात किया जिन्होंने मूर्खतावश उसे अपना बादशाह मान लिया था दूसरी ओर उसने ईरान के शाह से बात-चीत चलाई कि वह विधर्मियों (अंग्रेज तथा अन्य गैर-मुस्लिम) के विरुद्ध जिहाद छेड़ने के लिए हिन्दुस्तान में मुस्लिम सेना भेज दे। इससे स्पष्ट है कि अन्तिम यवन शहंशाह पहले की अपेक्षा न तो अधिक बुद्धिमान् था और न कम धर्मान्ध। पूरे सहस्र वर्षों तक वे ईरान को अपना आध्यात्मिक तथा धार्मिक ससुर का घर मानते थे जो कभी भी जादू की तरह गैर-मुस्लिमों का अन्त करने के लिए मुस्लिम सेना भेज सकता था। आश्चर्य है कि ईरान का शाह भी सान्ताक्लौज (Santaclaus) की भाँति सदैव तैयार रहता था, पर वह अपना भाग अवश्य माँगता था। जिस प्रकार

तत्कालीन शाह ने हुमायूँ के सामने शिया होने की शर्त रखी थी, बहादुरशाह ने भी यह वचन दिया था कि यदि वह मुस्लिमों को उसके अधीन कर दे तो वह स्वयं को शिया घोषित कर देगा। अपने देश के अतिरिक्त अन्य देश से भक्ति रखने वाले सदैव रहे हैं। विद्रोह की हलचल में बहादुरशाह के पुत्रों ने दिल्ली के नागरिकों को ठीक उसी प्रकार लूटा था, जिस प्रकार उनके पूर्वजों ने विगत वर्षों में।

इस मुकद्दमे के फलस्वरूप दिल्ली के विशेष आयुक्त के आदेशानुसार विद्रोह के लिए २६ मुगल शाहजादों को प्राणदण्ड मिला। १५ बन्दी बनाये जाने के समय अथवा उस समय मर गये जब उन्हें जीवनभर की सजा सुनाई गई। अन्य १३ मुगल शाहजादों को आगरा में कठोर कारावास में रखा गया तथा बाद में छोड़कर रंगून भेज दिया गया, जहाँ उन्हें केवल दस रुपये महीना देकर उनपर कड़ी निगरानी रखी गई। अन्य १३ को जीवन भर का कारावास देकर मोलमीन तथा करांची भेज दिया गया। राजकीय गड़बड़घोटाले के कारण जिन्हें करांची भेजा जाना था उन्हें आगरा जेल से कानपुर और वहाँ से कलकत्ता की अलीपुर जेल भेज दिया गया।

बहादुशाह के साथ उसके अतिरिक्त २८ बन्दी और थे—उसकी पत्नी जीनतमहल, उसका लड़का जवानबख्त, दूसरा हरामी लड़का मिर्जा शाह अब्बास, जवानबख्त की पत्नी ज़मानी बेगम, उसकी बहन रूकइया सुलतान बेगम तथा उसकी एक छोटी लड़की, मुमताज दुल्हन बेगम, दोनों बहनों की माँ, छह हरम की स्त्रियाँ, ताजमहल बेगम, सुलतानी, रहीमा इशरत, तहारत तथा मुबारकुन्वीस, पाँच मरदाने नौकर और जनाने नौकर। इनमें से कुछ नौकरों के साथ उनके दो-तीन बालक भी थे।

इस दल ने दिल्ली से इलाहाबाद के रास्ते अक्तूबर ७, १८५८ को प्रातः नवी लैन्सर्स टुकड़ी के पहरे में घोड़ागाड़ियों से प्रस्थान किया।

जब यह दल १३ नवम्बर को इलाहाबाद पहुँचा तो उनके चौदह साथियों ने कुछ और ही सोचा। उनकी वहीं रहने की इच्छा थी अतः उन्हें इलाहाबाद के दुर्ग में बन्द कर दिया गया। कुछ नौकरों के अतिरिक्त ये ताजमहल बेगम, मुमताज दुल्हन तथा उसकी लड़की रूकइया सुलतान थे। इलाहाबाद में अंग्रेजी डाक्टरों के एक दल ने बहादुरशाह का डाक्टरी

मुआयना किया। इलाहाबाद से इन बन्दियों को नाव द्वारा मिर्जापुर ले जाया गया, जहाँ उन्हें सूरमाफ्लैट नामक नाव में चढ़ाकर टेक्स स्टीमर पर बिठाने के लिए भेज दिया गया। नवम्बर १६ को इलाहाबाद से चला हुआ यह दल २२ नवम्बर को बक्सर और २३ को दीनापुर पहुँचा। ४ दिसम्बर को डायमण्ड हारबर पहुँचने पर इन बन्दियों को मेघरा (Megara) नामक जहाज पर स्थानान्तरित कर दिया गया। वे दिसम्बर ९, १८५८ को रंगून पहुँचे।

रंगून में इन बन्दियों में से कुछ को तो तम्बुओं में रख दिया गया और कुछ को चौकीदार के विभाजित किए कक्ष में। कप्तान एच० एन० डेवीज इन बन्दियों के इंचार्ज थे।

लकड़ी का मकान बनाकर इन बन्दियों को स्थानान्तरित कर दिया गया। इनमें १६ फुट वर्ग के चार कमरे थे। १६ बन्दियों के भोजन पर प्रतिदिन लगभग ११ रुपये खर्च किये जाते थे। रविवार को एक और रुपया खर्च कर दिया जाता था। महीने की पहली तारीख को उन्हें साबुन, तेल आदि के लिए प्रत्येक को दो रुपये और दे दिये जाते थे।

अन्त में शुक्रवार, नवम्बर ७, १८६२ को प्रातः पाँच बजे बहादुरशाह अल्लाह के प्यारे हो गये। उनका गला कैन्सर से रुँध गया था, जिसके कारण न तो वे कुछ बोल पाते थे न कुछ निगल पाते थे। उसी शाम को चार बजे मुख्य गार्ड के पीछे उन्हें दफना दिया। कब्र पर तिनके डाल दिये गये तथा शेष भाग को इस प्रकार एक-सा कर दिया गया ताकि पता न लगे कि कहाँ दफनाया गया है। विश्व की अनेक अन्य मुस्लिम कब्रों के समान रंगून में मुगलों के अन्तिम नाम के शहंशाह बहादुरशाह की कब्र भी बनावटी है, जो १९०३ में भारतीय मुसलमानों के एक दल द्वारा अनुमान से बाद में बना दी गई।

अपनी पुस्तक पृष्ठ ४२९ पर डा० महदी हुसैन लिखते हैं, "कुछ प्रयत्नों तथा वहीं के लोगों के मार्गनिर्देशन के पश्चात् उन लोगों ने मुरझाये हुए कमल वृक्ष के नीचे अस्थायी रूप से, खोजी जाने वाली कब्र का स्थान मान लिया, फातिहाख्वानी कर दी गयी तथा बाद में उसके ऊपर भव्य मकबरा बनाने के प्रयास किये गये।" अनेक मुसलमानों के नाम से जनता से धन देने की अपील की गई किन्तु अंग्रेज सरकार द्वारा इस

योजना पर नाराजगी दिखाए जाने के कारण इसे छोड़ दिया गया। वर्तमान मकबरा १६३४ में बनाया गया। जैसाकि अभी कहा गया है इसका वास्तविक दफनाए गए स्थल से कोई सम्बन्ध नहीं—यह मकबरा तो केवल मकबरे के लिए ही बनाया गया है।

इस अन्तिम मुगल की मृत्यु ने हिन्दुस्तान के विदेशी शासन के अत्यन्त घृणित एवं लम्बे अध्याय पर पर्दा डाल दिया और अन्त इतना पूर्ण था कि अन्तिम मुगल की कब्र तक का नामोनिशान न रहा।

□ □ □

हमारे अन्य प्रकाशन

श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक की खोजपूर्ण ऐतिहासिक रचनाएँ

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—1
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—2
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—3
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—4
भारत में मुस्लिम सुल्तान—1
भारत में मुस्लिम सुल्तान—2
कौन कहता है अकबर महान् था ?
दिल्ली का लाल किला लाल कोट था
Agra Red Fort is a Hindu Building
Christianity is Chrshn Niti

फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर है
लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं
ताजमहल मन्दिर भवन है
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है
फल ज्योतिष (ज्योतिष विज्ञान पर अनूठी पुस्तक)
Some Blunders of Indian Historical Research

साहित्यकार गुरुदत्त

प्रतिनिधि रचनाएँ

इस बीसवीं शताब्दी में यदि किसी साहित्यकार ने जन-जन पर अपनी छाप छोड़ी है तो वह हैं गुरुदत्त।

२५० में से इस समय उनकी लगभग १०० रचनाएँ ही उपलब्ध हैं तथा अन्य सबके कई-कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और अभी भी अनुपलब्ध हैं।

सभी रचनाओं का पुनर्मुद्रण एक असम्भव-सा प्रयास होगा। अतः हमने यह निश्चय किया है कि उनकी प्रतिनिधि रचनाएँ जो हर दृष्टि से अपने क्षेत्र (विषय) का प्रतिनिधित्व कर सकें, का प्रकाशन प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में किया जाये।

श्री गुरुदत्त जी स्वयं कहते हैं कि उन्होंने लेखन-कार्य चुनौती के रूप में आरम्भ किया था। जिस-जिस विषय में उन्हें चुनौती मिली, उस-उस विषय में उन्होंने युक्ति-युक्त विवेचनात्मक ढंग से लेखन कार्य किया।

उनका क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत रहा है। राजनीति, संस्कृति, इतिहास तथा शास्त्र—प्रायः प्रत्येक विषय को उन्होंने अपने लेखन का आधार बनाया है।

अतः प्रत्येक विषय पर उनकी चुनी हुई रचनाएँ अपनी इस श्रृंखला में हम प्रस्तुत करने जा रहे हैं।

साहित्यकार गुरुदत्त

प्रतिनिधि रचनाएँ

खण्ड एक—विक्रमादित्य साहसांक, मेघवाहन तथा सागर तरंग
(ऐतिहासिक उपन्यास) पृष्ठ सं० २४+५४४

खण्ड दो—सहस्रबाहु, गगन के पार तथा अन्तरिक्ष में
(वैज्ञानिक उपन्यास) पृष्ठ सं० २४+६४२

खण्ड तीन—कला, कामना तथा अनदेखे बंधन (सामाजिक उपन्यास)
पृष्ठ सं० २४+६३१

खण्ड चार—एक और अनेक तथा मानव (सामाजिक उपन्यास)
पृष्ठ सं० १६+५२८

खण्ड पाँच—परित्राणाय साधूनाम् (महाभारत कालीन
तीन उपन्यास) पृष्ठ सं० २४+८४४

खण्ड छः—स्वाधीनता के पथ पर तथा पथिक
पृष्ठ सं० २४+६३२

खण्ड सात—स्वराज्य दान तथा दासता के नये रूप

खण्ड आठ—विश्वासघात तथा देश की हत्या

भारती साहित्य सदन

30/90, कनाट सरकस, नई दिल्ली-110001

पुरुषोत्तम नागेश ओक

जन्म : 2 मार्च 1917, इन्दौर (म० प्र०)
शिक्षा : बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल-एल० बी०
जीवन कार्य : एक वर्ष तक अध्यापन कर सेना में भर्ती।

द्वितीय विश्व युद्ध में सिंगापुर में नियुक्त। अंगरेजी सेना द्वारा समपर्ण के उपरान्त आज़ाद हिन्द फौज के स्थापन में भाग लिया, सैगौन में आज़ाद हिन्द रेडियो में निदेशक के रूप में कार्य किया।

विश्व युद्ध की समाप्ति पर कई देशों के जंगलों में घूमते हुए कलकत्ता पहुँचे। 1947 से 1974 तक पत्रिकारिता के क्षेत्र में (हिन्दुस्तान टाइम्स तथा स्टेट्समैन में) कार्य किया तथा भारत सरकार के सूचना प्रसारण मंत्रालय में अधिकारी रहे। फिर अमरीकी दूतावास की सूचना सेवा विभाग में कार्य किया।

देश-विदेश में भ्रमण करते हुए तथा ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण करते हुए उन्होंने कई खोजें कीं। उन खोजों का परिणाम उनकी रचनाओं के रूप में हमें मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ हैं-ताजमहल मन्दिर भवन है, भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय, वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, कौन कहता है अकबर महान था?

उनकी मान्यता है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने इतिहास को भ्रष्ट करने का जो कुप्रयास किया है, वह वैदिक धर्म को नष्ट करने के लिए जानबूझकर किया है और दुर्भाग्यवश हमारे स्वार्थी इतिहासकार इसमें उनका सहयोग कर रहे हैं।



हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - 110 001

